आधुनिक हिन्दी-काव्य में क्रांति की विचारधाराएं

[१८५० – १९५०]

प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० फिल् उपाधि
के लिए प्रस्तुत
शोध-प्रबन्ध-सार

निर्देशक
पद्मभूषण डा० रामकुमार वर्मा

शोधकर्त्री
उर्मिला जैन
हिन्दी - विभाग
प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग

इलाहाबाद] [१९६६

प्राक्कथन

प्राक्कथन

आधुनिक हिन्दी-काव्य में सन्निहित विभिन्न जीवन-दृष्टियों पर बहुत कुछ लिखा-कहा गया है। इसके विभिन्न पक्षों -- राष्ट्रीय, ऐतिहासिक, सामाजिक, साहित्यिक, मनोवैज्ञानिक -- आदि का अलग-अलग विवेचन-विश्लेषण हो चुका है, किंतु आधुनिक हिन्दी-काव्य में सन्निहित क्रान्तिपरक विचारधाराओं का अध्ययन अभी तक नहीं हुआ। इस प्रकार से आधुनिक हिन्दी-काव्य का एक महत्वपूर्ण पक्ष अछूता रहा।

काव्य के इस अछूते पक्ष की ओर डा० रामकुमार वर्मा की दृष्टि गई और उन्होंने मुझे "आधुनिक हिन्दी-काव्य में क्रान्ति की विचारधाराएँ" विषय पर शोध-कार्य करने का आदेश दिया। प्रारम्भ में यह कार्य मुझे अत्यन्त जटिल लगा। कारण, एक तो 'क्रान्ति' शब्द ही अपने-आप में उलझा शब्द है। इस शब्द का विस्तार कई-कई विभिन्न अर्थों में है। दूसरे, विषय सर्वथा नवीन था, किन्तु डा० साहब के प्रोत्साहन और मार्ग दर्शन से प्रेरणा पाकर मैंने इस विषय पर शोध-कार्य का निश्चय किया।

शोध-कार्य में कई कठिनाइयां आईं। पहले तो 'क्रान्ति' की व्याख्या कठिन रही, क्योंकि इस विषय पर बहुत ही कम सामग्री उपलब्ध है। जो है, वह भी किसी वर्ग-विशेष से प्रभावित होने के कारण पूर्वाग्रह सहित है। फिर, कई आलोचक भारतेन्दु-युगीन हिन्दी-काव्य में क्रान्ति नहीं पाते। उनके अनुसार भारतेन्दु और भारतेन्दु-युगीन अन्य कवि सुधारवादी थे। लेकिन जब हम तत्कालीन परिस्थितियों के संदर्भ में उनके काव्य का अध्ययन करते हैं तो स्पष्ट हो जाता है कि वे क्रांतिकारी थे। उदाहरणार्थ, १८५७ की क्रान्ति का अंग्रेजों ने बुरी तरह दमन किया था। ब्रिटिश राज्य का आतंक समस्त राष्ट्र पर व्याप्त था। ऐसी आतंकवादी परिस्थिति

में भारतेन्दु, प्रेमघन आदि ने अंग्रेजों की तरह राजनीतिक, आर्थिक आदि नीतियों की आलोचना की । तत्कालीन परिस्थिति में सरकार की आलोचना करने का साहस किसी क्रान्तिकारी में ही हो सकता था । इससे स्पष्ट है कि भारतेन्दु युगीन काव्य-धारा में भी क्रान्ति की विचारधाराएं प्रवाहित हो रही थीं । मैंने इस प्रबन्ध के अन्तर्गत सन् १८५० से १९५० तक की अवधि विवेचन के लिए ली है । कारण, आधुनिक हिन्दी-काव्य का आरम्भ १८५० से माना गया है । अत: इस प्रबन्ध में भी भारतेन्दु-युग से ही विवेचना प्रारम्भ हुई है ।

शोध-कार्य प्रारम्भ करने के पश्चात् विषय सम्बन्धी अनेक व्यावहारिक समस्याएं आती रहीं किन्तु डा० रामकुमार वर्मा ने विषय में दक्षता, प्रगाढ़ औत्सुक्य एवं तत्परता के साथ वात्सल्य, स्नेह तथा अनवरत प्रोत्साहन सहित अपना अमूल्य समय देकर सदा मेरी समस्याओं का समाधान किया । वस्तुत: कहा जा सकता है कि प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध उनके औदार्य स्वरूप ही प्रतिफलित हुआ है । प्रबन्ध पूर्ण हो जाने पर पूर्णरूप से उसकी पाण्डुलिपि पढ़ने का भी कष्ट उन्होंने किया । इस प्रकार विषय-निर्वाचन से लेकर कार्य समाप्त होने तक उनका अनवरत मार्ग-दर्शन मेरा सम्बल रहा । उनके इस औदार्यपूर्ण स्नेह के लिए मुझसे धन्यवाद की औपचारिकता भी नहीं बरती जाती । उनके आशीर्वाद की चिर आकांक्षी हूं ।

विषय-सामग्री की खोज के लिए मैंने विशेषत: प्रयाग विश्वविद्यालय पुस्तकालय, प्रयाग, हिन्दी साहित्य-सम्मेलन संग्रहालय, प्रयाग, भारती भवन पुस्तकालय, प्रयाग और काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी से सहायता ली है । मैं इन सभी संस्थाओं के अधिकारियों की आभारी हूं ।

अंतत: प्रबन्ध विद्वान मनीषियों के समक्ष प्रस्तुत है । विषय जटिल और विस्तृत होने के बावजूद मैंने क्रांतिपरक विचारों के विविध आयामों के विश्लेषण का यथासम्भव साहसिक प्रयत्न किया है । यह प्रबन्ध आधुनिक हिन्दी-काव्य धारा के विश्लेषण और मूल्यांकन का एक नवीन चरण है । विश्वास है, साहित्य के अध्येताओं के लिए यह चिन्तन की एक नई दिशा प्रस्तुत करेगा ।

उर्मिला जैन.
(उर्मिला जैन)

आधुनिक हिन्दी-काव्य में क्रान्ति की विचारधाराएं

(१८५० - १९५०)

विषय - सूची

आधुनिक हिन्दी-काव्य में क्रान्ति की विचारधाराएं

(१८५० - १९५०)

विषय - सूची

विषय	पृष्ठसंख्या

विषय — पृष्ठ संख्या

-o-

अध्याय -- एक

--0--

प्राप्ति

अध्याय — एक

-०-

क्रान्ति

क्रान्ति : विश्लेषण

क्रान्ति मानव के विकास की कथा है । अद्यावधि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मानव का जितना भी विकास हुआ है, उसके पीछे क्रान्ति का बहुत बड़ा हाथ है । वह मानव के सर्वांगीण विकास की आधारशिला है । शायद क्रान्ति के अभाव में मानव आदिम सभ्यता से आगे नहीं बढ़ा होता और विकास की साम्प्रतिक ऊँचाई उसे प्राप्त नहीं होती । रूढ़ियों को तोड़ने,निरंकुश शासन को जन-कल्याण करने वाले शासन-तंत्र की ओर मोड़ने में और जीवन की नयी दिशाओं की खोज का श्रेय क्रान्ति को है ।

क्रान्ति जीवन की स्वाभाविक गति है । एकरस जीवन जीते-जीते मनुष्य में औदास्य, रुक्षता और नीरसता आ जाती है । इसलिए वह जीवन की गति में परिवर्तन चाहता है । परिवर्तन ही जीवन है । परिवर्तन के अभाव में जीवन जड़ हो जायगा । यह जड़ता ही मृत्यु है । इसलिए अपेक्षित है कि पुरानेपन को छोड़कर जीवन नयी धार ले, नये कूलों को छुए,नयी दिशाओं की ओर अग्रसर हो । यही जीवन का परिवर्तन है, जो उसकी स्वाभाविकता है । परिवर्तन क्रान्ति का पर्याय है ।

आक्सफोर्ड तथा अन्य शब्दकोशों में क्रान्ति का तात्पर्य ऐसा परिवर्तन बताया गया है जिससे समाज में उथल-पुथल हो जाता है, सामाजिक-संगठन बदल जाता है तथा मौलिक नवनिर्माण होता है ।[1] मैजिनी के अनुसार 'इतिहास-पुरुष के जीवन में होने

१- क्रान्तिवाद — विश्वनाथराय, पृ० ७

वाली सम्पूर्ण उथल-पुथल का नाम है क्रान्ति[1]।" उपन्यासकार विक्टरह्यूगो ने क्रान्ति की विवेचना करते हुए कहा है :" क्रांति किन तत्वों की कमी होती है ? किसी तत्व की भी नहीं और सभी तत्वों की, ऐसी बिजली जो एकाएक छूट पड़ती है, कौंध जाती है, ऐसी चिनगारी कि जो एकाएक प्रज्वलित हो पड़ती है, ऐसी घुमक्कड़ शक्ति और महज एक सांस की[2]।" वेस्टर बौल्स के शब्दों में "क्रांति और विकास दोनों में परिवर्तन का भाव है । प्रथम शब्द द्वितीय की अपेक्षा शीघ्रगामी परिवर्तन का अर्थ देने वाला समझा जाता है[3]।" श्री जवाहरलाल नेहरू ने "विश्व इतिहास की झलक" में क्रान्ति के विश्लेषण में कहा है, "खुशहाली और क्रान्ति में मेल नहीं होता । क्रांति का अर्थ है परिवर्तन । दादा धर्माधिकारी क्रान्ति का अर्थ "पूंजीवादी मूल्यों का समूल निराकरण" मानते हैं[4]। महात्मा गांधी ने क्रान्ति की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए बताया, "क्रांति स्थापित व्यवस्था की अवज्ञा का ही नाम है । अवज्ञा संघर्ष का प्रजनन करती है और विद्रोहियों का शस्त्र उस अवज्ञा का परिपोषण करता है । क्रान्ति यदि सफल होती है तो वर्तमान नष्ट होता है और उध्वस्त के आधार पर अभिवांछित नव-व्यवस्था स्थापित होती है । सत्याग्रह भी ठीक इसी क्रिया का संपादन है । वह अवज्ञा का पथ लेकर बढ़ता है और प्रचण्ड संघर्ष का उद्भव कर देता है[5]।" विनोबा भावे ने भूदान क्रान्ति की व्याख्या में कहा है," जहां गांवों के लोग अपने जीवन से व्यक्तिगत मालकियत मिटा देते हैं वहीं मूल्य परिवर्तन होता है । इसी मूल्य परिवर्तन को शांतिमय क्रांति कहते हैं[6]।"

इन परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर यह साफ प्रकट हो जाता है कि क्रान्ति असन्तोष से उत्पन्न होती है । असन्तोष के कारण जनवर्ग वर्तमान शासन की अवज्ञा करता है और तब एक संघर्ष होता है । संघर्ष हिंसक या अहिंसक हो सकता है, किन्तु क्रान्ति की सफलता से पुरातन व्यवस्था समाप्त हो जाती है और उसकी जगह नयी व्यवस्था स्थापित होती है । अतः क्रान्ति का अर्थ महान मौलिक परिवर्तन है, जो राजनीतिक,आर्थिक,सामाजिक,धार्मिक, बुराइयों, रूढ़ियों तथा कुप्रथाओं को मिटाकर सार्वभौमिक मंगल के लिए नयी व्यवस्था का संघटन करता है ।

१- "भारतीय स्वातन्त्र्य समर" --विनायक दामोदर सावरकर,पृ०३, संस्करण
२- "साप्ताहिक हिन्दुस्तान", १८ अगस्त १९५० के अंक में वृन्दावनलाल वर्मा का निबन्ध
३- क्रान्ति के नूतन क्षितिज -- वेस्टर बोल्स,पृ०२८५, सन् १९५८
४- क्रान्ति का अगला कदम -- दादा धर्माधिकारी,पृ०५१,सन् १९५५
५- बापू और मानवता --कलापति शास्त्री,पृ०२७७, सन १९४९
६- क्रान्ति की राह पर --निर्मला देशपाण्डे,पृ० १२४, सन १९५६

क्रान्ति एक मानवतावादी दृष्टि है । जब न्याय का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है, परम्परित सामाजिक प्रथाएँ, रीतियाँ तथा नियम जब मानव-कल्याण का मार्ग अवरुद्ध करने लगते हैं, समाज और राष्ट्र जब रूढ़ियों, धोखों और परम्पराओं के कारण जड़ हो जाते हैं, तब नयी शासन-प्रणाली, नयी नीति और समाज-व्यवस्था के संगठन के लिए क्रांति की अपेक्षा होती है । यह क्रान्ति मानव-मंगल की दृष्टि से उत्पन्न होती है । इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर एसेम्बली बम केस में सरदार भगतसिंह ने न्यायालय में कहा था --"विप्लव से हम लोगों का मतलब समाज की ऐसी व्यवस्था है, जिसमें ऐसे पतन का भय न हो तथा जिसमें श्रमिकों की राज्यसत्ता मान्य हो जाए और उसके फलस्वरूप विश्वसंघ मानवता को पूँजीवाद, दुख तथा युद्ध के संकट से सुरक्षित कर दे..... क्रान्ति मानव जाति का अविच्छेद्य अधिकार है ।"[1]

सामान्यत: क्रान्ति को राज्यक्रान्ति के अर्थ में समझा जाता है । जब कोई जाति दासता के जुए को उतारने के लिए विदेशी शासन के विरोध में उठ खड़ी होती है, तो इस कार्य को क्रान्ति कहते हैं, क्योंकि दासता की जगह स्वतन्त्रता प्राप्त करने की आकांक्षा से किया गया यह विरोध वर्तमान स्थिति में परिवर्तन चाहता है । तात्पर्य यह कि शासन-व्यवस्था में आमूल परिवर्तन के लिए क्रान्ति शब्द का प्रयोग होता है । किन्तु, क्रान्ति शब्द का विस्तार केवल राज्यक्रान्ति तक ही नहीं है । मानवजाति की प्रत्येक समस्या को सुलझाने के लिए, कुरीतियों, रूढ़ियों आदि में परिवर्तन के लिए किया गया विरोध क्रान्ति है । साधारणत: "किसी चीज या व्यवस्था में आमूल परिवर्तन करके कोई नई प्रणाली जारी करने को भी क्रान्तिकारी परिवर्तन कहते हैं ।"[2] किन्तु इसके पश्चात् राज्यक्रान्ति को ही क्रान्ति मानते हुए उन्होंने कहा, "पर हम सिर्फ राज्यक्रान्ति को क्रान्ति मानेंगे । पर यहाँ राज्यक्रान्ति व्यापक अर्थ में प्रयुक्त--आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सबके भी इसके अन्दर आ जायेंगे ।"[3] फ्रांसिस मुंघर ने भी क्रान्ति को राजनीतिक प्रकृति का बताया है[4] ।

१- क्रान्तिवाद - विश्वनाथ राय, पृ० ११ सं. १९५७
२- क्रान्ति और संयुक्त मोर्चा - स्वामी सहजानन्द सरस्वती, पृ०१, सं० प्रथम
३- वही, पृ० २
४- रिवोल्यूशन इन इंडिया- फ्रांसिस मुंघर, पृ०१०, सन् १९५६

क्रान्ति परिवर्तन की प्राकृतिक स्थिति है। यह परिवर्तन केवल राजनीतिक समस्याओं तक ही सीमित नहीं है। मनुष्य केवल राजनीतिक संस्थाओं तक ही सम्बद्ध नहीं है, बल्कि और भी अनेक संस्थाओं के प्रति उसकी प्रतिबद्धता है। उन संस्थाओं के अपने नियम हैं। जब कभी इन नियमों में कठोरता, कुरीति, रूढ़ि आ जाती है, मनुष्य के विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। तब वह इन नियमों में परिवर्तन चाहता है। उसके लिए वह विरोध करता है। यह विरोध कभी हिंसक और कभी अहिंसक रहता है। परिस्थितियां ही हिंसा अथवा अहिंसा के लिए मनुष्य को बाध्य करती हैं। तात्पर्य कि कष्ट की मात्रा और परिस्थिति की गम्भीरता के आधार पर हिंसा अथवा अहिंसा का आलम्बन क्रान्ति में होता है रहता है।

राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक--- सभी क्षेत्रों में परिस्थितिवश परिवर्तन की अपेक्षा होती है, क्योंकि उसके बिना जीवन की गति अवरुद्ध हो जाती है। इसलिए परिवर्तन के चरण स्वाभाविकरूप से उठते हैं और क्रान्तियां होती हैं। रूस और फ्रांस की राज्यक्रान्तियां मानव-कल्याण के लिए जिस हद तक आवश्यक हैं, औद्योगिक क्रान्ति का महत्व भी उससे कम नहीं है। भारत तथा योरोप में होने वाली धार्मिक और सांस्कृतिक क्रान्तियों की मूल दृष्टि भी मानव-मंगल ही रही है।

आज क्रान्ति शब्द का प्रयोग प्रत्येक परिवर्तन के लिए होने लगा है। राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में होने वाला परिवर्तन क्रान्ति है। इसलिए आज के सन्दर्भ में क्रान्ति को राज्य तक ही सीमित नहीं किया जा सकता। इस युग में वैचारिक क्रान्ति की चर्चा भी होने लगी है। इसलिए मानव की प्रत्येक परिस्थिति, उसके प्रत्येक संगठन में होने वाला परिवर्तन क्रान्ति के अन्तर्गत आता है।

क्रान्ति एक मन:स्थिति है। वर्तमान स्थिति के विरोध में जनता के मन में उठने वाला परिवर्तन का भाव क्रान्ति है। यों यह भाव क्रिया रूप में भी प्रकट होता है, किन्तु क्रान्ति-भावना मौलिक रूप में मानसिक स्थिति है। अनेक जातियां, रूढ़ियां, अंधविश्वासों, कुरीतियों और अत्याचारों को झेलती हैं, किन्तु उनके प्रति विरोध भाव उनके मन में नहीं आता। विरोध का भाव उत्पन्न होते ही वैचारिक क्रान्ति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और तब उस मन:स्थिति का क्रियात्मक प्रतिफलन वर्तमान विकृति, अत्याचार, परतन्त्रता, अन्धविश्वास एवं रूढ़ि को नष्ट कर नये मूल्यों की स्थापना में

प्रकट होता है । यदि वैचारिक क्रान्ति न हो तो सामाजिक,राजनीतिक,आर्थिक क्रांतियां की स्थिति ही उत्पन्न नहीं हो सकती । वैचारिक क्रान्ति ही सारी क्रान्तियों का मूल है । विचार मन की क्रिया है । इस प्रकार क्रांति की मूल प्रेरणा मानसिक स्थिति पर निर्भर करती है । विरोध की मन:स्थिति होने,पीड़ा,अत्याचार एवं जड़ता से ऊबने और नवीनता को ग्रहण करने की इच्छा होने पर ही परिवर्तन होता है । इस दृष्टि से क्रांति मन की इच्छा शक्ति है, जिसकी अभिव्यक्ति विरोधों, हिंसात्मक तथा अहिंसात्मक कार्रवाइयों के माध्यम से होती है ।

प्रस्तुत प्रबन्ध में क्रान्ति शब्द का प्रयोग इसी व्यापक अर्थ में किया गया है । इस दृष्टि से यह राज्य-क्रान्ति, सामाजिक क्रान्ति, आर्थिक और धार्मिक क्रान्ति को भी अन्तर्भुक्त किए हुए है । दु:शासन और दु:स्थिति के मानसिक विरोध की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति क्रान्ति है, जो वर्तमान स्थिति में आमूल परिवर्तन कर नये मूल्यों के आधार पर नयी संस्थाओं तथा मन:स्थिति का निर्माण करती है । क्रान्ति जड़ता से चेतनता की ओर , रूढ़ि से नये मूल्यों की ओर और पीड़ा से सुख की ओर मानव को अग्रसर करती है । इसकी मूल प्रेरणा मानवीय है ।

क्रान्ति के आधार

मानव मूल रूप से अस्तित्ववादी है । वह अपना अस्तित्व कायम रखना चाहता है और इस कारण परिस्थितिवश उसमें अनन्त इच्छायें और अनेक उत्कण्ठायें उभरती हैं ।अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए वह अनेक कार्य करता है । उन इच्छाओं के अपूर्ण रहने पर,उसमें मानसिक हलचल उत्पन्न हो जाती है । यही मानसिक हलचल विचारों में परिवर्तन कर क्रान्ति का सूत्रपात करती है । इसी प्रकार मनुष्य के जीवन में कुछ आदर्श होते हैं । इन आदर्शों का पालन वह जी-जान से करता है । जब भी ये आदर्श किसी चोट से ढहने लगते हैं, मनुष्य तिलमिला उठता है । उसका हृदय एक हलचल से आन्दोलित हो जाता है । इसी आन्दोलन के गर्भ से क्रान्ति का जन्म होता है । सामान्यतः अन्याय,अत्याचार और अपमान के कारण क्रान्ति उत्पन्न होती है । जब कोई शासक शासित पर अत्याचार करता है,उसे उसका न्याय नहीं देता, पग-पग उसे अपमानित करता है, तो उस अत्याचारी के प्रति घोर घृणा हो जाती है और यह घृणा विरोध,विद्रोह तथा क्रान्ति के रूप में भड़क उठती है । जनता दुःशासन का सदा विरोध करती है और इस प्रकार क्रान्तियां युग-युग से होती आई हैं ।

'परतंत्र देशों में क्रान्ति का मुख्य कारण राजनीतिक और आर्थिक होता है[1]।' अत्याचार और शोषण की भीषणता असह्य होने पर सहने वाला सजग हो जाता है । यह सजगता अत्याचार का विरोध करने में प्रकट होती है । इस विरोध से अत्याचारी में अधिक भीषण प्रतिक्रिया होती है । प्रतिक्रियावश वह और भयानक हो जाता है । उसका मानवता को वह असह्य लगता है और वह शासन-तंत्र को चकनाचूर कर नयी व्यवस्था स्थापित करना चाहती है । मार्क्सवादी सुधार या विकासवाद पर विश्वास नहीं करते । इसलिए वे राज्यक्रान्ति में शासन तंत्र को चूर-चूर कर नया शासन स्थापित करना चाहते हैं । मार्क्स[2] ने कूगलमान को कभी लिखा था' अब तो क्रांति का काम है उस यंत्र को चूर-चूर कर देना ।'

विश्व में जितनी राज्यक्रान्तियाँ हुई हैं,सब के मूल में अत्याचार,अन्याय और अपमान का विरोधभाव रहा है । यह विरोधभाव अपनी उग्रता में बड़ा भयानक होता है

१- क्रान्तिवाद - विश्वनाथराय, पृ०२०, सन् १९६७

२- क्रान्ति और संयुक्त मोर्चा- स्वामी सहजानन्द,पृ०४, सन्१९४१, प्रथम सं०

और इस भयानकता को अत्याचारी सह नहीं पाता, वह टूट जाता है और उसके ध्वस्त शासन की राख पर नयी शासन व्यवस्था उगती है । राज्यक्रान्ति की उत्पत्ति का बड़ा सुन्दर स्वरूप जवाहरलाल नेहरू ने 'विश्व इतिहास की झलक' में अंकित किया है, 'लेकिन क्रान्तियां और ज्वालामुखी पहाड़ बिना कारण या बहुत दिनों की तैयारी के एकाएक नहीं फूट पड़ते । हम एकाएक होने वाले विस्फोट (धड़ाके) को देखकर ताज्जुब करते हैं, लेकिन जमीन की सतह के नीचे युगों तक बहुत-सी ताकतें आपस में टकराया करती हैं और आग में घुला करती हैं । आखीर में ऊपर की पपड़ी उनको ज्यादा देर दबाकर नहीं रख सकती और ये ज्वालाएं आकाश तक उठने वाली विकट लपटों के साथ फूट पड़ती हैं और पिघलता हुआ पत्थर (लावा) पहाड़ पर से नीचे की तरफ बहने लगता है । ठीक इसी तरह वे ताकतें, जो आखिरकार,[1] क्रान्ति की शक्ल में ज़ाहिर होती हैं, समाज की सतह के नीचे अर्से तक तैला करती हैं ।' इस विवरण से प्रकट है कि क्रान्ति एकाएक नहीं फूटती । युगों तक अत्याचार, अन्याय सहन करने के बाद क्रान्ति फूटती है । क्रान्ति के लिए परिस्थिति विशेष की आवश्यकता होती है । अत्याचार और अन्याय की विभिन्न परिस्थितियों को झेलने के बाद जब सहना कठिन हो जाता है, तब जनता क्रान्ति करती है । वह अत्याचार के मूल को मिटाने के लिए हिंसा अथवा अहिंसा दोनों साधनों का, परिस्थितिवश आलम्बन करती है ।

किसी-किसी देश में स्वतन्त्रता के लिए राज्यक्रान्ति होती है । भारत उसका ज्वलन्त उदाहरण है । ब्रिटिश शासन के अत्याचार ने जनता में विरोध पैदा किया और विभिन्न आन्दोलनों की हिंसात्मक तथा अहिंसात्मक क्रान्तियों ने भारत को स्वतन्त्र किया । क्रान्ति के फलीभूत होने में कई शताब्दियां लग गयीं । इस तरह क्रान्ति क्षणिक क्षोभ या ग्लानि के फलस्वरूप उत्पन्न नहीं होती । युगों के अत्याचार और उत्पीड़न को सहते-सहते छोटे-मोटे विरोध प्रकट करने के उपरान्त सहसा एक बार क्रान्ति उत्पन्न होती है ।

विदेशी शासन की प्रतिक्रिया से उत्पन्न क्रान्ति अपनी चोट से विदेशी प्रशासनिक शासन-व्यवस्था को चूर कर देती है और उसके बदले एक नयी शासन-व्यवस्था स्थापित करती है । यह शासन-व्यवस्था जनता की इच्छा पर निर्भर करती है । जनता के लिए जनता के द्वारा स्थापित नयी शासन-व्यवस्था जनतांत्रिक हो जाती है । इसका

1- विश्व इतिहास की झलक- जवाहरलाल नेहरू, पृ०१११, सं० प्रथम

कारण यह है कि इस क्रान्ति में जनता का सहयोग होता है । इस कारण जो भी व्यवस्था स्थापित होती है,वह जनता के द्वारा संचालित होने लगती है । कठोर विरोधी शासन की प्रतिक्रिया का जनतांत्रिक शासन-व्यवस्था के रूप में प्रकट होना स्वाभाविक ही है ।

क्रान्ति का मुख्य कारण एक ध्येय-विशेष होता है । जहां यह ध्येय नहीं होता, वहां क्रान्ति नहीं हो सकती । यह ध्येय ही क्रान्ति की प्रेरणा और उसको उत्तेजित करने वाला है । ध्येय की प्राप्ति के लिए जितनी ही अधिक तीव्र इच्छा होगी, क्रान्ति में भी अपेक्षित उसी सीमा तक उत्तेजना रहेगी । यह ध्येय कभी उच्च आदर्श की प्राप्ति,स्वतन्त्रता-प्राप्ति,अत्याचार, अन्याय से मुक्ति,सामाजिक तथा आर्थिक विकास, धार्मिक तथा सांस्कृतिक उत्कर्ष, कुछ भी हो सकता है । ये सभी क्रान्ति की प्रेरणायें हैं । यों तो मनुष्य की अनेक इच्छाएँ, अनेक ध्येय होते हैं किन्तु ऊपरी लिखित उदाहरण की कोटि में आते । इसका मूल लक्ष्य मानव-कल्याण होता है, क्योंकि कोई एक व्यक्ति क्रान्ति नहीं कर सकता, इसलिए सार्वजनिक मानव-मंगल के उपर्युक्त ध्येय श्रेष्ठ हैं । ऐसे उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ही क्रान्तियाँ हुआ करती हैं । इस प्रकार क्रान्ति का लक्ष्य न्याय,समानता, स्वाधीनता आदि की प्राप्ति है । जनता और समाज के सदस्यों के हित की रक्षा क्रांति के माध्यम से होती है ।

विश्व में अधिकतर राजनीतिक तथा आर्थिक क्रान्तियां ही हुई हैं ।राजनीतिक क्रान्ति का कारण स्वतन्त्रता की प्राप्ति अथवा अन्यायपूर्ण शासन-व्यवस्था के बदले न्यायपूर्ण सुव्यवस्था स्थापित करना होता है, किन्तु राजनीतिक क्रान्ति के साथ सामाजिक और आर्थिक क्रान्तियां भी समानरूप से साथ ही होती हैं, क्योंकि इन कुरीतियों से मुक्ति की कामना भी राजनीतिक क्रान्ति में गुंथी हुई है ।

इन कारणों के अतिरिक्त क्रान्ति के और भी कारण होते हैं । रूढ़िवादी, अन्यायपूर्ण सामाजिक परिस्थितियाँ भी क्रान्ति उत्पन्न करती हैं । जिन देशों में सामाजिक शासन-पद्धति के दोष के कारण सामाजिक परिस्थितियां तथा सामाजिक सम्बन्ध विषम हो जाते हैं, वहां सामाजिक क्रान्ति होती है । सामाजिक क्रान्ति का महत्व भी कम नहीं है । समाज का विधि-निषेध मनुष्य के वैयक्तिक जीवन को संचालित करता है,जब कभी ऐसे विधि-निषेध में समानता तथा न्याय नहीं रह जाते, मनुष्य सामाजिक क्रान्ति की ओर अग्रसर होता है । इस क्रान्ति के द्वारा वह समाज में नये मूल्यों की स्थापना करता है । नये विधि-निषेधों की स्थापना की पृष्ठभूमि पर खड़ा किया

जाता है । इस प्रकार की क्रान्ति शान्तिपूर्ण ढंग से चलती है । उसमें कभी भीषणता नहीं आती । शायद ही कभी इस क्रान्ति के मध्य हिंसा को अपनाया गया हो ।

सामाजिक क्रान्ति की तरह आर्थिक क्रान्ति भी महत्वपूर्ण है । जब कभी पूँजीवादी व्यवस्था में असमानता का प्रभाव बढ़ जाता है, शोषण भीषण रूप धारण कर लेता है, पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था को खत्म करने के लिए मजदूरों का आन्दोलन उठ खड़ा होता है । मजदूर और किसान जो शोषित तथा पीड़ित हैं, शोषण संस्था अर्थात् पूँजीवाद को मिटाने के लिए, क्रान्ति करते हैं । इस प्रकार की क्रान्ति रूस में हुई, जहां जार के अत्याचारी शासन को समाप्त कर, पूँजीपतियों के शोषण को मिटा कर नई राज्य तथा अर्थ-व्यवस्था सर्वहारा का अधिनायकवाद के रूप में स्थापित हुई है । पूँजीवाद को राजतंत्र में सम्पोषण मिलता है, इसलिए जहां भी आर्थिक क्रान्ति सम्भाव्य है, वहां राज्यक्रान्ति भी अवश्य ही होती है, क्योंकि राज्य-व्यवस्था को समाप्त किए बिना अर्थ-व्यवस्था जो शोषणपूर्ण है, असमान है, खत्म नहीं की जा सकती । इसी कारण विश्व की राज्य तथा अर्थक्रान्तियाँ अधिकांशतः साथ होती रही हैं । आर्थिक क्रान्ति का मूल उद्देश्य समानता की स्थापना है । पूँजीवाद को खत्म कर समानता के आधार पर नयी अर्थ-व्यवस्था इस क्रान्ति के फलस्वरूप आती है, जो प्रत्येक मानव को समान कार्य के लिए समान पारिश्रमिक के सिद्धान्त को मानती है । इस अर्थ-व्यवस्था का प्रवर्तक मार्क्स था, जिसने अपने सिद्धान्तों के माध्यम से इन तथ्यों का सांगोपांग प्रतिपादन किया है । उसके सिद्धान्तों के आधार पर क्रान्ति के लिए संगठित वर्ग साम्यवादी दल के रूप में उत्पन्न हुआ और उसने वर्ग-संघर्ष और सशस्त्र क्रान्ति के द्वारा रूस में नई राज्य और अर्थ-व्यवस्था स्थापित की । चीन आदि देशों में भी इसी तरह की अर्थ-क्रान्तियाँ हुई हैं ।

धार्मिक क्रान्ति भी कम महत्वपूर्ण नहीं है । जर्मनी के मार्टिन लूथर नामक धार्मिक पुरुष ने रोमन कैथोलिक के विरुद्ध धार्मिक क्रान्ति करके प्रोटेस्टेंट पंथ चलाया । यह क्रान्ति ईसाई धर्म की रूढ़िवादिता आदि के कारण हुई । इसी प्रकार की क्रांतियाँ अनेक दूसरे देशों में भी हुई हैं । इस क्रान्ति का उद्देश्य धार्मिक रूढ़िवादिता और कठोरता को मिटा कर उदार और प्रगतिशील नीति-व्यवस्था कायम करना होता है । धार्मिक रूढ़ियाँ और कठोरतायें जब मानव के विकास में बाधक होने लगती हैं तो उन्हें नष्ट कर कुछ उदार और प्रगतिशील कार्य-व्यवस्था कायम की जाती है । धार्मिक क्रांति प्रत्येक देश में इसी उद्देश्य को लेकर होती रही है । वैदिक धर्म की कठोरता और रूढ़ि-

वादिता की प्रतिक्रिया में बौद्धधर्म उत्पन्न हुआ । ऐसे उदाहरण अति सुलभ होंगे ।

यद्यपि क्रांति के अनेक कारणों का उल्लेख किया गया है, फिर भी इसका एकमात्र कारण सामाजिक कल्याण है । क्रान्ति इनमें से किसी एक भी कारण से उत्पन्न हो सकती है और इस प्रकार समाज के किसी एक क्षेत्र में किसी विशेष तरह का परिवर्तन कर सकती है, किन्तु ये सभी कारण एक-दूसरे से इस प्रकार अनुस्यूत हैं कि इन्हें अलग खंडों में रखकर किसी विशेष क्रान्ति के उदय की बात कहना उपयुक्त नहीं है । सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक कारण एक-दूसरे पर इस प्रकार आधारित हैं कि लगता है, ये सभी आधार क्रान्ति के अनिवार्य कारण हैं । अत: इन्हें अलग करके देखना सम्भव नहीं प्रतीत होता । रूस, चीन, फ्रांस, अमेरिका एवं भारत आदि देशों की क्रान्तियों के पीछे ये सभी कारण अवश्य रहे हैं । धार्मिक कारण भी इन क्रान्तियों में प्रत्यक्ष या प्रच्छन्न रहे हैं, ऐसा कहना अनुचित न होगा । इस तरह परतंत्र और निरंकुश शासन में धार्मिक कुंठायें इतनी बढ़ जाती हैं कि यह सहज ही अनुमेय है कि इन्हें अलग नहीं किया जा सकता । इस दृष्टि से राज्यक्रान्ति के मूल में ये सभी कारण रहे हैं । लगता है, इनमें से कोई भी कारण यदि व्यक्त नहीं हुआ होता तो क्रांति इतनी तीव्र और शक्तिपूर्ण नहीं हुई होती । इतना तो मानना ही पड़ेगा कि प्रत्येक क्रान्ति के पीछे एकाधिक कारण रहे हैं । किसी एक कारण की अभिव्यक्ति क्रान्ति के उद्भव का मूल कारण नहीं है ।

क्रान्ति के विभिन्न रूप

क्रान्ति चार प्रकार की हो सकती है । राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक । प्रत्येक क्रान्ति अपने आप में महत्त्वपूर्ण है । वैसे कहा जाता है कि धार्मिक क्रांति उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं होती, जितनी राजनीतिक और आर्थिक क्रान्तियां । पर ऐसा कहना उचित नहीं । धार्मिक क्रान्ति भी अन्य क्रांतियों की तरह ही महत्त्वपूर्ण है । राजनीतिक और आर्थिक क्रान्ति का अनिवार्य फल सामाजिक क्रान्ति है । पर यह कहना अनुचित न होगा कि राजनीतिक क्रान्तियों में अन्य क्रान्तियाँ अनिवार्य रूप से जुड़ी हुई हैं ।

राजनीतिक क्रान्ति

राजनीतिक क्रान्ति विदेशी सत्ता एवं सामन्तशाही से मुक्ति पाने के लिए होती है । साथ ही राजनीतिक तथा आर्थिक सुविधाओं को पाने की कामना तो सन्निहित रहती ही है ।

किसी विदेशी जाति के शासन की समाप्ति के लिए शासित जाति द्वारा किया गया विरोध तथा विद्रोह को राष्ट्रीय क्रान्ति कहा गया है । राष्ट्रीय क्रान्ति के माध्यम से बहुत बड़े परिवर्तन होते हैं । विदेशी शासन के भीषण अत्याचार से गुलाम जाति के स्वाभिमान को जबर्दस्त ठेस पहुंचती है और वह क्रान्ति के लिए सन्नद्ध हो जाती है । इस क्रान्ति के परिणामस्वरूप शासन के महत्त्वपूर्ण और ऊँचे पदों पर अपने देश के ही प्रभावशाली व्यक्ति प्रतिष्ठित हो जाते हैं । भारत की विदेशी शासन से मुक्ति पाने की आकांक्षा राष्ट्रीय-क्रान्ति ही थी ।

राजनीतिक क्रान्ति का एक रूप यह भी होता है जब किसी विदेशी शासन का नहीं, बल्कि सामन्तशाही या किसी अत्याचारी शोषक का विरोध होता है । क्रांतिकारी कभी तो समस्त जनता रहती है और कभी कोई एक गुट रहता है । यदि समस्त जनता क्रांति में हिस्सा लेती है और राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करती है, तब समाजवादी प्रजातंत्रात्मक क्रान्ति की स्थापना होती है । राजनीतिक क्रान्ति के इस रूप में शासन के साथ ही साथ अर्थ-व्यवस्था भी शोषितों के हाथ में आ जाती है । वस्तुतः समाजवादी क्रान्ति पूंजीवाद के विरुद्ध सर्वहारा के विरोध की भी अभिव्यक्ति है । पर यदि सामन्तशाही के विरुद्ध या पीड़क शासक के विरुद्ध क्रान्ति होकर सत्ता दूसरे गुट के हाथ में चली जाती है, तो उसे पूंजीवादी प्रजातंत्रात्मक क्रान्ति कह सकते हैं । इस क्रान्ति के द्वारा राज्याधिकार एक व्यक्ति

या गुट के हाथों से निकल कर दूसरे दल या वर्ग के हाथों में चली जाती है, किन्तु आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन न होने के कारण पूरे वर्ग का कष्ट दूर नहीं हो पाता ।

इस प्रकार राजनीतिक क्रान्ति के उपर्युक्त प्रकार कहे जा सकते हैं । पर ये विवेचन की दृष्टि से ही उपयुक्त हैं । अन्यथा सब के मूल में राजनीतिक शोषण से मुक्ति की कामना ही रहती है । राजनीतिक क्रान्ति ही महत्वपूर्ण तथा प्रभावशाली क्रान्ति है, ऐसा लोगों का विश्वास है । राजनीतिक क्रान्ति में संघर्ष की तीव्रता होने के कारण इसे सहज ही महत्व मिल जाता है । राजनीतिक क्रान्ति में सामाजिक आर्थिक और धार्मिक क्रान्तियाँ भी साफ-साफ उभरती रही हैं । इसलिए भी राजनीतिक क्रान्ति की इतनी महत्ता है, किन्तु विश्व में सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक क्रान्तियां राजनीतिक क्रान्ति से अलग भी हुई हैं ।

धार्मिक क्रान्ति

स्मरणीय है कि जब कभी धर्म रूढ़ियों के कटघरे में घिर जाता है तो वह जड़ बन जाता है । उसका सारा स्पन्दन, उसकी सारी सप्राणता खत्म हो जाती है । रूढ़ियों की जकड़ में अधिक कसाव ले आने का श्रेय धार्मिक पंडों को है । वे धर्म को अधिक कर्मकांडी बना देते हैं, जिसका उदय प्रकारान्तर से जनवर्ग का शोषण है । इस शोषण और अत्याचार,रूढ़िवादिता,परम्परा, जड़ता,कर्मकाण्ड आदि के विरोध में धार्मिक क्रान्तियाँ होती आई हैं । धर्म के ठेकेदार बने पुरोहितों का वर्ग, इस विरोध को सहन नहीं पाता । वह परम्परा को टूटने नहीं देना चाहता । वह परम्परित धर्म के विरोधियों के प्रति अनेक प्रकार से अत्याचारी हो उठता है । मंसूर,ईसामसीह तथा और न जाने कितने व्यक्ति धार्मिक क्रान्ति के फलस्वरूप धर्म के ठेकेदारों की कोपदृष्टि के कारण शहीद हुए हैं,उन्होंने सत्य का मार्ग अन्त तक गहा है, जब कुछ सहा है, जो उचित समझा है, कहा है । प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक ईसाई मत के संघर्ष के फलस्वरूप हुए मतभेद और विनाश को भी भुलाया नहीं जा सकता, किन्तु जनता और जनता के सच्चे प्रतिनिधि इन विरोधों की परवाह नहीं करते । अनेक त्याग, उत्सर्ग और अत्याचारों को सहन कर वे जनता के लिए नये मार्ग की खोज निकालते हैं । जड़ और परम्परा पर चेतन और नवीन की विजय होती है । नये धर्म का प्रवर्तन होता है, पुराना धर्म टूट जाता है ।

धर्म मानव जीवन का महत्वपूर्ण अंग रहा है । वह एक प्रकार से जिन्दगी ही बना है । इसलिए परम्परा और रूढ़ि के विरोध में उभरने वाली धार्मिक क्रान्ति की

महत्वपूर्ण है । राजनीतिक क्रान्ति के साथ धार्मिक क्रान्तियाँ भी अक्सर होती रही हैं, क्योंकि परतंत्र जाति में रूढ़ियां,परम्परायें, अंधविश्वास ज्यादा होते हैं । उन्हें मिटाने के लिए नये धर्म का प्रवर्तन,सुधारों की नई दिशायें फूटती रही हैं । आर्य समाज,रामकृष्ण मिशन, ब्रह्मसमाज आदि ने भारत को राष्ट्रीय क्रान्ति को नया मोड़ दिया है । ये क्रान्तियाँ भी राजनीतिक क्रान्ति के साथ-साथ होती रही हैं । धार्मिक सुधारों और परिवर्तनों ने जीवन को नई शक्ति, नई गति और आत्मविश्वास दिया है, जिसके बल पर राष्ट्रीय और राजनीतिक क्रान्ति अधिक तीव्र, अधिक पूर्ण और अधिक सफल हुई है ।

सामाजिक क्रान्ति

ऊपर बताया जा चुका है कि राज्यक्रान्ति की तरह सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति भी बहुत महत्वपूर्ण है । जवाहरलाल नेहरू के अनुसार सामाजिक क्रान्ति में राजनैतिक क्रान्ति भी सम्मिलित है[1] । सामाजिक क्रान्ति समाज का ढांचा ही बदल देती है । इस परिवर्तन में राजनीतिक,आर्थिक और धार्मिक परिवर्तन भी अन्तर्भुक्त हो सकते हैं । श्री नेहरू ने फ्रांस और इंग्लैण्ड की राज्यक्रांतियों को बहुत हद तक सामाजिक कहा है[2] । उन्होंने आगे कहा है कि "ऐसी सामाजिक क्रान्तियों के अंजाम सिर्फ सियासी इन्कलाब से कहीं ज्यादा गहरे और मुकम्मल होते हैं और उनका सामाजिक हालत से गहरा ताल्लुक होता है[3] ।" विषम सामाजिक परिस्थितियाँ ही सामाजिक क्रान्ति की प्रेरणा देती हैं । जब सामाजिक जीवन बोझ बन जाता है और विषम स्थिति को बर्दाश्त करना कठिन हो जाता है, तब जनता सुधार का कोई अन्य रास्ता न देख, सामाजिक क्रान्ति का सहारा लेती है । इस क्रांति से समाज का ढांचा बदल जाता है, रूढ़ियाँ टूट जाती हैं और नये मूल्यों की स्थापना होती है । प्रत्येक देश में सामाजिक क्रान्तियाँ हुई हैं । इन क्रांतियों से न केवल समाज का ढांचा ही बदला, बल्कि बड़े-बड़े साम्राज्य भी ध्वस्त हो गए । स्पष्ट है कि सामाजिक क्रान्ति राजनीतिक क्रान्ति से अधिक महत्वपूर्ण और व्यापक है ।

१- विश्व इतिहास की झलक- जवाहरलाल नेहरू,पृ०८२३, सं० प्रथम
२- वही
३- वही

किन्तु जिस अर्थ में यहां सामाजिक परिस्थिति की चर्चा की गयी है, वह एक वर्ग अथवा जाति विशेष की मान्यताओं, नीतियों और स्थापनाओं से सम्बन्धित है। वह इतनी विस्तृत नहीं है कि राजनीतिक क्रान्ति भी उसमें अन्तर्भुक्त हो सके। पर इतना तो मानना ही होगा कि सामाजिक मनःस्थिति में परिवर्तन होने पर ही राजनीतिक अथवा कोई भी क्रान्ति सम्भव है। इस प्रकार सामाजिक क्रान्ति से अन्य क्रान्तियों का सम्बन्ध बहुत हद तक सीधा और गहरा है।

आर्थिक क्रान्ति

आर्थिक क्रान्ति शोषण के फलस्वरूप उत्पन्न होती है। जहाँ समाज की अर्थ-व्यवस्था में समानता नहीं होती और समाज अमीर और गरीब में बटा होता है, गरीबों की स्थिति असमानता और शोषण के कारण अत्यन्त कष्टप्रद व और कठिन हो जाती है। शोषण की एक सीमा होती है। जब कठिन श्रम के बावजूद मनुष्य की अनिवार्य आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं होतीं, तब शोषित वर्ग शोषकों के विरुद्ध क्रान्ति के लिए खड़ा होता है। स्मरणीय है कि ऐसी क्रान्ति पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में ही होती है। तात्पर्य कि पूँजीवादी शोषण को समाप्त करने के लिए आर्थिक क्रान्तियाँ जन्म लेती हैं। इन क्रान्तियों का परिणाम समान अर्थ-व्यवस्था में प्रकट होता है, जहाँ काम के अनुसार रोटी मिलती है। इस क्रान्ति की चर्चा सामाजिक जनतंत्रात्मक क्रान्ति के अन्तर्गत की जा चुकी है।

भारतवर्ष में राष्ट्रीय क्रान्ति के सन्दर्भ में आर्थिक क्रान्ति भी हुई। विदेशी शासन के अन्तर्गत भारत की अर्थ-व्यवस्था जीवन के उपयुक्त नहीं रह गयी थी। टैक्स, विदेशी वस्तुओं के आयात तथा विदेशी पूँजी के दबाव के कारण राष्ट्रीय उद्योगधन्धों का विनाश विदेशी अर्थ-व्यवस्था के परिणाम थे, इसलिए राष्ट्रीय क्रान्ति के अन्तर्गत जनता में आर्थिक क्रान्ति की ओर भी झुकाव हुआ। उसने टैक्स आदि का विरोध किया। स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के माध्यम से भारतीय उद्योगधन्धों को विकसित करने की इच्छा प्रकट की तथा विदेशी वस्तुओं के आयात का विरोध किया।

विदेशी शासन में न केवल राजनीतिक बल्कि आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं पर भी शासक का प्रभाव होता है। अर्थतंत्र तो पूरी तरह शासकों के अधिकार में रहता है, क्योंकि अर्थ राज्य-व्यवस्था का अनिवार्य अंग है। जहां भी विदेशी शासन समाप्त करने के प्रयत्न हुए हैं, अर्थ-व्यवस्था में भी क्रान्ति की गयी है। कारण यह है कि अर्थ-व्यवस्था में स्वतन्त्रता के बाद बिना राजनीतिक स्वतन्त्रता व्यर्थ हो जाती है। इसलिए

राष्ट्रीय क्रान्ति के अन्तर्गत होने वाली राजनीतिक क्रान्ति के साथ आर्थिक क्रान्ति भी अनिवार्य रूप से चलती है ।

क्रान्ति और सुधार

कभी-कभी क्रान्ति विषयक परिवर्तन को सुधार के अन्तर्गत भी गिना जाता है । जिस प्रकार क्रान्ति समाज में व्याप्त किसी दोष के निराकरण के लिए की जाती है,उसी प्रकार वर्तमान दोषों को दूर करने के लिए सुधार की भी अपेक्षा होती है ।जहाँ तक परिवर्तन का सम्बन्ध है,क्रान्ति और सुधार में मात्रागत अन्तर ही मालूम होता है । वैसे परिवर्तन और सुधार के लिए जो नीतियाँ अपनायी जाती हैं, उनमें भी अन्तर है,किन्तु लक्ष्य एवं क्रान्ति परवर्ती परिवर्तन की दृष्टि से दोनों समान लगते हैं । सुधारवादियों को विकासवादी भी कहा जा सकता है, जब कि क्रान्तिवादी इनसे भिन्न हैं । विकासवादी और सुधारवादी दोनों की गणना एक ही वर्ग के अन्तर्गत की जा सकती है । सुधारवादी व्यवस्था में आए हुए दोषों में सुधार कर पूर्वस्थिति की, जब कि सुख-समृद्धि थी, पुनः स्थापना करना चाहते हैं ।

सुधार के लिए सुधारवादी कई विधियाँ अपनाते हैं । निवेदन,प्रार्थना, आज्ञाकारिता, आग्रह और आन्दोलनात्मक कार्रवाइयों के माध्यम से वे सुधार की चेष्टा करते हैं और इस काम में सफल भी होते हैं । इस प्रकार सुधारवाद समझौते की नीति है,। क्रान्ति इस दृष्टि से भिन्न है । वह दोषपूर्ण व्यवस्था को आमूल बदल देती है । समझौते पर उसका विश्वास नहीं,इसलिए पुरानी व्यवस्था को मिटाकर नयी व्यवस्था क्रान्ति के बाद आती है । पुरानी व्यवस्था का कुछ नहीं, वह तो बर्बर व्यवस्था थी,जिसे मिटाना था । इस प्रकार क्रान्ति और सुधार में अन्तर है । दोनों को एक नहीं माना जा सकता ।

विकासवादी वर्तमान युग की सभी अच्छी व्यवस्थाओं को मानते हैं और उनके माध्यम से आगे बढ़ते जाने का सिद्धान्त अपनाते हैं । इस प्रकार शान्तिपूर्वक विकास करते-करते सुधारों के माध्यम से वे वर्तमान व्यवस्था को उत्तम बनाने के सिद्धान्त को मानते हैं । सुधारवादी और विकासवादी सिद्धान्तों में लक्ष्यप्राप्ति की दृष्टि से कोई विशेष अन्तर नहीं । दोनों का लक्ष्य वर्तमान व्यवस्था में सुधार करना है । यह सुधार शान्तिपूर्ण ढंग से ही होगा । इसलिए इसमें काफी समय लगेगा,क्योंकि सुधार का रास्ता निवेदन का रास्ता है, आग्रह का रास्ता है । दोनों समाज-व्यवस्था में नवीनता चाहते हैं, दोष दूर करना चाहते हैं किन्तु इसके लिए अपनाए जाने वाले साधन क्रान्ति से भिन्न हैं ।

क्रान्तिकारी को इतना धैर्य नहीं कि वह दीर्घ काल तक प्रतीक्षा करे और तब अपने लक्ष्य की प्राप्ति हो । वह लक्ष्य की प्राप्ति में शीघ्रता चाहता है, क्योंकि उसमें असन्तोष,घृणा और क्रोध की भावना इतनी तीव्र होती है कि वह ठहर नहीं सकता, शीघ्रातिशीघ्र अन्यायपूर्ण व्यवस्था में,असमान व्यवस्था में परिवर्तन लाने के लिए वह क्रम और शान्ति टूटने की चिन्ता नहीं करता । इसलिए वह हिंसा को भी माध्यम रूप में ग्रहण करने के लिए तैयार रहता है ।

प्रश्न उठता है कि क्रान्ति में इतना उतावलापन और इतनी अधीरता क्यों आती है । मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मनुष्य के सामने जो सुन्दर सपना होता है,उसे वह यथा-शीघ्र साकार करना चाहता है । उसे वर्तमान दुरवस्था से असंतोष है । इसलिए उसके प्रति उसके मन में आक्रोश है,क्रोध है । क्रोधाभाव के कारण ही क्रान्ति उत्पन्न होती है । लास्की ने 'भय को क्रान्ति का जनक बताया है[1] ।' लास्की का भय शासन-व्यवस्थापक के पक्ष में है, जो क्रान्तिकारियों द्वारा अपने शासन के छिन जाने के भय से अधिक दमन करने वाला, अधिक अत्याचारी भी हो सकता है । इस प्रकार लास्की ने भय की स्थिति सत्ता-धारी पर आरोपित किया है । परिवर्तन का भय ही अत्याचार और दमन की वृद्धि का कारण बनता है और तभी क्रान्ति उत्पन्न होती है । हमारी दृष्टि है कि शासक की अपेक्षा जैसा लास्की ने माना है, शासित में व्याप्त भय क्रान्ति के उत्पन्न होने का महत्वपूर्ण कारण होता है । क्रान्तिकारी को अपने भविष्य के स्वप्न के साकार होने में सन्देह होता है । इस शंका के कारण ही उसमें भय उत्पन्न होता है । इसलिए अपनी वांछित नवीन व्यवस्था की स्थापना के लिए वह उतावला रहता है और अधीरता की स्थिति में सुधार और शान्ति का क्रम मिटाकर क्रान्ति के माध्यम से पूरी शासन-व्यवस्था को ही बदल देता है । क्रान्ति का यह रूप भयानक और रुद्र होता है । इस रौद्र रूप में अमानुषिकता और क्रूरता भी आ जाती है, क्योंकि उसके बिना नयी व्यवस्था शीघ्रता से नहीं हो सकती ।

क्रान्ति के इस रौद्र रूप के अतिरिक्त उसका एक रूप सौम्य अथवा अहिंसक भी है । सौम्य क्रान्ति में भी संघर्ष का विधान है । वह भी शीघ्र अपने लक्ष्य की प्राप्ति

१- रिफ्लेक्शन्स आन द रिवोल्यूशन आफ आवर टाइम्स- हेराल्ड जे० लास्की, पृ०९२,
सन् १९४३

चाहती है । उसका लक्ष्य है— मानव-मंगल । कुछ लोग यह मानते हैं कि क्रान्ति अहिंसात्मक अथवा सौम्य नहीं होती । वह सदा हिंसात्मक होती है, किन्तु संत विनोबा ने इस क्रान्ति का खण्डन किया है । भूदान क्रान्ति की व्याख्या करते हुए उन्होंने निम्न शब्दों में क्रान्ति की भावना का विश्लेषण प्रस्तुत किया है—`इस यज्ञ से असली क्रान्ति सम्भव होगी, ऐसा कुछ लोग कहते हैं । रक्तपात बिना असली क्रान्ति कैसे हो ही नहीं सकती । रक्तपात से केवल उथल-पुथल होती है, उथल-पुथल कोई क्रान्ति नहीं । क्रान्ति याने समाज की प्रचलित मान्यताओं को तेजी से आमूलाग्र बदलना । यह रहोबदल विचार-प्रचार से ही होता है, तलवार से नहीं[1] ।` दादा धर्माधिकारी ने सशस्त्र क्रान्ति को `छीना झपटी का, और जबरदस्ती का, हत्याओं का रास्ता` कहा है । वे आश्चर्य प्रकट करते हुए कहते हैं,` आश्चर्य है कि बड़े-बड़े अक्लमंद लोग इसे क्रान्ति का तरीका कहते हैं[2] ।` उनके अनुसार यह तरीका अपनाने पर इन्सानियत की जड़ ही कट जाती है । स्पष्ट है कि अहिंसक क्रान्ति के समर्थक सशस्त्र क्रान्ति में न तो विश्वास करते हैं और न उसे मानव कल्याण के लिए उपयुक्त ही समझते हैं ।

शासन-व्यवस्था में परिवर्तन कानून के माध्यम से भी लाया जा सकता है । मनुष्य का सुख छीननेवाले ,उसके अधिकारों को खत्म करने वाले कानून की जगह मानव सुख और जन-कल्याण के आधार पर नयी शासन-विधि की स्थापना इस क्रान्ति के अंतर्गत अपेक्षित है । अहिंसक क्रान्तिकारी यह मानते हैं कि जब तक जनतंत्र में बहु संख्या का महत्व रहेगा, कानून के द्वारा क्रान्ति करना क्रान्ति करना सम्भव नहीं है । इसका कारण यह है कि संख्या और आकार को महत्व देने के कारण जनतंत्र में महत्वपूर्ण मानवीय गुणों की उपेक्षा हो जाती है । ऐसे गुण गौण पड़ जाते हैं । ऐसा जनतंत्र (औपचारिक और निर्जीव) होने पर ही क्रान्ति उत्पन्न हो सकती है अन्यथा जड़ और निर्जीव जनतंत्र क्रान्ति का माध्यम नहीं हो सकता । `जनतंत्र की वास्तविक क्रान्ति के लिए कानून जरूरी है लेकिन कानून के लिए एक सामाजिक संदर्भ और अधिष्ठान की जरूरत होती है[3] ।`

१- क्रान्ति की पुकार- ठाकुरदास बंग, पृ०१६-२०,सन् १९५९

२- क्रान्ति का अगला कदम- दादा धर्माधिकारी,पृ०२०-२१,सन् १९५५

३- वही, पृ० २२ सन् १९५५

सौम्य क्रान्ति अहिंसात्मक क्रान्ति भी कही जा सकती है । इसके प्रवर्तक महात्मा गांधी थे । वे महान क्रान्तिकारी थे। संसार व्यापी संस्कृति और जीवन के किसी भी अंग की बर्बरता के विरुद्ध गांधी प्रस्तुत दिखाई पड़े । उन्होंने माना कि मनुष्य के हृदय में सत्-असत् शक्तियों का संघर्ष होता रहता है । यदि मनुष्य असत्य की ओर झुकता है तो वह सत्य की ओर भी झुक सकता है । स्व स्वरूप को पा लेने पर मनुष्य आत्मस्थ हो सकता है । तभी उसके द्वारा निर्मित संसार सुन्दर हो सकता है । गांधी की क्रान्ति का मूल आधार यही है ।

गांधी द्वारा प्रवर्तित अहिंसक क्रान्ति में शस्त्र की अपेक्षा नहीं होती । इसमें विशुद्ध उत्सर्ग आवश्यक है । प्रसन्नतापूर्वक अपने को बलिदान कर देना उनकी क्रान्ति-पद्धति है । आतंक, शक्ति, दमन, अस्त्र-शस्त्र किसी की परवाह अहिंसक क्रान्तिकारी को नहीं होती । "युद्ध और संघर्ष तथा क्रान्ति की कल्पना को ही नहीं, प्रत्युत व्यावहारिक रूप से उन सब को रक्तपात, हिंसा और द्वेष के भौतिक तथा पाशविक स्तर से ऊंचा उठाकर पुनीत और मानवीय नैतिक द्वार पर ले आना अहिंसक क्रान्ति-पद्धति की विशेषता है जो संभवतः विश्व के इतिहास में बेजोड़ है[१] ।"

महात्मा गांधी क्रान्ति का सूत्रपात मनुष्य के अन्तर में मानते हैं । वे यह नहीं मानते कि क्रान्ति केवल बाह्य कारणों से होती है और उसकी क्रिया बाह्य जगत में ही घटित होती है । क्रान्ति न तो केवल भौतिक है और न ही विशुद्ध भौतिक घटना-मात्र । उनकी मान्यता है कि अवश्य बाह्य परिस्थितियों के सिवा अमूर्त और अदृश्य कारणों के फलस्वरूप भी क्रान्तियाँ होती हैं । मानसिक क्षेत्र में क्रान्ति-भावना उदित होकर मनुष्य की कल्पना और उसके विचारों को प्रभावित करती है । यही भावना कालान्तर में व्यावहारिक रूप ग्रहण कर महान् सक्रियता और प्रचण्ड परिवर्तन में मूर्त होती है ।

भौतिक परिस्थिति असह्य न होने पर भी कालक्रम से जीवन विषयक कल्पना में परिवर्तन आते रहते हैं । इसलिए प्रचलित धारणाओं, मान्यताओं और परम्पराओं के औचित्य की दृष्टि से भी बदल जाती है । इस बदले हुए दृष्टिकोण के कारण नये मूल्य उभरते हैं । नये मूल्य जीवन की वह नयी दिशा मनुष्य को अभिमुख कर देती है । परंपरागत मान्यताओं और धारणाओं से इनका सामंजस्य न हो सकने के कारण तथा नयी मान्यता का परम्परा द्वारा विरोध होने के कारण मनुष्य का हृदय विचलित हो उठता है । उसमें अत्यधिक आक्रोश उत्पन्न होता है । विपरीत स्थितियों के फलस्वरूप मनुष्य के

१- बापू और मानवता-कलापति हाशमी, [illegible]

मन में विद्रोह की पृष्ठभूमि पर क्रान्ति उत्पन्न होती है । इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि क्रान्ति-भावना मानसिक होती है, क्योंकि तत्सम्बन्धी विचार मन में ही उपजते हैं । इस प्रकार हम देखते हैं कि 'जीवन के मूल्य का अंकन करने वाले प्रचलित नैतिक आदर्शों का परिवर्तन और नये आदर्शों की हृदय में स्थापना से ही क्रान्तियाँ होती हैं[1] ।'

गांधी ने क्रान्ति के उदय की वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है । उनके अनुसार त्रस्त, पददलित, प्रताड़ित मनुष्यों के हृदय को क्रान्तिकारी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसके मानसिक क्षेत्र में क्रान्ति उत्पन्न की जाय । जीवन के नये मूल्यों और आदर्शों की कल्पना जाग्रत होने से ही मानसिक क्रान्ति की जा सकती है । इसके लिए उन्होंने मनुष्य के नैतिक मूल्यों को जगाना आवश्यक माना है । नैतिक मूल्य उत्पन्न होने पर ही प्रचलित अन्याय और अनीति को अनैतिक समझने का भाव उत्पन्न होगा । अन्याय के विरोध में जन मानस को उद्बुद्ध करना आवश्यक है, क्योंकि अन्याय और अनीति सहना उचित नहीं । उनके अनुसार 'अन्याय करने वाले की तुलना अपेक्षा वह अधिक पापी और पतित है जो चुपचाप अन्याय के सम्मुख सिर झुका देता है अथवा अन्यायी को सहयोग प्रदान करता है । अन्याय के अस्तित्व का उत्तरदायित्व जितना आततायी पर है, उससे अधिक उन पर है जो उसे सहन कर लेते हैं और बिना प्रतिरोध के उस धारा को अबाध प्रवाहित होने देते हैं[2] ।'

मानसिक क्रान्ति के लिए मनुष्य के चरित्र का विकास आवश्यक है । गांधी यही करना चाहते हैं । वे चरित्र विकास से मनुष्य को इतना ऊंचा आदर्शमय, त्यागमय और उत्सर्ग करने वाला बनाना चाहते हैं कि अपनी सहिष्णुता, सत्य की दृढ़ता, त्याग, शान्ति आदि के माध्यम से वह आततायी के हृदय का परिवर्तन कर दे । इस प्रकार त्याग, उत्सर्ग और सत्य की भूमि पर खड़ा होकर गांधी ने अन्याय, अत्याचार और प्रतारणा का विरोध किया और अहिंसक क्रान्ति के माध्यम से नयी व्यवस्था की स्थापना की । कुछ लोग गांधी की अहिंसक क्रान्ति को सुधार के अंतर्गत लाकर रखना चाहें, लेकिन ऐसा करना वस्तुगत दृष्टि से न्यायसंगत नहीं होगा, क्योंकि गांधी का लक्ष्य सुधार नहीं था और न छोटे मोटे सुधारों के कारण उन्होंने कभी अन्यायी अथवा अत्याचारी से समझौता ही किया । उनका लक्ष्य था— परिवर्तन । आततायी के हृदय

१- बापू और मानवता- कमलापति शास्त्री, पृ०२९२, सन् १९४८

२- वही, पृ० २९३

परिवर्तन के द्वारा जीवन-व्यवस्था,राज्य-व्यवस्था,अर्थ-व्यवस्था-- सब में उन्होंने परिवर्तन किया । इसलिए उनकी अहिंसक क्रान्ति को सुधार नहीं कहा जा सकता । उन्होंने क्रांति के क्षेत्र में नया प्रयोग किया । क्रांति के इतिहास में उनका यह प्रयोग अपनी सफलता के कारण अद्वितीय माना जायगा ।

गांधी की क्रांति सत्याग्रह और असहयोग के रूप में प्रकट हुई है । उन्होंने इस आधार पर क्रांति कर सजीव, मूर्त और अधिक संवेदनशील समाज-व्यवस्था की स्थापना की । रचनात्मक कार्यक्रमों के माध्यम से उन्होंने नयी समाज-व्यवस्था कायम की । गांधी ने सत्याग्रह और रचनात्मक कार्यक्रमों को साथ-साथ चलाया । इस प्रकार संघर्ष और विनाश के साथ संघटन और निर्माण की प्रक्रिया भी होने के कारण उनकी क्रान्ति भावना विशिष्ट हो गयी । किन्तु,संसार की अन्य किसी क्रान्ति में यह प्रक्रिया नहीं अपनायी गयी । वहां विनाश और तोड़-फोड़ के उपरान्त निर्माण क्रिया हुई है । रूस की बोल्शेविक क्रान्ति फ्रांस तथा अमेरिका की क्रान्तियों में यही प्रक्रिया दिखाई पड़ती है । लेकिन, गांधी ने इस दृष्टि से क्रान्ति के क्षेत्र में अभिनव प्रयोग किया । उन्होंने अहिंसा के माध्यम से विचारों में परिवर्तन कर संघर्ष और निर्माण को साथ-साथ चलाया और उसमें वे पूर्णतः सफल हुए । हिंसक क्रान्ति अधिकार सत्ता और अधिकार शक्ति को साधन बनाकर रचनात्मक कार्य करती है । गांधी ने अधिकार प्राप्ति तक प्रतीक्षा नहीं की । रचनात्मक कार्यों के माध्यम से उन्होंने निर्माण की सुदृढ़ पृष्ठभूमि क्रान्ति की पूर्णता के पहले ही स्थापित कर दी थी । इसीलिए उनकी अहिंसक क्रान्ति के उपरान्त अधिकार सत्ता प्राप्त होने पर व्यवस्था की नयी दिशा में प्रगति हो सकी ।

गांधी की क्रांति का रास्ता शान्ति का है । वे हृदय-परिवर्तन पर विश्वास करते हैं । एक ओर वे क्रान्तिकारी के हृदय में नये और पुराने मूल्यों के संघर्ष का भाव नैतिक पृष्ठभूमि पर उत्पन्न करते हैं,तो दूसरी ओर शासक वर्ग का हृदय अपने त्याग, सहिष्णुता आदि से बदल देना चाहते हैं । क्रान्ति के लिए हृदय की शुद्ध भावना बदलने की जरूरत होती है । ऐसी क्रान्ति की सफलता के बाद शासक सत्ता हस्तान्तरित कर देता है । मार्क्स क्रान्ति में इस तरह के हस्तान्तरण का प्रश्न नहीं उठता, क्योंकि वे अपनी शक्ति से सत्ता ले लेना चाहते हैं । मार्क्स,एंगिल्स और लेनिन हस्तान्तरण शब्द का प्रयोग कहीं नहीं करते । वे 'कैप्चर' और 'सीज़र' शब्दों का प्रयोग ऐसे अवसर पर करते हैं । शासक के अनेक विरोधों के बावजूद,शासन तंत्र बलपूर्वक अपने अधिकार में कर लेना ही 'सीज़र' या 'कैप्चर' है । जहाँ क्रान्ति की आग ज्वाला बनकर उठती है वहाँ

हस्तान्तरण की स्थिति नहीं आ सकेगी । जहाँ बल प्रयोग से ही सत्ता हस्तगत की जा सकती है । जो क्रान्ति धीरे-धीरे होगी, उसी में सत्ता का हस्तान्तरण होगा ।

किन्तु समाजवादी क्रान्तिकारी ऐसी क्रान्ति को क्रान्ति नहीं कहते । उनके अनुसार सुधार की तरह किस्त किस्त करके क्रान्ति नहीं होती ।[1] वे एकाएक पुरानी व्यवस्था को उलट कर एकदम नयी व्यवस्था कायम कर देते हैं । उनके अनुसार सुधार से क्रान्ति नहीं हो सकती और न ही सुधार क्रान्ति है । सशस्त्र क्रान्तिवादी एक झटके में क्रान्ति करके बल प्रयोग से पुरानी व्यवस्था मिटा देना चाहते हैं । यह झटका हमेशा सफल ही होगा , ऐसा नहीं कहा जा सकता । इसलिए विश्व की अधिकांश सशस्त्र क्रान्तिकारी क्रान्तियां सफल ही हुई हों, ऐसी बात नहीं है । जब भी पुरानी व्यवस्था से क्रांतिकारियों की शक्ति कम पड़ी है, वे हार गये हैं और उनकी क्रान्ति असफल हुई है । इसलिए झटका की पद्धति बहुत सुरक्षित और सही पद्धति हो, ऐसी बात नहीं है,किन्तु शान्तिपूर्वक ठोस आधार पर रचनात्मक कार्यों की पृष्ठभूमि पर होने वाली अहिंसक क्रांति असफल होगी, इस पर विश्वास नहीं होता,क्योंकि गांधी ने उसका व्यावहारिक रूप भारत की राष्ट्रीय क्रान्ति में प्रस्तुत किया और वह सफल भी हुई । इतना निश्चित है कि बलप्रयोग द्वारा होने वाली सशस्त्र क्रांति की अपेक्षा अहिंसक क्रान्ति में शक्ति और सहिष्णुता की अपेक्षा अधिक होती है, क्योंकि अहिंसक क्रान्तिकारी का अस्त्र सत्याग्रह और असहयोग है । वह दमन के चक्र में पिसता है । अनेक प्रकार से पीड़ित और प्रताड़ित होता है, किन्तु उसके होठों पर आह नहीं आती । वह अन्त तक दमन को झेलते हुए अन्याय का विरोध करता है । इसलिए उसमें शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के बल की अधिक अपेक्षा होती है ।

सुधार क्रान्ति नहीं है, किन्तु महात्मा गांधी की अहिंसक क्रान्ति सुधार नहीं है । वह क्रान्ति है । सत्याग्रह और असहयोग उसकी प्रक्रियाएँ हैं, जिनके माध्यम से वे अपने लक्ष्य तक पहुंचे । उन्होंने सुधार के कारण अन्याय से कभी समझौता नहीं किया । इसलिए अहिंसक क्रान्ति को सुधार के अन्तर्गत नहीं रखा जाना चाहिए । परवर्ती अध्यायों में राजनीतिक परिस्थितियों के अन्तर्गत महात्मा गांधी की अहिंसक क्रान्ति का स्वरूप प्रस्तुत किया गया है, जिसके आधार पर उनके क्रान्ति-विषयक प्रयोग और उनकी

१- क्रान्ति और संयुक्त मोर्चा- स्वामी सहजानन्द सरस्वती, पृ०[illegible],सन् [illegible]

सफलता का विश्लेषण किया जा सकेगा । इस विश्लेषण से यह निष्कर्ष लेना असंगत अथवा कठिन नहीं होगा कि विश्वक्रान्ति के इतिहास में महात्मा गांधी ने एक अभिनव और सफल प्रयोग किया है ।

सशस्त्र क्रान्ति की सफलता की सम्भावनाओं पर अनायास ही लोगों का ध्यान चला जाता है और यह मानते हैं कि क्रान्ति में बल प्रयोग अपेक्षित है, किन्तु अहिंसक क्रान्ति ने विचारकों और मनस्वियों के समक्ष यह उदाहरण प्रस्तुत किया कि पुरानी सत्ता के स्थान पर नयी सत्ता की स्थापना में न केवल शस्त्र बल्कि सत्याग्रह भी सफल हो सकता है । हम यह मान कर क्रान्ति की विचारधारा का विश्लेषण करेंगे कि अहिंसक क्रान्ति सफल और सच्ची क्रान्ति है ।

प्रतिक्रान्ति

प्रतिक्रान्ति क्रान्ति के विपरीत अर्थ में व्यवहृत शब्द है । सामान्यत: प्रतिक्रांति क्रान्ति के विरोध में उत्पन्न क्रान्ति है । इससे यह अनुमान होता है कि प्रतिक्रान्ति पुरातन व्यवस्था के प्रति व्यामोह है । इस सम्बन्ध में लास्की ने अपनी पुस्तक "रिफ्लेक्शन्स आन द रिवोल्यूशन आफ आवर टाइम्स " में लिखा है कि प्रतिक्रान्तिकारी इस तथ्य से कम अवगत नहीं हैं कि अभिजात्य वर्ग के पुनर्जन्म की सम्भावना नहीं है ।प्रतिक्रांति अनुदार भावना का नाम नहीं है । प्रतिक्रान्ति करने वाले पुरातन प्रेमी इसलिए नहीं होते कि वह पुराना है, बल्कि वे आधुनिक विज्ञान की सभी विधियों और सम्भावित संस्थाओं का अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए उपयोग करते हैं । प्रतिक्रान्ति का लक्ष्य किसी वर्ग के लाभ के लिए अपने देश की सीमाओं का विस्तार करना नहीं होता । प्रतिक्रान्ति राज्य की स्थापना के पूर्व के अधिकारियों तक ही सुविधाओं को सीमित रखना चाहती है और इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए मार्ग के अवरोधों को हटाने की आवश्यकता है ।

प्रतिक्रान्ति गणतंत्र विरोधी होती है । गणतंत्र के अन्तर्गत उपलब्ध सुख - सुविधाओं को सर्वजन सुलभ बनाया जाता है । गणतंत्र शान्ति चाहता है, क्योंकि समानता और न्याय के आधार पर वह सारे काम करता है । उसके सारे कार्य संवैधानिक और विवेकपूर्ण होते हैं । इसीलिए समानता के सन्दर्भ में स्वतन्त्रता उसका लक्ष्य है,किन्तु प्रतिक्रान्ति युद्धमूलक होती है । विधान और विवेक का पालन उसके अन्तर्गत नहीं होता ।

जनसमूह प्रतिक्रान्ति के सिद्धान्त के सामने नहीं झुकता । हर युग में ऐसे मनुष्य हुए हैं, जिन्होंने प्रतिक्रान्ति के सामने झुकने के पहले अपने को खत्म कर दिया है । जब ऐतिहासिक परिस्थितियाँ जनता को अपने अधिकार में कर लेती हैं, तब प्रतिक्रान्ति आती है । जब आशाएँ टूटने, उनकी असफलता की अनुभूति बहुत गहरी होने और परम्परागत राजनीतिक संस्थाओं के प्रति आदर की भावना संकुचित रूप से होने पर प्रतिक्रांति पैदा होती है ।

जहाँ क्रान्ति के माध्यम से किये गये परिवर्तन के बावजूद प्रतिक्रियात्मक शक्तियाँ शेष रह जाती हैं, वहां प्रतिक्रांति की सम्भावना होती है । प्रतिक्रियात्मक

शक्तियाँ क्रान्ति का प्रभाव तथा उसके फलस्वरूप स्थापित नयी व्यवस्था का प्रभाव कम होते ही सिर उठाने लगती हैं। यथावसर वे क्रान्ति द्वारा स्थापित व्यवस्था के विरोध में प्रतिक्रान्ति करती हैं तथा पुन: क्रान्ति के पूर्व स्थापित व्यवस्था की तरह कोई व्यवस्था कायम करती हैं। यह आवश्यक नहीं है कि प्रतिक्रान्ति के द्वारा मात्र परम्परा की ही स्थापना हो। इसलिए प्रतिक्रान्ति के फलस्वरूप पूर्व व्यवस्था जैसी ही कोई अन्य व्यवस्था कायम हो जाती है।

क्रान्ति मानवतावादी तथा जनतांत्रिक चेतना तथा क्रिया है। प्रतिक्रान्ति में सम्पूर्ण मानवता के लाभ का कोई प्रश्न ही नहीं रहता। एक वर्ग-विशेष का लाभ ही प्रतिक्रान्ति का मूल लक्ष्य होता है। इसलिए प्रतिक्रान्ति जनतांत्रिक लोक-शासन में विश्वास नहीं करती।

प्रतिक्रान्ति को एक हद तक प्रतिक्रियावादी प्रवृत्ति कहा जा सकता है, क्योंकि प्रतिक्रान्ति के द्वारा जो व्यवस्था स्थापित होती है, उसमें सर्वजन मंगल का लक्ष्य नहीं होता। सम्पूर्ण मानवता की सुख-सुविधा की ओर रुचि न होने के कारण इस चेतना का प्रतिक्रियावाद से निकट सम्पर्क स्वाभाविक है।

विनोबा भावे तथा महात्मागांधी ने अहिंसक क्रान्ति पर बल दिया तथा इसके माध्यम से समाज, अर्थ तथा राज-व्यवस्था में उन्होंने परिवर्तन किये हैं। अहिंसा के समर्थक वे क्रान्तिवादी मानते हैं कि अब क्रान्ति को वह नयी प्रणाली अपनायी जानी चाहिए, जिसके फलस्वरूप क्रान्ति द्वारा हुए परिवर्तन स्थायी हों। तात्पर्य कि प्रतिक्रान्ति की सम्भावनाओं को वे अहिंसक क्रान्तिवादी खत्म कर देना चाहते हैं। इसके लिए वे अहिंसक क्रान्ति का समाधान प्रस्तुत करते हैं, जो तलवार पर नहीं, त्याग पर, बल पर नहीं, आत्मबल पर अधिक जोर देती है। उनका कहना है कि शस्त्र द्वारा की जाने वाली क्रान्ति की प्रतिक्रिया प्रतिक्रान्ति में अवश्य होगी। इसलिए वे विचारक अहिंसक क्रान्ति के माध्यम से स्थायी परिवर्तन कर प्रतिक्रान्ति की सम्भावनाओं को समाप्त कर देना चाहते हैं।

स्थापनाएं

क्रान्ति प्रयोग की एक दिशा है । वर्तमान व्यवस्था, जो मानव का कल्याण नहीं कर सकती, के स्थान पर मनुष्य के सुख के लिए नयी व्यवस्था की स्थापना अपने-आप में एक प्रयोग है । पुरानी व्यवस्था के जड़,कुंठित,अन्यायपूर्ण हो जाने के कारण मनुष्य दुखी है,ऐसा मानकर अधिक सुख,सुविधा तथा कल्याण के लिए नयी व्यवस्था की स्थापना क्रान्ति के माध्यम से की जाती है, किन्तु नयी व्यवस्था,भविष्य के अनागत पृष्ठ की सम्भावनाओं की जानकारी किसी को नहीं होती । कल्याण की आशा ही नवीन की स्थापना की, उसके प्रयोग की प्रेरणा देती है । कभी क्रांतिकारियों की आशा पर पानी फिर जाता है । उन्हें उतना सुख,उतनी सुविधा नहीं मिल पाती, जितनी पाने की आशा उन्हें थी । ऐसी दशा में नयी व्यवस्था की स्थापना के लिए क्रान्ति करने का प्रयत्न प्रयोग मूलक ही कही जायेगी । रूस,अमेरिका,चीन,भारत सबमें क्रान्ति के उपरान्त नयी व्यवस्था का प्रयोग आरम्भ हुआ है ।

क्रान्ति और क्रान्ति के प्रयोग को आधुनिक युग का महत्वपूर्ण अवदान माना जायगा, क्योंकि मध्ययुग में ऐसे प्रयोग नहीं हुए । वस्तुत: मध्ययुगीन प्रवृत्ति में क्रान्ति, परिवर्तन आदि का स्थान नहीं था,क्योंकि नवीनता के प्रति उनमें आग्रह नहीं दिखता । उस युग में यह शंका बनी रही कि नवीन वर्तमान०व्यवस्था से उत्तम नहीं भी हो सकती है । इस कारण परिवर्तन के प्रति रुझान उस काल में प्रकट नहीं हुआ । परिवर्तन या क्रांति के प्रति यह उदासीनता प्रयोग के प्रति उदासीनता है । यों वैचारिक या धार्मिक क्रांतियां मध्ययुग या उसके पहले हुई हैं, किन्तु इससे यह नहीं कहा जा सकता कि मध्ययुग की प्रवृत्ति में प्रयोग का भाव है । यह भाव १८ वीं शताब्दी की उपज है । उसके बाद ही विश्व में अनेक राज्यक्रान्तियां हुईं और उनके माध्यम से शासन व्यवस्था या समाज-व्यवस्था को नया व्यावहारिक रूप मिला ।

समाज-रोग विज्ञान शास्त्र के अनुसार क्रान्ति एक ज्वर है, जिसके लक्षण पहचाने हुए हैं । यह एक संकट का काल है । मनोविज्ञान की दृष्टि से क्रान्ति सार्वजनिक क्षोभ,धार्मिक भावुकता,कट्टरता,वर्गों का दबाव और वैयक्तिकअसन्तोष प्रकट करती है

राजनीतिक शब्दावली में क्रान्ति आघातों का एक समूह है । आघात के फलस्वरूप शासनसत्ता दक्षिणपंथी से वामपंथी, बड़े दल से छोटे दल, जो अधिक आग्रही है, के हाथ में चली जाती है[1] ।

प्रत्येक युग की कुछ आवश्यकताएँ, आशाएँ तथा कल्पनाएँ होती हैं । ये कल्पनाएँ ये इच्छायें वर्तमान व्यवस्था में जब पूर्ण नहीं होतीं, तब उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया होती है । मनुष्य अपनी कल्पनाओं की पूर्ति के लिए अनेक प्रयत्न करता है, किन्तु शासक वर्ग वर्तमान में जीता है । उसके भविष्य के सुनहले सपने प्रिय नहीं होते । इसलिए वह सपनों का विरोध करता है । इस विरोध की प्रतिक्रिया क्रान्ति के माध्यम से प्रकट होती है । पतित, पीड़ित तथा दमित जाति के उद्धार, विकास तथा प्रगति का मार्ग क्रान्ति है । इस माध्यम से ही यह वर्ग उन्नति के पथ पर अग्रसर होता है ।

संत जस्ट ने कहा,—'प्रत्येक मनुष्य की प्रसन्नता किसी दूसरे स्वर्ग में नहीं, बल्कि यहीं और अभी इसी धरती पर प्राप्य है । यदि सामान्य जनता की प्रसन्नता के मार्ग में प्राचीन आदतें, विश्वास और संस्थाएँ बाधक होंगी तो उन्हें दूर करना ही होगा।'[2] प्रकट है कि क्रान्ति का मूल उद्देश्य मानवता का कल्याण है । वर्तमान युग मानवतावादी है । संसार के सभी कार्यों में मानव-हित का ध्यान रखा जाता है । क्रान्ति का मूल उद्देश्य भी मनुष्य ही है । जहाँ मनुष्य पीड़ित है, शोषित है, दमित है, वहाँ मानवता के हित के लिए क्रान्ति फूटती है । नयी व्यवस्था, जिसमें मनुष्य के सुख की असंख्य कल्पनाएँ और आशाएँ होती हैं, की स्थापना क्रान्ति का ध्येय है ।

क्रान्ति मनुष्य की प्रकृति है । वह एक साथ स्थिति में बहुत दिनों तक नहीं जी सकता । जगत और जीवन परिवर्तनशील है । इसलिए जगत और जीवन से सम्बद्ध मनुष्य भी परिवर्तन में रुचि लेता है

कोई भी व्यवस्था, चाहे वह कितनी भी अच्छी हो, अपने गुणों को स्थायित्व नहीं दे पाती । कालक्रम से अच्छी से अच्छी व्यवस्था भी विकृत और दोषपूर्ण हो जाती है । व्यवस्था के सूत्रधार व्यक्तिगत स्वार्थ, रुचि तथा अधिकार-मोह के कारण सुविधाओं

१- ए डिकेड आफ रिवोल्यूशन- क्रेन ब्रिंटन, पृ०१, सन १९३४

२- एन साइक्लोपीडिया आफ सोशल साइन्सेज, खण्ड १, पृ० १३५ पर उल्लिखित

और सुखों को जब अपने तक सीमित करने लगते हैं, सामान्य जनता के अधिकार और सुख कम होने लगते हैं । धीरे-धीरे रूढ़ियाँ भी व्यवस्थाओं में व्यापती हैं, उन्हें जड़ तथा निष्प्राण करने लगती हैं । ऐसी अवस्था में सामान्य जनता के मन में नवीन व्यवस्था की कल्पना स्वाभाविक रूप से आती है। ज्यों-ज्यों सुख-सुविधाओं के लिए जनता की ओर से माँग होती है, व्यवस्था के कर्णधार माँग का विरोध करते हैं । वे जनता के अधिकारों को खत्म कर स्वयं सब कुछ ले रखना चाहते हैं और सारे सुखों को अपने तक सीमित रखने की दिशा में आगे बढ़ते जाते हैं । इसी स्थिति में दमन और तेज होने लगता है । दमन की तीव्रता कुछ काल के लिए विरोध को भले दबा दे, क्रान्ति के विस्फोट को वह सदा के लिए नहीं दबा पाती, क्योंकि दमन से क्रान्ति की संभावना तथा संघटना अधिक निकट तथा तीव्र हो जाती है । इस प्रकार क्रान्ति जीवन की अनिवार्यता है, मनुष्य तथा उसके द्वारा निर्मित संस्थाओं के सम्बन्ध की एक महत्वपूर्ण कड़ी है ।

स्पष्ट है कि क्रान्ति के माध्यम से वर्तमान के स्थान पर नवीन की स्थापना के द्वारा परिवर्तन होता है । इस परिवर्तन में एक ओर पुरातन के विनाश का व्याकुल भाव रहता है, तो दूसरी ओर नवीन के निर्माण की योजना व तथा संकल्प भी निहित होता है । नये की स्थापना के बिना क्रान्ति अधूरी है । पुरातन के विनाश की भावना उसके प्रति आक्रोश के कारण उत्पन्न होती है, जो उस स्थिति में स्वाभाविक है । किन्तु पुरातन के विनाश का दूसरा पहलू नवीन का निर्माण है । यदि नवीन का निर्माण न किया जाय तो क्रान्ति का उद्देश्य ही अधूरा रह जायगा । ऐसी क्रान्ति विध्वंसात्मक होगी, जो भंजन में विश्वास करती है, मंगल में नहीं । हर क्रान्ति का उद्देश्य मानव-हित होता है, क्योंकि क्रान्ति की मूल प्रेरणा मानवीय संवेदना है । क्रान्ति का प्रवर्तन विनाश के लिए नहीं, निर्माण के लिए होता है । पुरानी व्यवस्था क्रान्ति के द्वारा इसलिए नहीं मिटाई जाती कि अमुक न्याय की व्यवस्था जनता को प्रिय है और अब किसी व्यवस्था की अपेक्षा नहीं है, बल्कि इसलिए की जाती है कि सामान्य जनता के अधिक सुख, अधिक सुविधा के लिए नयी व्यवस्था की जाय । इसी दृष्टि से क्रान्ति का परिवर्तन घटित होता है ।

क्रान्ति की मूल दृष्टि मानवीय होती है । क्रान्ति का लक्ष्य ही मानव-कल्याण है । मानव-कल्याण क्रान्ति का निमित्त है । यदि इस लक्ष्य की पूर्ति न हो तो क्रान्ति विफल हो जायगी । लक्ष्यच्युत न होने के कारण ही जब-जब मानवता बर्बर संकटों के आवर्त में घिर जाती है, क्रान्ति कूदती है । मनुष्य को सुख, अधिकार

तथा उसकी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए नवीन व्यवस्था पुरानी व्यवस्था के खण्डहर पर खड़ी की जाती है ।

क्रान्ति का प्रारम्भिक उद्गम मन में होता है । मन में क्रान्ति के बीज सबसे पहले उगते हैं । मन ही वर्तमान रूढ़िवादिता, अन्याय, अत्याचार, अपमान के प्रति प्रतिक्रियात्मक हो उठता है । जब तक मन में परिवर्तन का भाव पैदा नहीं होगा, क्रांति नहीं होगी । सामान्य जनता बहुत दिनों तक अत्याचार, अन्याय सहती रहती है । जब तक उनमें वर्तमान के प्रति असंतोष का भाव नहीं जगता तब तक उसके प्रति विरोध भाव भी नहीं आता । इसलिए क्रान्ति को असंतोष और तज्जनित विरोधभाव की क्रिया प्रतिक्रिया कहा जा सकता है । असंतोष और विरोध के अभाव में अनेक जातियां अपमान, अन्याय और विरोध ए सहती रही हैं । असंतोष और विरोध भावगत है, इसलिए मानसिक है । मन ही असंतुष्ट तथा विरोधी होता है । कहा जा सकता है कि क्रान्ति वैचारिक चेतना है, क्योंकि मन की स्थिति का उद्बोध विचारों से होता है । मनुष्य अपने विचारों को व्यक्त करना चाहता है । यह उसकी कमजोरी है । इस कारण वह अपने असंतोष तथा विरोध बोधक विचारों को वाच्यता के साथ प्रकट कर देता है । जाहिर है कि मानसिक क्रान्ति कालक्रम से वैचारिक क्रान्ति में परिवर्तित हो जाती है ।

वैचारिक क्रान्ति को दूसरी दृष्टि से भी देखा जा सकता है । कभी-कभी रूढ़ियों, अन्धविश्वासों और परम्पराओं से विचार की प्रक्रिया कुंठित हो जाती है । कुंठित विचारधारा से मनुष्य विवेकहीन हो जाता है । इस कारण समाज में विभिन्न प्रकार के दोष जन्मते हैं, जिसके कारण जनमन इस बात को सोचने के लिए बाध्य हो जाता है कि परम्परा अनिवार्य है । सुधार की प्रेरणा भी मर जाती है । ऐसी परिस्थिति में क्रान्ति और सुधार की चर्चा नहीं होती और अत्याचार, अन्याय और अपमान सहन करने की क्षमता मनुष्य में स्वाभाविक रूप से आ जाती है । यह स्थिति तब खत्म होती है, जब समाज में वैचारिक क्रान्ति हो । विचारों में परिवर्तन की भावना आने पर और उसका सक्रिय क्रान्ति में प्रतिफलन होने पर ही दमन, उत्पीड़न, अपमानना समाप्त होती है । इस दृष्टि से भी यह सिद्ध है कि क्रान्ति का उद्गम स्थान मन है । मन की वैचारिक स्थिति में जब तक परिवर्तन नहीं होता, क्रान्ति-भावना का जन्म नहीं हो पाता । इसलिए क्रान्ति के लिए मानसिक स्थिति में परिवर्तन आवश्यक है ।

क्रान्ति का मूल उद्देश्य जनता का कल्याण है । इस कारण क्रान्ति के

निर्माणात्मक पहलू के अन्तर्गत ऐसे कार्यों की पूर्ति आवश्यक है, जिनसे जनता का हित हो ।क्रान्ति जनता के लिए होती है । इस कारण यह आवश्यक है कि जनता के अधिकाधिक कल्याण की दृष्टि से ही शासन-व्यवस्था में भी परिवर्तन किया जाय । परिवर्तन इस प्रकार का हो कि जनता स्वयं शासन करे और अपने लिए शासन करे । इस दृष्टि से जहाँ भी शासन-व्यवस्था में क्रान्ति द्वारा परिवर्तन होता है,जनतांत्रिक शासन स्थापित होता है । जहाँ सैनिकों की क्रान्ति होती है,वहाँ सैनिक शासन लागू हो सकता है, किन्तु जहाँ जनता के द्वारा क्रान्ति होती है, वहां जनतंत्र में हो जनता का कल्याण होने से जनतंत्र ही स्थापित किया जाता है । अधिनायकवाद भी सैनिक क्रान्ति के साथ आता है ।

क्रांति देश-काल सापेक्ष है । सम्पूर्ण विश्व में एक ही साथ क्रान्ति होना सम्भव नहीं है । साथ ही यह भी निश्चित है कि सदा-सर्वदा की क्रान्ति की स्थिति बनी नहीं रह सकती । मनुष्य की विविध भावनाओं का विकास क्रान्तिकाल में होता है । क्रान्ति का ध्वंसात्मक पक्ष अशान्ति और संक्रमण का काल है, जिसमें मूल्य एवं मान अनिश्चित होते हैं । अनिश्चय की इस स्थिति में मानवता फूल फल नहीं सकती । इसलिए ध्वंस की संक्रान्ति के बाद निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है कि अधिक सुख, अधिक सुविधाओं के द्वारा मानवता की विविध चेतनाओं का सम्यक् विकास हो । मानवता देश की सीमाओं में बँधी होती है ।

इस दृष्टि से क्रान्ति-भावना को मूलतः राष्ट्रीय भावना कही जा सकती है । सामाजिक,राजनीतिक,आर्थिक एवं धार्मिक कोई भी क्रान्ति हो, राष्ट्रीय स्तर पर प्रारम्भ होती है । उसका उद्भव ही जातीय तथा राष्ट्रीय भावना के कारण होता है । राष्ट्र तथा राष्ट्र के निवासियों के हित को ध्यान में रखकर ही वैचारिक क्रान्ति उद्भूत होती है । उसका पर्यवसान अन्य प्रकार की क्रान्तियों में होता है किन्तु सामाजिक परिवेश, धार्मिक मान्यताओं, वैज्ञानिक परिस्थितियों आदि का प्रभाव क्रान्ति तथा राष्ट्रीय क्रान्ति पर पड़ता है । इसलिए क्रान्ति मूल रूप में सार्वदेशिक चेतना नहीं कही जा सकती । विशेषतः राजनीतिक, राष्ट्रीय और सामाजिक क्रान्तियाँ तो देश तथा जाति से सम्बन्धित होती हैं ।

प्रश्न हो सकता है कि इसका क्या कारण है । कारण यह है कि एक जाति अथवा देश की सीमा में बंधी-घिरी मानवता की समस्याएं ही एक प्रकार की हो सकती हैं । इसलिए उनमें पुरानी व्यवस्था के परिवर्तन की भावना आती है । समस्याएँ निराकरण माँगती हैं । एक जाति जिसे समस्या कहती है, दूसरी उसे सामान्य स्थिति मान सकती है और सामान्य स्थिति में उसमें असंतोष तथा उसके विरोध का भाव नहीं उत्पन्न होता । इसलिए संस्कार,परम्परा तथा समस्याएँ एक होने के कारण क्रान्ति की भावना एक ही जाति,वर्ग अथवा देश में उदित होती है । सम्भव है, परवर्तीकाल में समस्याएं एक होने से एक जाति तथा देश की क्रान्ति की प्रेरणा से दूसरी जाति तथा दूसरे देश में भी क्रान्ति हो जाय लेकिन एक ही काल में ऐसा हुआ, यह सही नहीं है । कोई भी क्रान्ति प्रेरणास्रोत हो सकती है । इसलिए उसकी प्रेरणा से दूसरे काल में दूसरे देश तथा जाति में क्रान्ति का उद्भव अति स्वाभाविक है । फ्रांसीसी क्रान्ति ने अनेक देशों में राज्यक्रान्ति की प्रेरणा दी । औद्योगिक क्रान्ति ने सामन्ती प्रथा मिटाकर पूंजीवाद की स्थापना की । रूस की क्रान्ति ने जारशाही के स्थान पर साम्यवादी पृष्ठभूमि पर मजदूरों का अधिनायकवाद स्थापित किया है । ये सभी क्रान्तियां राष्ट्रीय सीमा के अन्तर्गत एक विशिष्ट राष्ट्र की मानवता के विकास के लिए की गयी हैं जहां सैनिक शासन के माध्यम से राजशक्ति बदलती है, उसमें एकदेशीयता का आधान होता है । इस कारण क्रान्ति में राष्ट्रीय चेतना का महत्वपूर्ण स्थान है ।

हैराल्ड जे० लास्की ने भय को क्रान्ति की जननी मानकर क्रान्ति का विश्लेषण किया है[1] । भयभीत मनुष्य की तर्क शक्ति खत्म हो जाती है । जब जनता क्रूर, अधिक दमनकारी हो जाता है । उसमें यह भय आ जाता है कि यदि क्रान्तिकारियों को बढ़ने दिया गया तो उसके अधिकार खत्म कर दिये जायेंगे । इसलिए वह तर्कहीन तथा अविवेकी होकर क्रूरतर ढंग से दमन करता है । किन्तु यह दमन क्रान्ति को रोक नहीं पाता । दमन ज्यों-ज्यों बढ़ता है, क्रान्ति भी अधिक तीव्र होती जाती है । यदि शासक में अपने सुखों,अधिकारों या राज्य के खत्म हो जाने का भय न हो तो क्रान्ति की स्थिति ही उत्पन्न नहीं होगी, क्योंकि ऐसी दशा में जनता द्वारा माँगे गये अधिकार

१- रिफ्लेक्शन्स आन द रिवोल्यूशन आफ आवर टाइम्स- लास्की,पृ०३४,सन् १९४३

उसे मिल जाते हैं,अथवा कुछ ऐसे सुधार होते हैं कि क्रान्ति का प्रश्न पैदा नहीं होता, क्योंकि क्रान्तिमूलक विरोध भावना ही समाप्त हो जाती है । इस दृष्टि से क्रान्ति की भावना शासकवर्ग में उत्पन्न भय के कारण पैदा होती है ।

क्रान्ति का अग्रदूत मध्यवर्ग होता है । यों मध्यवर्ग की कुछ सीमायें होती हैं । यह वर्ग परम्पराओं में विश्वास करता है । इसलिए नवीनता का आग्रह उसमें नहीं रहता । नवीनता से वह डरता है । पूर्वजों के आदर्श उसे भाते हैं और उन्हीं आदर्शों के सुनहले जाल में वह उलझा रहता है । जब भी उन आदर्शों पर कुठाराघात होता है,मध्यवर्ग विद्रोह कर देता है ।

मध्यवर्ग यह महसूस करता है कि व्यवस्था में कुछ दोष है, जिसे दूर करना चाहिए, लेकिन भाग्य पर अधिक विश्वास करने के कारण वह विषम स्थितियों से समझौता कर लेता है । जिस तरह की व्यवस्था उनकी कल्पना में है, उसे स्थापित करने का साहस मध्यवर्ग में नहीं है । वह सुधारों से प्रसन्न होता है, किन्तु जब निरंकुश शासक के द्वारा सुधार नहीं किये जाते,अथवा सुधारों से सामाजिक व्यवस्था नहीं सुधरती, मध्यवर्ग सशस्त्र क्रान्ति के लिए भी प्रस्तुत होता है । रूस तथा चीन को छोड़कर शेष क्रान्तियों के अगुआ मध्यवर्गीय व्यक्ति रहे हैं । उन्होंने व्यवस्था के दोषों का विश्लेषण किया और परिस्थिति के अनुरूप जन-जीवन को तैयार कर पुरानी जर्जर व्यवस्था को तोड़ दिया और उसकी जगह नयी व्यवस्था कायम की । रूसी क्रान्ति में भी मध्यवर्ग का कितना हाथ रहा है, यह शोध और गवेषणा का विषय हो सकता है । उच्चवर्ग अपने आभिजात्य को कायम रखना चाहता है । उसके हाथ में ही वास्तविक सत्ता होती है । उसे सारी सुख-सुविधायें उपलब्ध हैं । ऐसी दशा में उसके विद्रोह करने का सवाल ही पैदा नहीं होता । मजदूर वर्ग न तो बौद्धिक होता है न उसे क्रान्ति संबंधी सक्रियता के लिए फुरसत ही होती है । वह अपनी वैयक्तिक समस्याओं में इतना उलझा रहता है कि उससे यह आशा करना कि वह क्रान्ति का अग्रदूत बनेगा, दुराग्रह जैसा लगता है । यदि निम्नवर्ग अब इतना बौद्धिक , सचेत, जागृत,वर्ग-चेतना से अभिमुख हो उठा है कि यह मान्यता किसी भी क्षण खंडित हो सकती है ।

जहाँ तक भारत की राष्ट्रीय क्रान्ति का प्रश्न है, यह स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि मध्यवर्ग ही क्रान्ति का प्रणेता होता है । इस वर्ग के सहयोग से ही भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रियता, तीव्रता तथा शक्ति आई । इसका तात्पर्य
निम्नवर्ग का भी सहयोग था,
यह नहीं कि निम्नवर्ग का इसमें सक्रिय सहयोग नहीं था, किन्तु मध्यवर्ग के निर्देश में ही

निम्नवर्ग ने क्रान्ति के आन्दोलनात्मक कार्यक्रमों को गति दी । भारतीय उच्चवर्ग, जिसमें राजाओं, सामंतों तथा बड़े पूँजीपतियों की गणना की जायगी, क्रान्ति से अछूता रहा । सभी साधनों से सम्पन्न इस वर्ग के सामने कोई समस्या नहीं थी । इसलिए असंतोष की स्थिति भी उनके जीवन में नहीं आयी । फ्रांसीसी क्रान्ति की तरह भारतीय राष्ट्रीय क्रान्ति के उपरान्त मध्यवर्ग का शासन स्थापित हुआ । कहा जा सकता है कि अभी भारत में निम्नवर्ग अथवा मजदूर-किसान-वर्ग का शासन नहीं है । इसी प्रकार पूँजीपति वर्ग का प्रभाव प्रत्यक्ष- अप्रत्यक्ष रूप से शासन तथा अन्य व्यवस्थाओं पर हो सकता है, किन्तु सामन्तों और पूँजीपतियों की शासन-व्यवस्था में निर्णायक भूमिका नहीं है ।

क्रान्ति का लक्ष्य सार्वजनिक हित होने के कारण सम्पत्ति और उसके साधनों पर जनता का अधिकार होना चाहिए, किन्तु ऐसा हो नहीं पाता । साम्यवादी देशों के अतिरिक्त जनता सम्पत्ति की अधिकारिणी नहीं हो पाती । तब भी इतना निश्चित है कि क्रान्ति जन-जीवन के आर्थिक ढाँचे में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन उपस्थित करती है । इसके फलस्वरूप जनता की आर्थिक दशा सुधर जाती है । जिन देशों में पूँजीवाद क्रान्ति के द्वारा नहीं मिटाया गया, वहाँ इसी तरह की स्थिति पैदा हो जाती है । ऐसे देशों में आर्थिक ढाँचे में परिवर्तन के लिए आर्थिक क्रान्ति की अपेक्षा होती है और आकांक्षा उसकी संघटना से जन-जीवन में व्याप्त असमानता दूर हो जायगी ।

भारत में अहिंसक क्रान्ति का सफल प्रयोग महात्मा गांधी के निर्देश में हुआ है । सहिष्णुता, त्याग, बलिदान की शक्ति से उन्होंने भारत से विदेशी शासन-सत्ता को उन्मूलित किया । विदेशी शासन से मुक्ति पाने के बाद स्वतन्त्र भारत के निवासियों ने जनतांत्रिक विधि से शासन-यन्त्र संचालित किया है । महात्मा गांधी ने यह अहिंसक क्रान्ति सत्याग्रह और असहयोग के माध्यम से किया । यही विदेशी शासन के विरोध और प्रतिरोध का आधार था । उन्होंने सुधार की कामना नहीं की और न ही उसके होने की सम्भावना से विदेशी शासन-व्यवस्था से समझौता ही किया । इस प्रकार की क्रांति विश्व के इतिहास में नवीन है । राज्य-परिवर्तन के लिए अब तक सशस्त्र और खूनी क्रान्तियाँ ही हुई हैं । महात्मा गांधी ने क्रान्ति के दृष्टिकोण में परिवर्तन उपस्थित किया । उन्होंने अहिंसक क्रान्ति का प्रयोग किया और उसे सफल बनाया । इसलिए सशस्त्र क्रान्ति ही सच्ची क्रान्ति है, ऐसा कहना उचित नहीं है ।

महात्मा गांधी के शिष्य विनोबा भावे ने आर्थिक क्रान्ति की दशा में भूदान यज्ञ नामक अहिंसक क्रान्ति का प्रवर्तन किया है । विनोबा सशस्त्र क्रान्ति को

क्रान्ति नहीं मानते । उनके अनुसार विचारों में क्रान्ति करने से ही क्रान्ति स्थायी होगी । बहुत हद तक यह मान्यता उचित लगती है, क्योंकि तलवार की शक्ति से जहाँ क्रान्ति होगी, वहाँ प्रतिक्रान्ति की सम्भावना भी रहेगी । क्रान्तिकारी दल की शक्ति क्षीण पहले ही विरोधी शक्ति सत्ता अपने हाथ में कर लेती है । इस दृष्टि से क्रान्ति का एकमात्र रास्ता अहिंसक क्रान्ति ही ठहरती है । किन्तु इस तरह क्रान्ति के विस्तृत अर्थ-विन्यास को संकोच दे देना अच्छा नहीं होगा । सशस्त्र और अहिंसक दोनों प्रकार की क्रान्तियाँ युगबोध की दृष्टि से उचित और महत्त्वपूर्ण हो सकती हैं । परिवर्तन ही क्रान्ति है । वर्तमान व्यवस्था में हुए प्रत्येक परिवर्तन को क्रान्ति की संज्ञा दी जा सकती है । इस परिवर्तन के लिए अस्त्र और आन्दोलन दोनों साधन अपनाये जा सकते हैं ।

निष्कर्ष

क्रान्ति पुरातन के स्थान पर नवीन को स्थापित करने की स्वाभाविक चेतना है । मनुष्य एकरस जिन्दगी जीने का आदी नहीं है । वह परिवर्तन चाहता है । जब वर्तमान जीवन में जड़ता, कुंठा तथा जीर्णता के कारण मनुष्य के सुख रुक जाते हैं, वह नयी जिन्दगी चाहता है । इसके लिए उसे क्रान्ति करनी होती है । सशस्त्र अथवा अन्य प्रकार की विभिन्न क्रान्तियों के सहारे नया जीवन उत्पन्न किया जाता है । मनुष्य नवीनता का आग्रही है । नवीनता का आग्रह ही उसे क्रान्ति की ओर ले जाता है, क्योंकि क्रान्ति में नया जीवन बोया जाता है ।

क्रान्ति राष्ट्रीय पृष्ठभूमि पर होती है । एक राष्ट्र या जाति की समस्याएँ ही क्रान्ति की प्रेरणा देती हैं । समस्याएँ सार्वदेशिक होने पर भी एक साथ सभी देशों में क्रान्ति होना सम्भव नहीं है । अपने राष्ट्र तथा उसमें बसने वाले जन के प्रति प्रेमभाव के कारण उनकी समस्याओं के निदान के लिए क्रान्ति होती है । राष्ट्रीय क्रान्ति का तो मूलाधार ही राष्ट्रीय भावना है, किन्तु अन्य क्रान्तियों के मूल में भी राष्ट्रीय चेतना वर्तमान रहती है ।

मानवतावादी दृष्टि क्रान्ति की मूल भावना कही जा सकती है । मानवता जब अनेक प्रकार के शोषण उत्पीड़न से पीड़ित हो जाती है, उसके उद्धार के लिए क्रान्ति फूटती है । क्रान्ति का लक्ष्य मानवता का कल्याण है । एक व्यक्ति के सुख, सुविधा तथा अधिकार के लिए क्रान्ति नहीं होती । सार्वजनिक हित के लिए सार्वजनिक असन्तोष से क्रान्तियाँ होती हैं । एक अकेले की शक्ति सत्ताधारी वर्ग का सिंहासन हिलाने में समर्थ नहीं है । जब जनता की, सम्पूर्ण पीड़ित मानवता की ताकत एक होकर अन्याय और अत्याचार का विरोध करती है, तभी क्रान्ति होती है । क्रान्ति की संघर्षात्मक स्थिति के उपरान्त निर्माण की अवस्था में होने वाले कार्यों की मुख्य प्रेरणा भूमि मानवीय है । मानवीय आधार पर क्रान्ति का सूत्रपात होता है तथा उसकी चरम परिणति भी मानवता के हित में पर्यवसित होती है ।

क्रान्ति, असन्तोष, असमानता, उत्पीड़न, अत्याचार, कुंठा आदि के फलस्वरूप उत्पन्न होती है । इन सब के अतिरिक्त केवल असंतोष को भी क्रान्ति की मूल प्रेरणा

माना जा सकता है , क्योंकि असमानता,उत्पीड़न,अत्याचार,कुंठा आदि भी मनुष्य के मन में वर्तमान व्यवस्था के प्रति असन्तोष उत्पन्न करते हैं । जहां असंतोष नहीं है, वहां क्रान्ति नहीं हो सकती ।

मानवीय दृष्टिकोण होने के फलस्वरूप क्रान्ति की परिणति जनकल्याण के कार्यों में होती है । सम्पूर्ण सम्पत्ति,सम्पूर्ण व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु जनता अथवा मनुष्य हो जाता है । उसके कल्याण के लिए यह आवश्यक है कि जनता को अपनी संस्थाओं के नियमन,संचालन तथा संयोजन का अधिकार दिया जाय । जनता स्वयं सबसे अधिक जानती है कि उसका हित किसमें है । इस दृष्टि से शासन-व्यवस्था में जनतांत्रिक विधि अपनायी जाती है । भारत,अमेरिका सभी देशों में क्रान्ति के उपरान्त जनतांत्रिक सरकारें ही कायम की गयी हैं । जनतांत्रिक शासन-व्यवस्था में जनता के हित के लिए सारे कार्य होते हैं । इस दृष्टि से क्रान्ति के झुकाव को जनतांत्रिक कहा जायगा । अर्थ,समाज तथा अन्य व्यवस्थाएँ भी जनतांत्रिक आधार पर होती हैं ।

क्रान्ति कल्पनावादी है । एक ओर जहाँ इसमें वर्तमान शोषण,उत्पीड़न, दमन का विरोध है, वहीं इसमें नयी व्यवस्था की सुन्दर कल्पना भी निहित है । इसी कल्पना-प्रसूत नये संसार, नयी व्यवस्था की स्थापना के लिए क्रान्ति घटित होती है । यदि कल्याणपूर्ण उज्ज्वल भविष्य क्रान्ति के अग्रदूतों के समक्ष न रहे, तो क्रान्ति होना सम्भव नहीं है ।

यह आवश्यक नहीं है कि मात्र तलवार की शक्ति ही क्रान्ति हो । क्रान्ति आन्दोलनात्मक भी हो सकती है । आन्दोलनात्मक अहिंसक क्रान्ति सशस्त्र क्रान्ति से कम तेज और प्रभावशाली नहीं है । उसके परिणाम भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं । भारतीय भूमि पर अहिंसक क्रान्ति ही अधिक सफल हुई है । औद्योगिक,सामाजिक,धार्मिक तथा वैचारिक क्रान्तियों में भी शस्त्र की आवश्यकता नहीं ही पड़ती है । अहिंसक क्रान्तिकारी वैचारिक परिवर्तन,आग्रह,आन्दोलन,सहिष्णुता, त्याग आदि के बल पर अपने लक्ष्य की प्राप्ति में समर्थ होते हैं । सशस्त्र क्रान्ति मात्र बाह्य परिवर्तन कर पाती है, जब कि अहिंसक क्रान्ति के द्वारा बाह्य और आन्तरिक दोनों क्षेत्रों में परिवर्तन होते हैं । अहिंसक क्रान्ति का प्रभाव,विस्तार तथा अवधि अधिक है ।

सुधार को भी क्रान्ति के अन्तर्गत लिया जाता है, किन्तु ऐसा करना उचित प्रतीत नहीं होता । सुधार के द्वारा जनता की मांगों की पूर्णतः पूर्ति नहीं होती, बल्कि सुधार,निरंकुश शासन का साथ देता एक सीमा में शासन पर जनता को अधिकार

प्रदान करता है । क्रान्ति सुधारवादी आंशिक परिवर्तन नहीं है । वह ऐसा परिवर्तन है, जो पुरानी व्यवस्था को खत्म कर नयी व्यवस्था स्थापित करता है । इस दृष्टि से सुधार को क्रान्ति नहीं कहा जा सकता, क्योंकि सुधार पुराने के स्थान पर नये की स्थापना नहीं कर सकता । हाँ, सुधार के द्वारा उभरती हुई क्रान्ति भावना को दबाया जा सकता है । उदार और चतुर शासक इसी माध्यम से अनेक वर्षों तक शोषण, विलासिता तथा अत्याचार आदि को कायम रख पाते हैं ।

क्रान्ति शाश्वत मानसिक चेतना है जो सार्वकालिक तथा सार्वदेशिक है । नयी व्यवस्थाएँ स्थापित होने पर मानवता के हित-साधन में संलग्न होती हैं, किन्तु कालक्रमेण उनकी प्रक्रिया तथा कार्य-व्यवस्था में एकरसता आ जाती है । अहंवादी मनुष्य धीरे-धीरे व्यक्तिगत स्वार्थों की ओर झुकने लगता है । जिस चुस्ती के साथ नयी व्यवस्था प्रारम्भ होती है, वह कालान्तर में ढीली हो जाती है और उसमें विश्राम आ जाता है । कालक्रम से नयी व्यवस्था के मानक आदर्श तथा क्रियाएँ रूढ़ तथा परम्परित होकर जीवन को कुंठित कर देती हैं । इस स्थिति में पुनः क्रान्ति की आवश्यकता होती है । क्रान्ति जीवन-व्यापी, काल-व्यापी और विश्व-व्यापी मानसिक चेतना है, जो शाश्वत है ।

अध्याय -- दो

-o-

पृष्ठाधार और युगप्रवाह

अध्याय -- दो

-०-

पृष्ठाधार और युगप्रवाह

जीवन अनेक क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं का समुच्चय है । मनुष्य अधिक सजग, सचेत और सक्रिय प्राणी है । इसलिए उसके जीवन में विभिन्न घटनायें आती हैं । इन घटनाओं से संघर्ष करता हुआ वह जीवित रहता है और अपनी अदम्य जिजीविषा का परिचय देता है । जीने की प्रेरणा ही उसे अनेक घटनाओं की प्रतिक्रिया के लिए बाध्य करती है । प्रतिक्रिया परिस्थितियों से, जो घटनाओं के रूप में आती हैं,उत्पन्न होती है । इस प्रकार परिस्थितियों ने जन-मानस को आन्दोलित किया और अनेक क्षेत्रों में नये सिरे से सोचने-समझने की प्रेरणा दी । युग-बोध की अभिव्यक्ति इसीलिए साहित्य में विशेषरूप से होती आई है । परिस्थितियों की प्रतिक्रिया ने साहित्य को परम्परा से टूट कर प्रयोग करने की चेतना दी है । इसलिए यह अपेक्षित है कि क्रान्ति-भावना की अभिव्यक्ति करनेवाली परिस्थितियों का विश्लेषण किया जाय कि साहित्य में उसकी प्रतिक्रिया का सम्यक् और सांगोपांग विवेचन हो सके ।

साहित्य प्रत्यक्षत: युग-बोध से कटा प्रतीत होने पर भी अप्रत्यक्षत: उससे प्रतिबद्ध होता है । प्राचीन और मध्यकालीन साहित्य पर भी युग-बोध की छाया स्पष्ट ही देखी जा सकती है । आधुनिक साहित्य युग-बोध से उद्भूत है । उन्नीसवीं शताब्दी के साहित्य का विश्लेषण करते हुए डा० रामकुमार वर्मा ने लिखा है,--" युग-बोध का प्रत्यक्षीकरण उन्नीसवीं शताब्दी के साहित्य में पद-पद पर होता है ।

और साहित्य किसी वेगवती नदी का ऐसा तट बन जाता है जिससे विषम परिस्थितियों की तरंगें क्षण-क्षण में आकर बड़े वेग से टकराती हैं[1]।"

क्रान्ति भावना परिस्थितियों की प्रतिक्रिया है; अध्याय एक में बताया जा चुका है कि परम्परा रूढ़ि, अत्याचार, अपमान आदि की प्रतिक्रिया क्रान्ति के ज्वालामुखी रूप में फूटती है। इसलिए आधुनिक हिन्दी-काव्य में अभिव्यक्त क्रान्ति-चेतना का मूल्यांकन प्रस्तुत करने के पूर्व उसकी प्रेरक परिस्थितियों पर विचार कर लेना उचित होगा, क्योंकि इन परिस्थितियों ने ही क्रान्ति-भावना को प्रेरणा दी। इस प्रेरणा से जीवन, जगत और साहित्य भी आन्दोलित हुआ है।

राजनीतिक

पृष्ठाधार

क्रान्ति की अनेक प्रेरक परिस्थितियों में राजनीतिक परिस्थितियों की महत्वपूर्ण भूमिका है। राजनीति जीवन की एक महत्वपूर्ण दिशा है, जिससे समाज अर्थ, धर्म सभी प्रभावित हुए हैं। हिन्दी काव्य-क्षेत्र में घटित जिस क्रान्ति-भाव की चर्चा यहां प्रस्तुत होगी, वह मूल रूप से विरोधमूलक है। विदेशी शासन के दमन, अत्याचार, अपमान आदि ने जीवन को झकझोर दिया। शासनतंत्र के विभिन्न राजनीतिक कार्यों ने जीवन के हर क्षेत्र में नये सिरे से सोचने के लिए परम्परा के प्रति विद्रोह प्रकट करने के लिए मानसिक प्रेरणा दी। इसलिए इन राजनीतिक परिस्थितियों का विवेचन अपेक्षित है।

अंग्रेजी शासन के पूर्व भारतवर्ष के शासक मुगल थे। बाबर से शाहजहां के शासन-काल तक क्रान्ति को उद्भूत करने वाली कोई विशेष राजनीतिक घटना नहीं हुई। हां, राणा प्रताप ने मेवाड़ की स्वतन्त्रता तथा हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए अकबर से लोहा लिया, किन्तु अकबर की समन्वयवादी और शान्तिपूर्ण नीति के कारण क्रान्ति-भावना को प्रश्रय नहीं मिल पाया। राणा प्रताप की विरोध-

---

१- उन्नीसवीं शताब्दी की पृष्ठभूमि- रामकुमार वर्मा

भावना एक क्षेत्र विशेष की स्वतन्त्रता से पूर्ण है, किन्तु उसमें जन जीवन का सहयोग कितना था, यह कहना कठिन है। यह निश्चित है कि अकबर की विस्तारवादी नीति को राणा प्रताप की स्वतन्त्रतापरक राष्ट्रीय क्रान्ति भावना अवश्य एक धक्का देती है। व्यापक रूप से अत्याचार और अपमान की परिस्थिति न होने के कारण व्यापक तथा तीव्र क्रान्ति भावना इस काल में नहीं जग सकी।

औरंगजेब की निरंकुशता ने भारतीय जीवन को क्रान्ति मूलक बनाया। औरंगजेब ने हिन्दुओं के नैतिक और धार्मिक विश्वासों को कुचलने की चेष्टा की। इस कारण, उसका राज्यकाल मुगल साम्राज्य के इतिहास का अशान्तकाल माना जाता है। उस काल में प्रायः जमींदारों, राजाओं तथा हिन्दुओं के धार्मिक उपद्रव हुए। औरंगजेब का अधिक समय और श्रम इन विद्रोहों को दबाने में बीत गया। "सबसे विकट उपद्रव आगरा, अवध और इलाहाबाद के सूबों में हुए। आगरा प्रान्त में गोकुल के नेतृत्व में जाटों ने, अवध में बैस राजपूतों ने और इलाहाबाद में दुरदी तथा अन्य जमींदारों ने शासन की अन्यायपूर्ण नीति के विरुद्ध विद्रोह किया।[1] मथुरा में केशवदास तथा काशी में विश्वनाथ के मन्दिर तोड़ने तथा हिन्दुओं का विरोध करने वाले औरंगजेब के अत्याचार और अन्याय से हिन्दू तिलमिला उठे। बुन्देलखण्ड के चम्पतराय और उनकी मृत्यु के बाद उनके पुत्र छत्रसाल ने जीवन के अन्त तक औरंगजेब का विरोध किया। महाराज जसवंत सिंह के मरने के बाद उनके राज्य को हड़पने के कारण मेवाड़ और मारवाड़ उसके विरुद्ध हो गए। गुरु तेगबहादुर की हत्या और गुरुगोविन्द सिंह के पुत्रों पर किए गए अत्याचार से औरंगजेब के विरोध में सिखों में सैनिक शक्ति संघटित हुई। उसकी धार्मिक असहिष्णुता के कारण दक्षिण में शिवाजी के नेतृत्व में मराठे शासन के प्रति विद्रोही हो गए।

"औरंगजेब की हिन्दू राजपूत विरोधी नीति, राजधानी में शासनसत्ता का अत्यधिक केन्द्रीकरण और राजकीय आय का आलीशान इमारतें बनाने में अंधाधुंध व्यय, दूर स्थित सूबेदारों और हाकिमों या विजित राजाओं और नवाबों पर नियंत्रण का अभाव, यातायात के साधनों की ओर ध्यान न देना, रईसों तथा कुलीनों

1- रीति काव्य की भूमिका— डा० नगेन्द्र, पृ० १ सन् १९५३ ई०

और धर्म की अधोगति, पुलीस एवं निष्पक्ष तथा शक्तिशाली न्यायाधीशों का अभाव, असहिष्णुता, अविश्वास, दूसरे का राज्य हड़प लेने की प्रवृत्ति और फलत: निरर्थक युद्धों में राजकीय आय का विनाश और तज्जनित सैनिक तथा आर्थिक शक्ति का ह्रास आदि कुछ बातें ऐसी थीं, जिन्हें औरंगजेब अपने उत्तराधिकारियों के लिए छोड़ गया था और जिनके फलस्वरूप साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया था ।[1] इन कारणों से औरंगजेब की मृत्यु के बाद अव्यवस्था और अराजकता फैल गई । औरंगजेब के उत्तराधिकारी राजनीतिक दृष्टि से कमज़ोर थे । मुहम्मदशाह के राज्यकाल में निज़ाम, रुहेलों, सिक्खों, मराठों, नादिरशाह और उसके उत्तराधिकारी अहमदशाह अब्दाली ने भयंकर उत्पात मचाये । इस कारण अत्याचार और असंतोष बढ़ गया । मुगल शासन की कमज़ोरी के कारण ही भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रभाव और शासन धीरे-धीरे बढ़ने लगा ।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना सन १५९९ में हुई थी । उसे ३१ दिसम्बर १६००ई० में रानी एलिज़ाबेथ से अधिकार-पत्र मिला । इस अधिकार-पत्र के द्वारा व्यापारियों की इस कम्पनी को सुदूर पूर्व में व्यापार करने का एकाधिपत्य मिला । इसी सम्बन्ध में मुगल सम्राटों के राजत्वकाल में अनेक व्यापारी भारत में आते रहे । अंग्रेज़ों के साथ दूसरे योरोपीय देशों के व्यापारी भी भारत में आए और उन्होंने अंग्रेज़ों की प्रतियोगिता में अपने व्यापार को आगे बढ़ाना चाहा । व्यापारिक प्रतियोगिता के फल फलस्वरूप अंग्रेज़ों को भारतीय राजनीति में भी सक्रिय भाग लेना पड़ा । कम्पनी की व्यापारिक और राजनीतिक स्थिति में समय-समय पर उतार-चढ़ाव आए ।

इस काल में राजनीतिक उथल-पुथल का केन्द्र बंगाल था । अलीवर्दीखां के मरने पर बंगाल का शासक सिराजुद्दौला ज्योंही हुआ, उसे अंग्रेज़ों से टकराना पड़ा, जिसके फलस्वरूप ब्लैक होल की कल्पित घटना का ढोंगा बताया जाता है ।

१७५७ में क्लाइव ने सिराजुद्दौला को हटाकर बंगाल पर अधिकार जमाया । इसी वर्ष भारत में अंग्रेज़ी राज्य की नींव पड़ी । धीरे-धीरे अंग्रेज़ों ने राजनीतिक और

१- आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका- लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ०३१-३२, सन् १९५२

आर्थिक षड्यंत्रों के माध्यम से बिहार और बंगाल के कई नवाबों को अपने अधिकार में कर लिया । इस काल में सम्पूर्ण हिन्दी प्रदेश अवसरवादिता, अतिव्यय, गृह-कलह, रक्तपात, लूट-मार आदि से पीड़ित था । जन-जीवन में किसी सर्वमान्य राजनीतिक चेतना का अभाव था । धीरे-धीरे अंग्रेज़ों ने भारत के अन्य पश्चिमी भागों को भी अपने कब्जे में करना प्रारम्भ किया । अनेक लड़ाइयों में उन्होंने टूटे हुए सामंतों और नवाबों को पराजित किया ।

१७६५ ई० में क्लाइव जब दुबारा बंगाल का गवर्नर नियुक्त हुआ, ईस्ट इण्डिया कम्पनी व्यापारिक संस्था से राजनीतिक सत्ता के रूप में देश के सामने आई । क्लाइव की चेष्टा से बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी ईस्ट इण्डिया कम्पनी को मिली । इसके फलस्वरूप आर्थिक व्यवस्था अंग्रेज़ों के हाथ और राजनीतिक व्यवस्था नवाब के हाथ में थी । इस तरह इस क्षेत्र में द्वैध शासन की कष्टपूर्ण स्थिति आयी । १२ अगस्त १७६५ को शाह आलम ने फ़रमान द्वारा अंग्रेज़ों को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी सौंपी थी और वस्तुत: उसी दिन से व्यावहारिक दृष्टि से कोई मुग़ल सम्राट नहीं रह गया था, क्योंकि सेनाओं की संख्या और मंत्रियों की नियुक्ति तक में उसे अंग्रेज़ों की स्वीकृति लेनी पड़ती थी ।

अधिकार अंग्रेज़ों के हाथ में आने से उन्होंने मनमानी आरम्भ कर दी थी । भूमिकर बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया । १७७० में बंगाल के भयंकर अकाल के बावजूद भी भूमिकर में पुन: वृद्धि हुई । कृषि उन्नति की भी उपेक्षा हुई । १८५७ई० के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी मौलाना फजलेहक खैराबादी ने क्रान्ति का दूसरा मुख्य कारण आर्थिक संकट बताया है[1] ।

वैसे इस बीच शाह आलम दिल्ली आने की कोशिश करता रहा । अंग्रेज़ तो किसी प्रकार भी सहायता देने के लिए तैयार नहीं थे अत: सम्राट को मराठों का आसरा था । ७ फरवरी को उन्होंने शाहआलम को सम्राट घोषित किया । शाहआलम दिल्ली में आया । पर वास्तविक शक्ति मराठों के हाथ में थी । १७८८ में नाजिब खां के पौत्र गुलाम क़ादिर खां ने दिल्ली पर आक्रमण कर शाहआलम को कैद कर उसकी

१- स्वतंत्र दिल्ली— डा० सैयद अतहर अब्बास रिज़वी, पृ० १२, प्रथम सं०, सन् १९५७

आँखें फोड़ दीं । पर बाद में मराठों ने उसे भी निकाल बाहर कर अपना राज्य स्थापित किया । १८०३ तक महादा जी सिंधिया दिल्ली पर राज्य करता रहा । तत्पश्चात् १८०३ में लार्ड लेक द्वारा पराजित होकर दिल्ली मराठों के हाथ से अंग्रेज़ों के हाथ में गई ।

शाहआलम की मृत्यु १६ नवम्बर १८०६ ई० को हुई । उसका उत्तराधिकार उसके पुत्र अकबर शाह द्वितीय को अंग्रेज़ों के संरक्षण में मिला । उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र बहादुर शाह उत्तराधिकारी हुआ । १८५७ के विद्रोह के फलस्वरूप वह कैद कर रंगून भेजा गया, जहां उसकी मृत्यु हुई । वस्तुत: अंतिम दोनों सम्राट नाममात्र के सम्राट थे । वस्तुत: वे अंग्रेज़ों के बन्दी थे ।

इस प्रकार १७५७ से १८५७ तक मुगल साम्राज्य का दु:खपूर्ण अन्त हुआ । इधर जाटों, मराठों और सिक्खों के पतन से भारत की रही-सही स्वतन्त्रता का अवशिष्ट भी समाप्त हो गया ।

अंग्रेज़ गवर्नर जनरलों ने अपने राज्य को बढ़ाने के लिए विभिन्न प्रकार के अमानुषिक कार्य किए । बंगाल-बिहार तो प्रारम्भ में ही अंग्रेज़ों के अधिकार में आ गये थे । बाद में उन्होंने बाकी हिन्दी प्रदेश को भी अपने कब्जे में कर लिया । अंग्रेज़ों की विस्तारवादी नीति का विरोध सबसे अधिक मराठों ने किया । अनेक छोटे मोटे महाराजे और ज़मींदार मराठों के अत्याचार के कारण अंग्रेज़ी राज्य के अन्तर्गत आ चुके थे । अंग्रेज़ों ने अपने राज्य के विस्तार के लिए मुगल सम्राट तथा कमज़ोर अवसरवादी राजाओं और ज़मींदारों को साधन बनाया । शुजा उद्दौला उनका सबसे बड़ा मित्र था । शुजाउद्दौला के पुत्र आसिफुद्दौला से उन्होंने गाजीपुर, बनारस, जौनपुर और मिर्जापुर ज़िलों को अपने अधिकार में कर लिया ।

अंग्रेज़ों ने अत्याचार और षड्यंत्र के माध्यम से भारत में अंग्रेज़ी राज्य का विस्तार किया । अंग्रेज़ी सेना को आर्थिक सहायता न देने और विद्रोह उभाड़ने के अपराध में बनारस के राजा चेतसिंह को और चेतसिंह की सहायता करने के अपराध में उन्होंने बेगमों को दंडित किया । आसिफुद्दौला के उत्तराधिकारी सआदतअली खाँ को १८०१ में लखनऊ की संधि के अनुसार गोरखपुर, बस्ती, आज़मगढ़ , इलाहाबाद , फतेहपुर कानपुर, इटावा, मैनपुरी , एटा, फर्रुखाबाद ज़िले और रुहेलखण्ड का अधिकांश भाग अंग्रेज़ों को देना पड़ा । इसी वर्ष अवध के नवाब ने अपना सारा राज्य कम्पनी को

सौंप कर पेन्शन स्वीकार कर ली । १८०२ में होल्कर से पराजित पेशवा से मेरठ, मथुरा और आगरा को अपने कब्जे में कर लिया । इसके परिणामस्वरूप तीसरा मराठा युद्ध हुआ ।

अंग्रेज़ों की विस्तारवादी और अन्यायपूर्ण नीति के विरोध में अंतिम मराठा युद्ध १८१७-१८ में हुआ, जिसके परिणामस्वरूप मराठों को पूरी तरह आत्म-समर्पण करना पड़ा । इसी प्रकार १८४८-४९ के द्वितीय सिक्ख युद्ध के फलस्वरूप पंजाब भी अंग्रेज़ों के अधिकार में आ गया । १८५३ में अंग्रेज़ों ने झांसी के राजा का राज्य ब्रिटिश बुंदेलखंड में मिला लिया । १८५६ में अवध भी ब्रिटिशराज्य में मिला लिया गया। इस प्रकार भारत में अंग्रेज़ी राज्य की स्थापना पूर्ण हुई ।

अंग्रेज़ों की इस राजनीतिक नीति के कारण जन-जीवन में असंतोष और आशंका ने घर कर लिया । इसकी अभिव्यक्ति १८५७ की क्रान्ति में लक्षित हुई ।

युग-प्रवाह

भारतेन्दु युग

आलोच्य-काल की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना १८५७ की क्रान्ति है । "१८५७ के भारतीय विद्रोह का मुख्य कारण था शासकों और शासितों के बीच सम्पर्क का अभाव[1] । सर सैयद अहमद ने ठीक ही संकेत किया कि परिषदों में भारतीयों का निषेध करने की नीति ने सरकार को जनमत जानने के अवसर से वंचित कर दिया । साथ ही उक्त नीति के कारण ऐसी कोई भी सम्पर्क रेखा न थी, जहां से दृष्टिकोण और उद्देश्य के सम्बन्ध में सरकार और जनता के पारस्परिक भ्रम दूर किए जा सकें[2] ।

भारतीय जनता की स्वतंत्र होने की इच्छा १८५७ की क्रान्ति में प्रकट हुई । "सन् १८५७ की भयंकर राज्यक्रान्ति के ज्वालामुखी का विस्फोट जिसमें हृदय की विगलित भावनायें तरल अग्नि की धारा की भांति मेरठ से दिल्ली की ओर प्रवाहित हुई । नाना साहब, तांतिया टोपे और रानी लक्ष्मीबाई ने अपने अप्रतिम शौर्य से इस जनक्रान्ति को भारत के इतिहास में एक चिर स्मरणीय पर्व बना दिया[3] ।" इस प्रकार भारतीय जनता ने अत्याचारी अंग्रेजी शासन को समाप्त कर देने का प्रयत्न इस माध्यम से किया, किन्तु अनेक कारणों से भारतीय जनता विजयी न हुई और वह सुदीर्घ काल के लिए गुलाम हो गई । निस्सन्देह १८५७ की क्रान्ति राष्ट्रीय क्रान्ति है, जिसके माध्यम से जनता की असंतोष भावना प्रकट हुई थी ।

इस क्रान्ति की विफलता का परिणाम यह हुआ कि भारत का शासन ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथ से निकल कर इंगलैण्ड के मंत्रिमंडल के हाथ में चला गया । कम्पनी के शासन से जनता दुखी थी, क्योंकि उसने सभी क्षेत्रों में अनेक प्रकार के अत्याचार किए थे । इसलिए यह परिवर्तन भारतीय जन-जीवन को उत्फुल्ल कर गया ।

१- भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास- गुरुमुख निहाल सिंह, पृ०८५, सन् १९५२

२- इण्ट्रोडक्शन टू द हिस्ट्री आफ गवर्नमेंट इन इण्डिया- सी०एल० आनन्द

३- उन्नीसवीं शताब्दी की पृष्ठभूमि— रामकुमार वर्मा

१८५८ ई० में महारानी विक्टोरिया का घोषणा पत्र पढ़ा गया जिसमें भारतीय जनता के दुख दूर करने के आश्वासन दिए गए । "शिक्षित भारतीय जनता ने इस घोषणा-पत्र को अपने अधिकारों का 'मैग्नाकार्टा' समझा ।"[1] इस घोषणा से भारतवासियों के मन में अंग्रेज़ी राज्य के प्रति अच्छी धारणाओं का विकास हुआ ।

इस आश्वासन और इससे उत्पन्न जनता की प्रसन्नता के बावजूद इस क्रान्ति के बाद से भारतवासियों और अंग्रेज़ी शासन के सम्बन्ध बहुत सीमा तक बदल गए । "अंग्रेज़ों के हृदय में भारतवासियों के प्रति अविश्वास भर गया और जनता के प्रति सरकार की सारी नीति बदल गई ।"[2] भारतीयों के प्रति अविश्वास के फलस्वरूप सेना, पुलिस, विदेश और राजनीतिक विभाग से भारतीय जनता का बहिष्कार हो गया । सारे देश की निःशस्त्रता के लिए शस्त्र ऐक्ट को दृढ़ता से कार्यान्वित किया गया । इसके परिणामस्वरूप जनता में घृणा, कटुता और अवज्ञा की भावना का विकास हुआ । अंग्रेज और भारतीय के बीच आदर, मित्रता और सहृदयता की भावना समाप्त हो गई । इस प्रकार दोनों जातियों के बीच दुराव की भावना बढ़ती गई ।

दोनों जातियों के बीच बढ़ने वाली खाई के फलस्वरूप एक ओर अंग्रेज अधिक कठोर और अत्याचारी हुए तो दूसरी ओर भारतीय अधिक असन्तुष्ट हो उठे । इस असन्तोष के कारण भारतीय जनता में राजनीतिक चेतना का विकास प्रारम्भ हुआ । सन् १८६६ ई० में दादाभाई नौरोजी ने लंदन में ईस्ट इण्डिया एसोसिएशन की स्थापना की । इसका उद्देश्य इंग्लैण्ड की जनता का ध्यान भारतीय समस्याओं की ओर आकर्षित करना था । १९ वीं शताब्दी के ७ वें दशक के आस पास रानाडे ने सार्वजनिक सभा का संगठन किया था ।

इन संस्थाओं की स्थापना के पीछे भारतीय जीवन की असंतोष तथा विरोध भावना स्पष्ट ही लक्षित होती है । महारानी विक्टोरिया के आश्वासन के फलस्वरूप भारतवासियों को यह आशा थी कि उन्हें सरकारी नौकरियों में उचित स्थान दिया जायगा । जब १८७१ ई० में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को आई०सी०एस० में लिया

१-एकानामिक हिस्ट्री आफ इण्डिया इन द विक्टोरियन-एज-आर०सी०दत्त, पृ०२४२
२-भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास- गुरुमुख निहाल सिंह, पृ० 12

गया, इस आशा की पुष्टि हुई, किन्तु १८७३ में उन पर झूठे आरोप लगाकर उन्हें नौकरी से हटा दिया गया। उनका अपराध था कि वे भारतीय थे। इस प्रकार उन्हें नौकरी से हटा कर सरकार ने भारतवासियों को अपमानित किया। श्री बनर्जी १८७६ में इंग्लैण्ड से बैरिस्टरी पास कर लौटे और उसी वर्ष उन्होंने इंडियन एसोशियेशन की स्थापना की। इसका लक्ष्य पढ़े-लिखे मध्यवर्ग का संघटन करना था।

१८७७ ई० में इस सन्दर्भ में सरकार ने एक और कदम उठाया, जो भारतीय जनता के लाभ के प्रतिकूल था। सरकार ने आई०सी०एस० के लिए अपेक्षित अवस्था घटाकर १६ वर्ष कर दी। इसका उद्देश्य था कि भारतवासियों का इस सेवा में प्रवेश असम्भव बना दिया जाय। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने सरकार के इस रुख का विरोध किया, उन्होंने देश में घूम-घूम कर भारतीय जनता को इस तथ्य से अवगत कराया। इंडियन एसोशियेशन के अतिरिक्त अन्य संस्थाओं का संघटन उन्होंने देश में किया। परिणामस्वरूप देश भर में ऐसी संस्थाओं का जाल फैल गया, जो सरकारी नीति के विरोध में थीं और जिसका उद्देश्य भारतीय हित की रक्षा करना था। कहना न होगा कि इसके फलस्वरूप देशभर में अपने हित और अधिकारों के लिए संघर्ष करने की भावना व्याप्त हो गई।

इसी वर्ष महारानी विक्टोरिया का दिल्ली दरबार हुआ। इस दरबार में प्रतिष्ठित भारतीय तथा राजे-महाराजे आमंत्रित हुए, जिन्होंने विक्टोरिया को अपनी महारानी स्वीकार माना। इसी वर्ष देश में भीषण अकाल पड़ा। सरकारी सहायता के अभाव में अनेक प्राणी काल-कवलित हुए।

भारतीय जनता में अंग्रेजी शासन के प्रति ज्यों-ज्यों असंतोष बढ़ता गया, सरकार की दमन-नीति भी कठोर होती गई। भारत के हिन्दी पत्रों ने इस असंतोष को उजागर कर राष्ट्र में जागृति ले आने का महत्वपूर्ण कार्य किया। सरकार की दृष्टि से हिन्दी पत्रों का यह कार्य राज-विरोधी था। इस विरोध को रोकने के लिए १८७८ ई० में वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट नियम पास किया गया। इंडियन एसोशियेशन ने देश भर में व्याप्त अपनी शाखाओं के माध्यम से इसका विरोध किया जिसके कारण चार वर्षों के बाद इस अधिनियम को रद्द कर दिया गया।

१८७८ ई० में ही शस्त्रास्त्र अधिनियम पारित हुआ। इस नियम के अनुसार बिना अनुमति के किसी तरह का हथियार रखना, ले चलना या व्यापार करने का प्रतिबन्ध था। इस प्रतिबन्ध से ऐंग्लो-इण्डियन और कुछ सरकारी अफसर मुक्त थे।

इस विभेद से भी जनता में क्षोभ था ।

१८८३ ई० में इलबर्ट बिल प्रस्तुत हुआ । इस बिल में भारतीय मजिस्ट्रेटों को युरोपियन अधिकारियों के मुकदमे सुनने का अधिकार मिलता । अंग्रेजों ने इसे नहीं स्वीकार किया और इस बिल का उन्होंने घोर प्रतिरोध किया । फलस्वरूप बिल वापस ले लिया गया ।इसी वर्ष इण्डियन एसोसिएशन के तत्वावधान में एक राष्ट्रीय सम्मेलन सम्पन्न हुआ । इसमें श्री बनर्जी ने भारतवासियों से संगठित होकर देश-सेवा करने का अनुरोध किया । १८८४ में भी इण्डियन एसोशिएशन का प्रान्तीय सम्मेलन हुआ । १८८५ में बम्बई में बाम्बे प्रेसिडेंसी एसोशिएशन की स्थापना हुई तथा १८८५ में ही कांग्रेस की स्थापना बम्बई में हुई ।

इस युग की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटनाओं में, कांग्रेस की स्थापना है । अंग्रेजी राज्य से दुःखी होकर जनता कुछ करना चाहती थी । कांग्रेस के जन्म के पूर्व लोगों में अंग्रेजी राज्य से घोर निराशा हो गयी और इसके फलस्वरूप वे कुछ न कुछ कर गुजरना चाहते थे[1] । मि०ह्यूम उस राजनीतिक अशान्ति को पहचानने लगे थे । उनके हाथ ऐसी रिपोर्टों की ७ जिल्दें लगीं जिनमें भिन्न जिलों में बगावत फैलने की बात का उल्लेख था । बम्बई इलाके के दक्षिण प्रान्त में किसानों के दंगे हो चुके थे । "यह देखकर ह्यूम साहब ने इस अशांति को प्रकट करने का एक सरल उपाय ढूंढ निकाला । वह उपाय था -- कांग्रेस[2] ।"

१ मार्च, १८८३ ई० को ह्यूम साहब ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातकों के नाम एक पत्र लिखा, उसमें उन्होंने ५० ऐसे व्यक्तियों की मांग की जो भले, सच्चे, नि:स्वार्थ, आत्मसंयमी एवं नैतिक साहस रखने वाले और दूसरों की भलाई करने की तीव्र भावना रखते हों । उन्होंने स्पष्ट कहा कि " यदि आप अपना सुख-चैन नहीं छोड़ सकते तो फिलहाल हमारी प्रगति की सारी आशा व्यर्थ है और यह कहना होगा कि हिन्दुस्तान सचमुच मौजूदा सरकार से बेहतर शासन न तो चाहता है और न उसके योग्य ही है[3] ।" उन्होंने यह भी कहा कि यदि वे आगे नहीं आते तो अंग्रेजी शासन का

१- कांग्रेस का इतिहास - पट्टाभि सीतारमैया, पृ०६

२- वही, पृ० ७

३- यंग इंडिया- लाजपतराय, पृ० १११,११२ ।

जुआ उनके कंधों पर रहेगा ।

ह्यूम मानते थे कि भारतीयों की आर्थिक समस्याओं को सुलझाने में अंग्रेजी सरकार असफल रही है और लोग अकाल तथा निराशा से पीड़ित हैं । तत्कालीन भारतीय सरकार जनता से अलग सी है, इसलिए लोग अशांत हैं । उसे व्यक्त करने का माध्यम उन्होंने कांग्रेस को बनाया । यह उक्ति ठीक ही है कि कांग्रेस का गठन क्रान्तिकारी असंतोष की सुरक्षा के कारण किया गया था ।[1]

लाला लाजपतराय के अनुसार कांग्रेस की स्थापना का मुख्य कारण था-- प्रवर्तकों का साम्राज्य को छिन्न होने से रोकने के लिए तीव्र इच्छा । पर मि० ह्यूम का जो भी उद्देश्य रहा हो । इतना निश्चित है कि अन्य भारतीय नेता, जिन्होंने कांग्रेस की स्थापना में सहायता दी, वे अन्य उच्चतर उद्देश्यों से प्रेरित थे । वे थे-- दादा भाई नौरोजी, डब्ल्यू०सी० बनर्जी, फीरोजशाह मेहता, तैयब जी, रानाडे, तैलंग और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आदि । लाला लाजपतराय ने भी स्वीकार किया है कि स्वयं मि० ह्यूम भी अन्य एवं उच्चतर उद्देश्यों से विशेष रूप से प्रेरित थे "ह्यूम को स्वतन्त्रता का ----व्यसन था । दुःख और दरिद्रता के दृश्य से उनका हृदय कराह उठता था । भारतवासियों के प्रति अपने देशवासियों के 'कायरता-पूर्ण' व्यवहार से उन्हें बड़ा क्षोभ होता था । .. इतिहास के गम्भीर अध्ययन से उन्हें यह बात भली भांति ज्ञात थी कि कोई भी सरकार, चाहे वह राष्ट्रीय हो अथवा विदेशी हो, सार्वजनिक मांगों को केवल नीचे से दबाव पड़ने पर ही स्वीकार करती है ।... अत: वह यह चाहते थे कि भारतवासी अपनी स्वतन्त्रता के लिए 'प्रहार' करें । ....प्रथमारम्भ था संगठन । फलत: उन्होंने संगठन के लिए मंत्रणा की ।"[2]

इस प्रकार कांग्रेस की स्थापना में मात्र ब्रिटिश साम्राज्य को बचाने की इच्छा ही नहीं थी । वस्तुत: बहुत दिनों से कितनी शक्तियां काम कर रही थीं, जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय आन्दोलन का उदय हुआ ।

कांग्रेस की स्थापना मुख्यत: सामाजिक उद्देश्यों को लेकर हुई थी, पर क्रमश: इसका रूप राजनीतिक होता गया और धीरे-धीरे वह पूर्णत: राजनीतिक संस्था हो गई । कांग्रेस की नीति पहले अनुनय-विनय की थी, पर धीरे-धीरे देशवासियों के असंतोष

१- कांग्रेस का इतिहास--पट्टाभि सीतारमैया, पृ०७

२- इंडियन नेशनल मूवमेंट एण्ड थाट- डा० वी०बी०एस० रघुवंशी, पृ०[illegible]

के साथ वह आत्मावलम्बी बनती गई । वह धर्म,वन,जाति,लिंग,पद आदि के भेद से परे थी । विकास की प्रारम्भिक अवस्था में मधुरवाणी को अपनाया, यहां तक कि अंग्रेजों की प्रशंसा तथा राजभक्ति की भावना भी प्रकट की । लोकमान्य तिलक ने विदेशियों के प्रति उग्र विचार पैदा किया और कांग्रेस नम्रता की जगह उग्रता अपनाती गई । उसमें शांत क्रान्ति की जगह उग्र क्रान्ति--भावना का प्रवेश होता गया । इस भावना की वृद्धि के साथ ही साथ सरकार भी उस पर संदेह करने लगी । सितम्बर सन् १८९७ ई० में तिलक को १८ मास की कड़ी सजा मिली । वे एक वर्ष बाद मैक्समूलर,हंटर आदि के आवेदन पर मुक्त हुए ।

१८९४ में सरकार ने विदेशी वस्तुओं पर लगने वाला कर घटा दिया । इसका उद्देश्य भारत में विदेशी वस्तुओं का सुविधापूर्वक आयात करना था । साथ ही भारतीय गृह उद्योग को समाप्त कर देने की भावना भी इसमें वर्तमान थी । १८९६ में भीषण प्लेग फैला, जिसमें अनेक व्यक्ति मरे । उसी साल दक्षिण भारत में भीषण अकाल आया जिसके फलस्वरूप २ करोड़ आदमी कालकवलित हुए ।...

१८५७ से १९०० ई० तक अंग्रेजी शासन की राजनीतिक नीति के प्रति जो असंतोष प्रकट हुआ वह क्रमशः उग्र होता गया । इस उग्रता को कम कराने के उद्देश्य से ए०ओ०ह्यूम ने कांग्रेस की स्थापना की । कांग्रेस में शिक्षित वर्ग का प्रवेश होने लगा । धीरे-धीरे क्रांतदर्शी भारतीय बौद्धिक कांग्रेस के माध्यम से अपना असंतोष, अधिकार और स्वतंत्रता की भावना प्रकट करने लगे । इस तरह भारतीय क्रांति-चेतना की अभिव्यक्ति का एक सशक्त मंच कांग्रेस बनती गई ।

<u>द्विवेदी युग</u>

भारतेन्दु-युग की कालावधि में ही कांग्रेस में महान् क्रान्ति के लक्षण दीख पड़ने लगे, किन्तु क्रान्ति का विस्फोट (प्रत्यक्षीकरण) द्विवेदी युग में ही प्रकट हुआ । १९ वीं शताब्दी तक कांग्रेस का उद्देश्य शासन-सुधार में मांग करना था किन्तु द्विवेदी युग में वह स्वशासन के अधिकार मांगने लगी । भारतेन्दु युग में कांग्रेस मात्र शिक्षितों की संस्था थी, किन्तु द्विवेदी युग में उसका सम्बन्ध मध्यवर्ग और जनता से हुआ । धीरे-धीरे कांग्रेस जनप्रिय संस्था बनती गई और इस मंच से जनता की क्रान्ति-भावना उभरने लगी । कांग्रेस की इस बढ़ती हुई स्थिति के कारण सरकार ने उसे सहयोग देना बन्द कर दिया । इससे कांग्रेस के माध्यम से प्रकट होने वाली क्रान्ति-

चेतना की प्रतिक्रिया से दमन की नीति ग्रहण की । इसका परिणाम यह हुआ कि राष्ट्र में क्रान्ति-चेतना बढ़ने लगी और द्विवेदी युग की समाप्ति तक समूचे देश में क्रान्ति की लहर व्याप्त हो गई ।

इस युग की सबसे महत्वपूर्ण घटना बंग-भंग है । १९०५ ई० में लार्ड कर्जन ने बंगाली भाषा-भाषी क्षेत्र को दो हिस्सों में बांट दिया । बंग-भंग की इस घटना से समूचा राष्ट्र आन्दोलित हो उठा । इस आन्दोलन में जनता का सहयोग भी पूरी तरह रहा । जुलूस, सभा, प्रदर्शन आदि के माध्यम से जनता की विरोध-भावना तथा क्रान्ति-चेतना प्रकट हुई । इसकी प्रतिक्रिया से सरकार ने दमन नीति का आलम्बन किया । ज्यों-ज्यों दमन नीति की उग्रता और नग्नता बढ़ती गई, राष्ट्रीय क्रांति भी तीव्र होती गई । डा० सीतारामैया के कथन से इस स्थिति की पुष्टि होती है कि --" दमन नीति से पोषण पाकर राष्ट्रीय उत्थान उलटा बढ़ने लगा ।"[1] यह घटना राष्ट्रीय क्रान्ति के इतिहास में अत्यन्त महत्व की है क्योंकि इससे पूरा देश क्रान्ति-चेतना से जाग्रत हो गया । राष्ट्रीय क्रान्ति के विकास में लार्ड कर्जन की इस नीति की प्रशंसा करते हुए सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने लिखा है --" उन्होंने राष्ट्रीय जीवन की नींव विस्तृत एवं गहरी डाली, उन्होंने उन शक्तियों को उत्तेजित किया, जो राष्ट्रों के निर्माण में सहायक होती हैं, उन्होंने हमें एक राष्ट्र बनाया ।"[2]

इसी पृष्ठभूमि में १९०६ ई० के कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष दादा भाई नौरोजी ने स्वतन्त्रता के इतिहास में पहली बार स्वराज्य का प्रस्ताव उपस्थित किया । इसी वर्ष (१९०६ ई० के) अक्टूबर में भारतीय मुसलमानों के एक प्रतिनिधि मण्डल ने वायसराय से मिलकर आगामी शासन-सुधारों में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की मांग की । इसी वर्ष ३० दिसम्बर को ढाका के नवाब सलीमुल्लाह खां ने मुस्लिम लीग की स्थापना की । लार्ड कर्जन ने उन्हें इस हेतु पर रुपया कर्ज दिया था । सम्भव है, लार्ड कर्जन के निर्देश से ही मुस्लिम लीग की स्थापना हुई हो । कांग्रेस का ध्यान इस वर्ष स्वदेशी आन्दोलन की ओर था । उसने सक्रिय रूप से यह आन्दोलन देश भर में चलाया ।

१- कांग्रेस का इतिहास--- पट्टाभि सीतारामैया, पृ०९५

२- इंडिया-ए नेशन --- एनी बीसेंट, पृ० १६३

इस थोड़ी अवधि में ही भारतीय जन-जीवन में क्रान्ति भावना इतनी तीव्र हो गई कि सरकार को उसे क्षीण करने के लिए सरकार ने भारत के शासन में सुधार करना अपेक्षित समझा। फलत: १९०९ ई० में मार्ले मिण्टो सुधार योजना का परीक्षण प्रारम्भ हुआ। इस सुधार के द्वारा मुसलमानों को पृथक निर्वाचन का अधिकार दिया गया। उन दिनों कांग्रेस उदारवादियों (नरम दल) के प्रभाव में थी, इसलिए इस सुधार से नरम दल वाले संतुष्ट हुए।

१९१० ई० में पंचम जार्ज ब्रिटेन के सिंहासन पर बैठे। इस इस उपलक्ष्य में १९११ ई० में दिल्ली में दरबार का आयोजन हुआ। उसमें देश के कोने-कोने से राजा-महाराजा एकत्र हुए, जिन्होंने सम्राट का स्वागत कर उनके प्रति अपनी राजभक्ति प्रकट की। सम्राट ने इस दरबार में बंगाल को अखण्ड रखने की घोषणा की। इस घोषणा से जनता को प्रसन्नता हुई। इसे जनता के आन्दोलन की विजय के रूप में स्वीकार किया गया। १९१३ ई० में मुस्लिम लीग का लक्ष्य स्वशासन घोषित हुआ और इस प्रकार वह कांग्रेस के निकट आने लगी।

प्रथम महायुद्ध का प्रारम्भ १९१४ ई० में हुआ। इसमें विश्व के प्राय: सभी राष्ट्रों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सम्मिलित होना पड़ा। महायुद्ध की परिस्थितियों ने भारत की राजनीति को भी प्रभावित किया। भारत का सम्बन्ध किसी भी रूप में महायुद्ध से नहीं था, किन्तु ब्रिटिश अधिकार में होने के कारण उसे युद्ध में शामिल होने को बाध्य होना पड़ा।

इसी वर्ष लंदन में श्रीमती एनी बिसेण्ट ने होमरूल लीग की स्थापना की। लीग का उद्देश्य भारतीय जीवन में उभरती हुई क्रान्ति का संदेश जनता को देना था। अपने उद्देश्य की घोषणा करते हुए उन्होंने कहा —, " मैं सोने वाले को जगाने वाला भारतीय टमटम हूं जिससे वे जगें और अपनी मातृभूमि के लिए काम करें[1]।"

राजनीतिक घटनाओं की दृष्टि से १९१६ ई० अत्यन्त महत्वपूर्ण है। गोखले और फिरोजशाह मेहता का निधन १९१५ ई० में हुआ। इनके बाद नरम दल

१- इंडियन नेशनलिस्ट मुवमेंट एण्ड थाट— डा० बी०पी०एस० रघुवंशी, पृ०

साथ प्रभाव क्षीण होता गया और कांग्रेस पर गरम दल वालों का प्रभाव होता गया। १९१६ ई० में कांग्रेस पर गरम दल का अधिकार था। १९१६ ई० में ही श्रीमती एनी बिसेण्ट ने होमरूल लीग की स्थापना पूना में की। मुस्लिम लीग के पृथक प्रतिनिधित्व के अधिकारों को कांग्रेस ने स्वीकारा। परिणामस्वरूप १९१६ ई० में दोनों संस्थाओं का सम्मिलित अधिवेशन लखनऊ में हुआ, जिससे मुस्लिम-हिन्दू सौहार्द की भावना बढ़ी।

होमरूल लीग को जिन्ना, लाला लाजपतराय तथा तिलक जैसे नेताओं का सहयोग भी मिलने लगा और देश में सर्वत्र उसका प्रचार हुआ और शाखाएं खुलने लगीं। मद्रास में लीग की स्थापना १९१७ ई० में हुई। भारत में बढ़ती हुई चेतना को कुचलने के लिए सरकार दमन-नीति को प्रश्रय देने लगी। लीग की संस्थापिका श्रीमती बिसेण्ट के पत्रों से जमानतें मांगी गयीं।

भारत में बढ़ती इस जागरूक चेतना के शमन के लिए शासन में सुधार की आवश्यकता महसूस हुई और नवम्बर १९१७ में माण्टेग्यू साहब पधारे। सन् १५ में गांधी जी विजयी सेनानी के रूप में अफ्रीका से भारत आए। पहले वे कांग्रेस से अलग रहे। लेकिन १९१६ ई० के अन्त में उन्होंने फीजी की "गिरमिट प्रथा" को बन्द करने के लिए व्यक्तिगत सत्याग्रह का अस्त्र संभाला। १९१७ई० में वायसराय ने इस प्रथा को बन्द करने की घोषणा की।

१९१८ ई० में मांट फोर्ड योजना के प्रकाशन से कांग्रेस के नरम और गरम दल में मतभेद और बढ़ा। नरम दल वाले इस सुधार से प्रसन्न थे जब कि गरम दल वाले इन सुधारों को अपर्याप्त मानते थे। इसलिए वे सरकार के साथ सहयोग की भावना नहीं रखते थे। अंग्रेजों ने इसके अनुसार यह मान तो लिया था कि भारत को उत्तरदायी शासन प्राप्त करना है, लेकिन उसे योग्य बनाने के लिए यह जरूरी था कि उन्हें शासन-सूत्र संचालन की शिक्षा दी जाय। इसलिए शासन-व्यवस्था में उनके प्रतिनिधित्व की योजना की गई।[१]

१९१९ ई० की ६ फरवरी को विलियम विंसेण्ट ने रौलट बिलों को कौंसिल में उपस्थित किया। प्रथम बिल स्वीकृत हुआ, लेकिन दूसरे को वापस ले लिया गया। गांधीजी ने घोषणा की कि वे नम्रतापूर्वक रौलट कमीशन का विरोध करेंगे,

---

१- कांग्रेस का इतिहास — पट्टाभि सीतारमैया

यदि इसकी सिफारिशें कानून का रूप ग्रहण करेंगी । १९१९ ई० की ३० मार्च हड़ताल के लिए निर्धारित हुआ । पर किन्हीं कारणों से यह तिथि ३० मार्च की जगह ६ अप्रैल हो गई । पर तिथि-परिवर्तन की सूचना समय पर दिल्ली नहीं पहुंची, फलत: वहां उसी दिन हड़ताल हो गई । सरकार दमन के लिए कटिबद्ध थी और जनता में उत्तेजना बढ़ती गई । परिणामस्वरूप कई स्थानों पर गोलियां चलीं ।

इन आन्दोलन के फलस्वरूप पंजाब के इतिहास में एक महान दुर्घटना हुई जो राष्ट्रीयता के इतिहास में अमर है । ओडायर, पंजाब का निरंकुश शासक नहीं चाहता था कि उसके प्रान्त में भी आन्दोलन हो । अत: उसने निर्दयता से दमन प्रारम्भ किया । इसी क्रम में १० अप्रैल १९१९ को डा० किचलू और सत्यपाल कैद कर अज्ञात स्थान में भेज दिए गए । प्रान्त भर की जनता इस घटना से क्षुब्ध हो उठी और इसके प्रतिरोध में १३ अप्रैल, १९१९ई० को अमृतसर के जलियांवाला बाग में जनता की एक महान् सभा हुई । इस सभा में २० हजार स्त्री-पुरुष और बच्चे शामिल हुए । ओडायर की सरकार इस जन-जागृति को सहन न कर सकी और उसने दमन का निश्चय किया । जनरल डायर भीड़ को तितर-बितर करने के लिए भेजा गया । पर डायर ने पहुंचते ही गोली चलाने की आज्ञा दे दी । फलत: अनेक स्त्री-पुरुष और बच्चे नृशंसता के साथ गोली के शिकार हुए । मृत और घायल सारी रात बाग में पड़े रहे । इसी समय बेंत लगाने, पेट के बल रेंग कर चलने, पानी और बिजली बन्द करने, मुकदमा चलाने आदि के कार्य दमन-नीति के अन्तर्गत हुए । जनरल डायर के इस कार्य की गवर्नर ओडायर ने प्रशंसा की । अन्य स्थानों जैसे गुजरात वाला कसूर और शेखपुरा में भी इसी तरह के अमानुषिक अत्याचार हुए ।

इन घटनाओं से क्षुब्ध होकर, अपनी भूल स्वीकार करते हुए सत्याग्रह को वापस लिया और शान्ति स्थापना के लिए सरकार को सहायता देने के लिए तत्पर हुए । 'सितम्बर १९१९ ई० में वाइसराय ने हण्टर-कमीशन की नियुक्ति की घोषणा की, कि वह पंजाब के उपद्रवों की जांच करेगा परन्तु इसके साथ ही १८ सितम्बर को इन्डेम्निटी बिल आया, जो कि आमतौर पर फौजी कानून के साथ आया करता है'[1]

१- कांग्रेस का इतिहास — पट्टाभि सीतारमैया, पृ०१७८

श्रीमती बिसेण्ट भी इन घटनाओं से दुखित हुई और बोलीं कि 'रौलट' बिल में कोई भी ऐसी बात नहीं है जिसपर कि किसी ईमानदार नागरिक को खराब हो सके ।" जब लोगों की भीड़ सिपाहियों पर रोड़े बरसाये[1] तब सिपाहियों को गोली के कुछ फेर करने की आज्ञा दे देना अधिक दयापूर्ण है ।" श्रीमती बेसेण्ट के इस रूख से उनकी लोकप्रियता भारतीय जनता के हृदय से समाप्तप्राय: हो गई । कांग्रेस की ओर से मालवीय जी तथा मोतीलाल नेहरू पंजाब काण्ड की जांच के लिए नियुक्त हुए ।

२६ अप्रैल १९१९ को भारत का एक शिष्ट मण्डल इंगलैण्ड गया । वहां मजदूर-दल ने उसका स्वागत किया । वहां शिष्ट मण्डल द्वारा यह मांग की गयी कि मिस्र और आयरलैण्ड के समान भारत को भी आत्म निर्णय का अधिकार मिले ।

इसी समय प्रथम महायुद्ध खत्म हुआ । भारत अंग्रेजों की सहायता करने के पुरस्कार स्वरूप, इस आशा में था कि उसे आत्म निर्णय का अधिकार मिल जायगा । पर यह नहीं हुआ । सुधार मात्र से ही भारतीयों को संतुष्ट करने का प्रयत्न किया गया ।

इस युग में इन विभिन्न राजनीतिक परिस्थितियों के कारण आतंकवादी कार्यों तथा साम्प्रदायिक भावना का भी उदय हुआ । आतंकवादी कार्यों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में वैलेन्टाइन शिरोल का मत है कि यह कट्टर हिन्दुत्व की भावना से प्रेरित हुआ था और विशेषत: यह पश्चिम के प्रति ब्राह्मणवादी प्रतिक्रिया थी ।

"Though there have been and still are many admirable exceptions, Brahmanism remained the stronghold of reaction against the Western invasion."[3]

इसके अनुसार ब्राह्मणवाद दक्षिण में भीषणरूप से सैनिक भाव लिए हुए था और तिलक इसके विजयी नेता थे ।

इस मान्यता को अस्वीकृत करते हुए गैरेट कहते हैं कि यह कट्टर हिन्दुओं का ब्रिटिश राज्य उलटने का षड्यन्त्र नहीं था, क्योंकि इसके नेता ब्राह्मणेतर भी थे[3]।

१- कांग्रेस का इतिहास— पट्टाभि सीतारमैया, पृ०१८८, १८९, नवम्बर १९३८ ई०

२- इण्डियन अनरेस्ट— वेलेन्टाइन शिरोल, पृ०३७, १९१०ई०

३- इण्डियन नेशनलिस्ट मूवमेण्ट एण्ड थाट— डा०वी०पी०एस० रघुवंशी, पृ०८२

लाला लाजपतराय की दृष्टि में आतंकवादी आन्दोलन के सूत्रपात का कारण स्वतंत्रता की प्रेरणा है । भारतीय राष्ट्रीय जीवन में आतंकवाद का जन्म कांग्रेस की असफलता का परिणाम था । उन दिनों कांग्रेस, नवयुवकों की दृष्टि में उग्र राजनीति और क्रांति-विरोधी संस्था प्रतीत हो रही थी, क्योंकि वह अहिंसात्मक ढंग से बहिष्कार आन्दोलन का नेतृत्व करने को भी तैयार नहीं थी । लाला लाजपतराय की यह मान्यता आतंकवाद की उत्पत्ति के बारे में उचित प्रतीत होती है । गैरेट के कथन से शिरोल के मत का खण्डन हो जाता है । पर इतना स्पष्ट है कि उसमें धार्मिक भावना अवश्य थी और हिन्दुत्व की यह भावना पुनरुत्थानवादी थी ।

भारतीय राष्ट्रीयता की एक अन्यतम विशेषता, उसकी राजनीति के साथ धर्म का सहयोग और देशभक्ति के साथ साम्प्रदायिकता का मिश्रण, रही है । २०वीं शताब्दी के शुरू में राष्ट्रीयता के इतिहास में जो उग्रता और आतंकवाद है, वह धार्मिक क्रान्ति की भावना से भी प्रेरित रहो है । लाला लाजपतराय, बाल गंगाधर तिलक और विपिन चन्द्र पाल तथा अरविन्द देश-प्रेम की भावना से उद्बुद्ध थे । उन्हें स्वदेश और स्वदेशी प्यारा था । इनकी राष्ट्रीयता हिन्दू धर्म से प्रेरित थी । अरविन्द ने कहा कि हमारे सभी आन्दोलनों में स्वतन्त्रता ही जीवन का उदय है और हिन्दुत्व हमारी इस अभिलाषा की पूर्ति कर सकेगा । उनके अनुसार राष्ट्रीयता एक धर्म है जो ईश्वर से अवतरित है[1] ।

आलोच्य काल में आतंकवादी कार्यों की अत्यन्त तीव्र प्रगति हो रही थी । जैसे एनी बिसेण्ट ने 'हाउ इण्डिया राट फार फ्रीडम' में कहा कि " यह उन बच्चों का पागल प्रयत्न है, जो कुछ बेकार अपराधों के द्वारा अपनी मातृभूमि की स्वतन्त्रता पाने का सपना देख रहे हैं[2] । " पर तत्कालीन आतंकवादी प्रगति की तीव्रता देखते हुए यह कथन ठीक नहीं माना जा सकता ।

ऐसा राष्ट्र जो अत्याचारी शासक के इशारों पर नाचता तथा अत्याचारों एवं अनाचारों को मूक बनता रहता है, अकर्मण्यों या नपुंसकों का राष्ट्र है ।

१- पोलिटिकल फिलासफी आफ अरविन्दो— डा० वी०पी० वर्मा, पृ०२०१

२- इण्डियन नेशनलिस्ट मूवमेण्ट एण्ड थाट— डा०वी०पी०एस० रघुवंशी, पृ०१२२

भारत में ऐसी स्थिति नहीं थी, इसलिए उसने क्रांतिकारी कार्यों द्वारा अत्याचारों तथा दासता का प्रबल विरोध किया । निःसन्देह इससे अंग्रेज़ी सत्ता बौखला उठी । सरकार के विरोध में आतंकवादियों ने युद्ध प्रारम्भ कर दिया ।

आतंकवादियों का प्रमुख कार्यस्थल बंगाल, महाराष्ट्र और पंजाब बना । बंगाली आतंकवादियों की गीता 'मुक्ति कौन पथे' नामक पुस्तक थी । वे शाक्त सम्प्रदाय या वेदान्त के आराधक थे । वेदान्तियों का प्रेरणा स्रोत भगवान कृष्ण द्वारा गीता में प्रचारित संदेश और विवेकानन्द के लेख और वक्तव्य थे । मातृभूमि को मुक्ति दिलाने के लिए उनके एक हाथ में बम और दूसरे में गीता रहा करती थी ।

तिलक महाराष्ट्र के आतंकवादियों के और लाला हरदयाल पंजाबियों के नेता थे । ये सरकारी खजाने, सम्पत्तियां लूटने को प्रेरित करते थे । राजनीतिक डकैतियों तथा अत्याचारी शासकों की हत्या में इनका विश्वास था । पंजाब के क्रांतिकारी डकैतियों और हत्या के अतिरिक्त सेना को सम्पर्क में करके विद्रोह करना चाहते थे और गुरिल्ला युद्ध छेड़ने के हिमायती थे ।

इस प्रकार नवयुवक वर्ग में सर्वत्र उग्र क्रांति की भावना व्याप्त थी । बंग भंग तथा स्वदेशी आन्दोलन की लहर ने 'नवयुवकों' में और जागृति बढ़ाई, जिससे नवयुवक आतंकवादी तथा हिंसात्मक कार्यों के माध्यम से मातृभूमि की मुक्ति को सुगम समझने लगे । उनका विश्वास था कि कांग्रेस की अहिंसात्मक क्रांति से सुधारवादी प्रयत्नों से भारत का स्वतंत्र होना सम्भव नहीं । " पुरानी राष्ट्रीयता डरपोक, हिचकिचाने वाली, नम्रता करने वाली, हानि-लाभ का संतुलन करने वाली, सांसारिक विचारों, दूरदर्शिता तथा स्वार्थ से बाधित थी । इसलिए वह कोई प्रभाव उत्पन्न करने में असफल हो गई ।[1]" इसलिए अराजकतावादी दृष्टिकोण से प्रभावित युवकों ने सशस्त्र क्रांति द्वारा देश की मुक्ति का अभियान प्रारम्भ किया । १९०८ ई० में मुजफ्फरपुर में खुदीराम बोस ने जिला जज पर बम फेंका । पर संयोगवश जिला जज के स्थान पर अन्य अंग्रेज मरे । इस अपराध के लिए खुदीराम को फांसी की सजा मिली

१- राइज एण्ड ग्रोथ आफ इण्डियन मिलिटैंट नेशनलिज्म—एस०एल० बख, पृ०१६,१९४०ई०

अत्याचार और दमन की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न आतंकवाद विकसित होता गया । १९१० और ११ ई० में क्रांति के अनेक विस्फोट बंगाल,महाराष्ट्र और मध्यभारत में हुए । इटली तथा रूस के क्रांतिकारियों के समान भारतीय क्रांतिकारियों ने भी सरकार को मिटाने के लिए गुप्त संगठन प्रारम्भ किया । लाला हरदयाल ने गदर पार्टी की की स्थापना अमेरिका में की । राजा महेन्द्रप्रताप ने भी इस दिशा में काम किया । उनका सम्बन्ध रूस के बोल्शेविकों से भी रहा था ।

भारत पर आतंकवादी विचारधारा का महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ा । इस आन्दोलन में भारतीय जनता अत्यल्प परिमाण में सम्मिलित थी । उच्चवर्गीय-मध्यवर्गीय देशभक्त जनता उनके विरुद्ध कोई काम नहीं करना चाहती थी । उच्चवर्गीय भी इस सम्प्रदाय से भयभीत थे । अत: उनका समर्थन भी इसे प्राप्त नहीं था ।

आतंकवादियों का दमन सरकार द्वारा भी बड़ी बेरहमी से हुआ । अनेक क्रांतिकारियों को मृत्यु दंड दिया गया । प्रस्तुत काल में आतंकवादियों से घबड़ा कर १९१९ई० में सरकार ने रौलट ऐक्ट पास किया । आतंकवादी देश-भक्ति की उत्कट भावना से प्रेरित थे । वे अंग्रेजों की कृपा से अधिकार प्राप्त करना नहीं चाहते थे,वरन् अपनी मुक्ति स्वयं चाहते थे । पर किसी केन्द्रीय संगठन के अभाव में उपर्युक्त परिस्थितियों में आतंकवाद विशेष सफल नहीं हो सका ।

देश की आन्तरिक राजनीतिक परिस्थितियों के अतिरिक्त कुछ विदेशी परिस्थितियों ने भी भारत की राष्ट्रीय क्रान्ति की चेतना को तीव्र किया । १९०५ई० में रूस पर जापान की विजय, ऐसी घटनाओं में पहली घटना है । देश के राष्ट्रीय जीवन को इससे अद्भुत प्रेरणा मिली । वास्तु क्रियात्मक देश इस नयी प्रेरणा से कर्मठ हो गया । इस क्रियाशीलता का रूप बंग-भंग-आन्दोलन और परवर्ती काल की घटनाओं में द्रष्टव्य है । १९१७ई० में रूस की जारशाही को क्रांति द्वारा समाप्त कर वहाँ गणराज्य की स्थापना दूसरी घटना है । इस घटना से भी राष्ट्रीय क्रांति को चेतना शक्ति मिली । इस घटना से भारत की निम्नवर्गीय जनता किसानों और मजदूरों में भी चेतना की किरणें फूटीं और वे भी मुक्ति की ओर अग्रसर हुए । इस प्रकार दिन-प्रति-दिन देश में नवचेतना चेतना जागरूकता बढ़ती गई और राष्ट्रीयता के क्षेत्र के अतिरिक्त अन्य विविध क्षेत्रों में भी क्रांति -भावना जन-सम्पर्क से पुष्ट एवं क्रियाशील होती गई ।

महात्मा गांधी ने सत्य और अहिंसा के सिद्धान्त का सफल प्रयोग अफ्रीका में किया और वहां गोरों पर अप्रतिम विजय पाकर १९१५ई० में भारत आए। भारतीय राजनीतिक क्रान्ति इस विजय से सबल हुई।

प्रथम महायुद्ध से भारत का प्रत्यक्षत: कोई सम्पर्क नहीं था। इसलिए इसे भी विदेशी घटना ही कहना उपयुक्त है। भारतीय सहायता के बावजूद ब्रिटेन ने भारत को स्वतन्त्रता नहीं दी। आत्म निर्णय के अधिकार की मांग महासमर की ज्वाला से प्रस्फुटित हुई थी। विश्वयुद्ध ने विश्वभर के लोगों का हृदय तथा मस्तिष्क जनतंत्र के नये दृष्टिकोण के प्रति खोल दिया था[१]।

इस प्रकार सम्पूर्ण देशी-विदेशी घटनाओं के प्रकाश में यह स्पष्ट है कि भारतेन्दु युग की अपेक्षा, आलोच्यकाल का राजनीतिक जीवन अधिक क्रियात्मक और शक्तिशाली था।

छायावाद युग

छायावाद युग का आरम्भ १९२० ई० के आस पास माना जाता है। क्रान्ति की दृष्टि से भी १९१० ई० युगान्तरकारी वर्ष है। असहयोग आन्दोलन, राजनीति के रंगमंच पर महात्मा गांधी का आना, खिलाफत आन्दोलन इसी समय के आस-पास हुए और ये घटनाएं भारतीय जन-जीवन में युगान्तरकारी घटनाएं थीं। इस काल की राष्ट्रीय क्रान्ति की भावना सम्पूर्ण राष्ट्र में अखण्ड और शक्तिशाली थी। जन-जीवन एक नयी चेतना से अनुप्राणित हो रही थी।

इस समय कांग्रेस का इतिहास दलबन्दियों से आरम्भ होता है। इस वर्ष की घटनाएं खिलाफत को लेकर प्रारम्भ हुई। इंगलैण्ड के प्रधानमंत्री लायड जार्ज द्वारा मुसलमानों को महायुद्ध टर्की से लड़ने के उपलक्ष्य में कुछ वचन दिए गए थे। पर युद्ध-समाप्ति के बाद वे वचन पूरे नहीं हुए। अत: मुसलमान क्षुब्ध हो उठे और अंग्रेजों को अविश्वासी समझने लगे। जिसमें अंग्रेजों ने मुसलमानों को वचन दिया था

१- इण्डियाज साइलेण्ट रिवोल्यूशन--एफ०बी०फिशर, पृ० १९१,सन् १९२० ई०।

कि वे जजीरतुल अरब को (जिसमें उनके सभी धार्मिक स्थान--मैसोपोटामिया, अरबिस्तान, सीरिया, फिलस्तीन-- थे, खलीफा के अन्तर्गत रखेंगे । पर संधि की शर्तों के अनुसार तुर्कों को अपने प्रदेश नहीं दिए गए और उसे ब्रिटेन और फ्रांस ने आपस में बांट लिया । तुर्की का शासन मित्रराष्ट्रों के एक हाई कमीशन द्वारा होने लगा । सुलतान एक कैदी मात्र रह गया । इस विश्वासघात से सारा देश क्षुब्ध हो उठा । प्रतिक्रिया स्वरूप खिलाफती और कांग्रेसी ने अनुसार के कथनानुसार एकत्र हुए और गांधीजी के कथनानुसार खिलाफत आन्दोलन प्रारम्भ करने का निश्चय हुआ ।

वाइसराय से एक शिष्टमण्डल डा० अन्सारी के नेतृत्व में १६ जनवरी, १६२० ई० को मिला । पर परिणाम निराशा ही रहा । १६२० ई० की मार्च में एक शिष्टमण्डल इंगलैण्ड के प्रधानमंत्री से मुहम्मदअली की अध्यक्षता में मिला । यह अभियान भी सफल नहीं हुआ । स्पष्टत: प्रधानमंत्री ने कहा कि तुर्कों की नीति भी ईसाई राष्ट्रों के साथ बरती जाने वाली नीति ही होगी ।

इन दिनों देश में हिन्दू-मुस्लिम एकता अभूतपूर्व थी । महात्मागांधी ने इसे देखते हुए कहा था कि सौ वर्षों के अन्दर दोनों जातियों की एकता का ऐसा स्वर्ण सुयोग नहीं मिलेगा । वस्तुत: यह काल राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से अभूतपूर्व था । इसने जन-जन के मन में विदेशी शासन के प्रति विद्रोह की भावना भर दी ।

१६२० की १४ मई को तुर्किस्तान के साथ की संधि की शर्तें घोषित हुईं । इससे खिलाफत आन्दोलन और राष्ट्रीय-क्रांति की भावना तीव्रतर हुई । गांधीजी ने संधि की शर्तों में संशोधन के लिए असहयोग आन्दोलन की घोषणा की । २८ मई को पंजाब की घटनाओं पर हन्टर रिपोर्ट प्रकाशित हुई । अंग्रेज सदस्यों द्वारा घटनाओं को पूर्व नियोजित बताया गया । माण्टेगु ने कहा कि जनरल डायर ने जैसा उचित समझा उसके अनुसार बिल्कुल नेकनीयती के साथ काम किया । अलबत्ता उससे परिस्थिति को ठीक-ठीक समझने में गलती हो गई ।[1] इन कारणों से भारतीय जनता निराश और क्षुब्ध होने लगी ।

सितम्बर महीने में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन लाला लाजपतराय की अध्यक्षता में हुआ । इस अधिवेशन में तत्कालीन परिस्थितियों पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया और कांग्रेस ने गांधीजी के असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव स्वीकृत

१- कांग्रेस का इतिहास -- पट्टाभि सीतारमैया, पृ० १५६

कर लिया । गांधी जी का यह असहयोग प्रगतिशील अहिंसात्मक असहयोग था, जो कई नेताओं को नहीं रुचा । इनमें मदनमोहन मालवीय,विपिनचन्द्र पाल, चितरंजनदास, श्रीमती एनी बिसेण्ट, जिन्ना आदि इस प्रस्ताव का विरोध करने वालों में मुख्य थे । इसी समय गांधीजी ने सम्पूर्ण देश का दौरा कर, जन-मानस का भय शान्त कर,आशा और उत्साह का नया प्रकाश भरा । संघर्ष को एक नवीन प्रणाली दी । विदेशी सत्ता का और तीव्र विरोध करने के लिए हिन्दू-मुस्लिम एकता पर और बल दिया । चुनाव को एक जाल कहकर उसका खण्डन किया । इससे दोनों जातियों में भ्रातृत्व भावना का विकास हुआ । राष्ट्रीयता की भावना दृढ़तर होती गई । महात्मा गांधी का असहयोग प्रस्ताव १९२० के नागपुर अधिवेशन में स्वीकृत हो गया । इस प्रस्ताव के विरोधी दास,पाल आदि कांग्रेस त्याग कर उदारवादियों में मिल गए ।

अब बहिष्कारों का युग था । जनता ने मुक्त-हृदय से सरकारी उपाधियों, स्कूल-कालेज,विदेशी वस्त्र, कचहरी,कौंसिल फौज तथा सरकारी नौकरियों का बहिष्कार गांधीजी के आह्वान पर किया । जनता को प्रशंसनीय सफलता प्राप्त हुई । देश में यत्र-तत्र कई राष्ट्रीय विद्यापीठ स्थापित हुए । भारतीय जनता की स्थिति को देखने के लिए १९२१ ई० में ड्यूक आफ कनाट आए । जनता ने हड़तालों से उनका स्वागत किया विदेशी वस्त्रों की होली जली । स्थान-स्थान पर खून खराबियां भी हुईं । अंततः उसका रूप साम्प्रदायिक दंगे स के रूप में प्रकट हुआ । बम्बई में हिन्दू-मुस्लिम-रक्तधारा बही । प्रायश्चित के लिए गांधी जी ने अनशन आरम्भ कर दिया ।

इस प्रकार १९२१ ई० में असहयोग तीव्रतर होता रहा । महात्मा गांधी द्वारा शान्तिपूर्ण असहयोग द्वारा एक वर्ष में स्वराज लेने की घोषणा ने इस आन्दोलन को अत्यन्त शक्ति प्रदान की ।

क्रमशः यह आन्दोलन सरकारी नियमों के प्रतिवाद की ओर बढ़ा । इसी क्रम में चौरी चौरा काण्ड हुआ । फलतः वहां के किसान सरकारी कर्मचारियों से बदला लेने की ओर उत्तेजित हुए और जन-समूह से प्रेरणा पाकर उन्होंने कई पुलिस सिपाहियों की हत्या कर दी । इस हिंसात्मक कार्य से गांधी जी क्षुब्ध हो गए । परिणामस्वरूप असहयोग आन्दोलन बन्द कर दिया गया ।

आन्दोलन क्रम में अधिकारियों ने नृशंसतापूर्वक आन्दोलनकारियों का दमन किया । उनकी यह नीति बाद में भी बनी रही । २० हजार से भी अधिक

सत्याग्रही इस आन्दोलन में जेल गए ।

१९२२ ई० में साम्प्रदायिक दंगों के कारण हिन्दू-मुस्लिम एकता को भी धक्का लगा और कार्यतः तथा सिद्धान्ततः खिलाफत तथा असहयोग दोनों ही आंदोलन समाप्त हो गए । जेल से छूटने पर चितरंजनदास ने कौंसिल में प्रवेश कर नौकरशाही को कुचलने की योजना बनायी । फलतः विभिन्न क्षेत्रों में नौकरशाही सचेत हो गई । ओ०डायर ने कहा था, " इस तरह का ध्वंस प्रकट विद्रोह की अपेक्षा ज्यादा अधिक है ।" कांग्रेस की सविनय अवज्ञा समिति के अध्यक्ष की हैसियत से हकीम अजमल खां ने घोषणा की कि आन्दोलन मर चुका । और उन्होंने असहयोगियों से चुनाव में भाग लेने की सिफारिश की और उस रास्ते से स्वराज्य की ओर बढ़ने को कहा । साथ ही यह योजना भी थी कि यदि बहुमत प्राप्त हो जाए तो सरकार के हर कार्य का विरोध किया जाय । महात्मा गांधी कौंसिल में जाने के विरुद्ध थे । इस प्रकार कांग्रेस दो दलों में ~~जाने-के-विरुद्ध-थे~~ विभक्त हो गई । कांग्रेस पर गांधीजी का प्रभुत्व था । इसलिए चित्तरंजनदास ने स्वराज पार्टी की स्थापना की और १९२३ के चुनाव में इस दल के लोगों ने हिस्सा लिया । मध्यप्रदेश और बंगाल में उन्हें सफलता भी मिली । अन्तर प्रान्तों में भी स्वराजी सफल हुए, पर इनका बहुमत नहीं हो सका ।

स्वराजी विधान सभा में सरकारी नीति का विरोध करने और सभा भवन का बहिष्कार भी करने लगे । तेजबहादुर सप्रू ने स्वराजियों की राष्ट्रीयता को 'लोकोमोशन' की नाटकीय राष्ट्रीयता कहा था । कई जगह स्वराजी सफल भी हुए । बंगाल में वे बहुमत होने के कारण सफल हुए । उन्होंने मंत्रियों के वेतन सम्बन्धी सरकारी बिल को रद्द कर दिया । मध्यप्रदेश में भी इन्होंने सरकार का जोर-शोर से खण्डन किया । १९२६ ई० में स्वराजी विधान सभा से वापस आ गए । इनके कार्य बहुत अधिक महत्वपूर्ण भले ही न हों, पर बाधा की नीति से उन्होंने राष्ट्रीय संघर्ष को कायम रखा । निराशा की वह भावना जो असहयोग, खिलाफत तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलनों की वजह से देश में व्याप्त थी, स्वराजियों की इस क्रियाशीलता से मिटी और राष्ट्रीय चेतना बनी रही । लेकिन १९२३ई० और १९२४ ई० देश के अनेक हिस्सों में घोर साम्प्रदायिक झगड़े हुए । दंगों का जोर इलाहाबाद, जबलपुर, शाहजहांपुर, लखनऊ, नागपुर, गुलबर्गा और दिल्ली आदि में रहा । दंगा अपनी चरम सीमा पर कोहाट में हुआ और इस दंगे ने भारत की कमर तोड़ दी ।

इन साम्प्रदायिक दंगों से क्षुब्ध होकर, प्रायश्चित स्वरूप गांधीजी ने २१ दिनों का उपवास प्रारम्भ किया । १९२५ में भी दंगों का जोर रहा । इसने देश की राष्ट्रीय परम्परा को भारी नुकसान पहुंचाया ।

स्वराजियों की अवरोध की नीति भी १९२५ई० से २७ई० तक के कार्यों में बराबर नहीं चल सकी । अतः स्वराजियों ने, मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में, केन्द्रीय धारा सभा में सरकार से सहयोग प्रारम्भ किया । मालवीय जी और लाला लाजपतराय ने कांग्रेस स्वतन्त्र पार्टी बनाई और देश के हिन्दुओं को अपने झंडे के नीचे आहूत किया । बम्बई में सरकार को खुलकर सहयोग दिया । सुभाषचन्द्र बोस पर क्रांतिकारी दल से सम्बद्ध होने का संदेह किया गया । वे भारत छोड़, बर्मा चले गए । स्वराज पार्टी दो हिस्सों में बंट गयी और राष्ट्रीय आन्दोलन का यह मंच भी सूना हो गया । इन दिनों में गांधीजी ने सूत कताई प्रारम्भ किया । संघ बनाए और सारे देश में इसका प्रचार किया ।

राजनीति की दृष्टि से १९२८ ई० सारे हलचल का वर्ष रहा । इस समय से देश में क्रांतिकारी भावना का पुनः विकास होने लगा । नवयुवकों का जागरण इस समय भी क्रांतिकारी चेतना में अग्नि का काम करने लगा । नवयुवकों ने क्रांतिकारी तथा सामाजिक-आर्थिक सिद्धान्तों पर अधिक ध्यान दिया । इस राष्ट्रीय नव जागरण के रंगमंच पर जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस जैसे नवयुवक नेता उभरे । ये दोनों उग्रवादी विचारों के थे और अनेक उत्साही नवयुवक उनके साथ थे ।

इस प्रकार १९२७ के बाद राष्ट्रीयता अधिक उग्र और क्रांतिकारी हो चली । इस उग्रता से अंग्रेजी सरकार भी इस ओर आकृष्ट हुई और भारत में उत्तरदायी शासन लागू करने के बारे में विचार करने के लिए साइमन कमीशन की नियुक्ति हुई । यहां यह भी स्मरणीय है कि १९२७ ई० की मद्रास कांग्रेस ने अपना लक्ष्य औपनिवेशिक स्वराज्य की जगह 'पूर्ण राष्ट्रीय स्वतन्त्रता' घोषित किया था । इस कमीशन में कोई भारतीय नहीं लिया गया था । अतः भारत की जनता के मन में यह भावना जगी कि उनके स्वभाग्य निर्णय की पूरी तरह उपेक्षा की गई है । और इसलिए अपने स्वाभिमान की रक्षा हेतु उसने इस शाही कमीशन के पूर्ण बहिष्कार का निश्चय किया ।

३ फरवरी, १९२८ ई० को साइमन कमीशन बम्बई में उतरी । जनता ने उसका स्वागत हड़तालों से किया । सिर्फ चाटुकारों को छोड़कर किसी भी देशभक्त ने

सरकार का साथ साइमन कमीशन के स्वागत में नहीं दिया । राष्ट्रीय विचार वालों ने काले झंडों और `साइमन लौट जाओ' के नारे लगाकर सरकारी नीति का विरोध किया । सरकार ने भी भीड़ के दमन का प्रयास किया इससे जनता और सिपाहियों में मुठभेड़ हुई ।

इस कमीशन में भारतीय प्रतिनिधियों को नहीं लेने के कारण में सरकार ने बताया कि साम्प्रदायिक दंगों के कारण वह ऐसा नहीं कर सकी । सभी राष्ट्र-नायकों को यह बात खटक रही थी । साम्प्रदायिकता राष्ट्रीयता की उन्नति में रोड़ा बनकर खड़ी थी । इसी समय मोतीलाल नेहरू ने स्वतन्त्रता के लिए सभी पार्टियों के सम्मेलन की योजना बनायी । फरवरी-मार्च में एक सर्वदल सम्मेलन हुआ, जिसमें कांग्रेस लीग,महासभा, सिखलीग आदि एकत्र हुए । उन्होंने नेहरू की रिपोर्ट पर विचार किया। इस सम्मेलन ने राष्ट्रीयता के इतिहास में एक दिशा-संकेत का काम किया, क्योंकि इसके द्वारा देश की ऐक्य-भावना एक नये रूप में प्रस्तुत हुई । नेहरू-रिपोर्ट में साम्प्रदायिक आधार पर की जाने वाली निर्वाचन प्रणाली की भी भर्त्सना की गई थी । कारण, राष्ट्रीयता की दृष्टि से वह अत्यन्त अनुचित और हानिकारक साबित किया गया था । लेकिन साम्प्रदायिक हिन्दू-मुसलमानों ने इसे सफल नहीं होने दिया ।

कांग्रेस कुछ दिनों में फिर से स्वराजियों के हाथ से निकल कर गांधीजी के हाथ में आ गई । गांधीजी ने असहयोग की नीति अपनाने को कहा और टैक्स देना बन्द करने को कहा ।

१९२९ ई० की अप्रैल में मैकडोनाल्ड की मजदूरदलीय सरकार के बनने से भारतीय नेताओं में अत्यन्त आशा और शक्ति का संचार हुआ । इंग्लैण्ड से वापस लौटने पर लार्ड इरविन ने ३१ अक्टूबर, १९२९ ई० को घोषणा की कि इंग्लैण्ड सरकार ब्रिटिश भारत और राज्यों का एक सम्मेलन करना चाहती है । इस सम्मेलन द्वारा वह जानना चाहती थी कि भारतीय जनता सरकार से कहां तक समझौता करेगी । सरकार ने यह भी कहा कि वे भारत को वैधानिक प्रगति के माध्यम से औपनिवेशिक स्वराज्य देना चाहते हैं । उदारवादियों ने सरकार से सहयोग करना स्वीकारा । लेकिन गांधीजी उसमें सम्मिलित नहीं हुए, क्योंकि वे वाइसराय से यह आश्वासन चाहते थे कि सम्मेलन में औपनिवेशिक स्वराज के आधार पर बातें की जायेंगी

पर वाइसराय ऐसा कोई आश्वासन नहीं दे सके थे ।

१६२६ ई० में कांग्रेस का अधिवेशन लाहौर में हुआ । उस समय का वातावरण सरकारी समझौते की असफलता के कारण निराशामय था । इस अधिवेशन के अध्यक्ष जवाहरलाल नेहरू चुने गए । यह इस बात का द्योतक थी कि अग्रणी कांग्रेसियों ने प्रत्यक्ष कार्रवाई की नीति को अपनाने का निश्चय किया है । जवाहरलाल ने भारतीय स्वातंत्र्य युद्ध को ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध खुली लड़ाई कहते हुए स्वयं को समाजवादी घोषित किया । उनका विश्वास गुप्त संघर्ष की नीति पर नहीं था । उन्होंने कहा कि अब वे परिस्थितियां परिवर्तित हो गयी हैं कि जिनमें गोलमेज परिषद् में सम्मिलित होकर औपनिवेशिक राज्य लिया जाय । कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य को अपना ध्येय रावी तट पर घोषित किया साथ ही यह भी निश्चय किया गया कि स्वतंत्र भारत कामनवेल्थ से किसी प्रकार सम्बन्धित नहीं रहेगा ।

२६ जनवरी, १६३० ई० भारतीय स्वातंत्र्य इतिहास का क्रांतिकारी दिवस माना जायगा, जब सम्पूर्ण देश के कोने- कोने में तिरंगा झण्डा फहराते हुए पूर्ण स्वराज्य की घोषणा की गई । इसी समय सरकार से सहयोग नहीं करने की प्रतिज्ञाएं भी दुहराई गईं । इन आयोजनों से देश की शक्ति और उत्साह पर नया प्रकाश पड़ा । लोगों ने इसे ही कार्य करने का उपयुक्त अवसर समझा । फरवरी १६३० तक कांग्रेस द्वारा आहूत सविनय अवज्ञा आन्दोलन में १७२ विभिन्न विधायकों ने विधान सभा से त्यागपत्र दे दिया ।

गांधी जी को कांग्रेस कार्य समिति की ओर से सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ करने की अनुमति मिल गई । गांधी जी ने इसकी घोषणा करते हुए कहा :

"मुझे मित्रादेहि की राजनीति पर विश्वास था । पर सदा व्यर्थ हुआ । मैं जान गया कि सरकार को सीधा करने का यह उपाय नहीं है । अब तो राजद्रोह ही मेरा धर्म हो गया है । पर हमारी लड़ाई अहिंसा की लड़ाई है । हम किसी को मारना नहीं चाहते, पर इस सत्यानाशी शासन को खत्म कर देना हमारा परम कर्तव्य है ।"[१]

१- कांग्रेस का इतिहास : पट्टाभि सीतारमैया, पृ० ३०६

सविनय अवज्ञा के सन्दर्भ में उन्होंने नमक कानून भंग करने का निश्चय किया। साबरमती आश्रम से अपने ७६ साथियों सहित, नमक कानून भंग करने के लिए उन्होंने डंडी के समुद्र तट की ओर प्रस्थान किया। यह ऐतिहासिक अभियान था। साबरमती में ७५ हजार किसानों ने भारत स्वतंत्र होने तक विश्राम नहीं लेने की प्रतिज्ञा की। देश के कोने कोने में नमक कानून भंग हुआ। गांधी जी को अभूतपूर्व सहयोग और समर्थन मिला। देश के एक कोने से दूसरे कोने तक राष्ट्रीय क्रान्ति-चेतना की धारा बहने लगी।

बाम्बे क्रानिकल ने इस अवसर का बड़ा ही सुन्दर चित्र उपस्थित किया है :

'इस महान अवसर पर देश प्रेम की जितनी प्रबल धारा बह रही थी उतनी पहले कभी नहीं बही थी। यह एक महान आन्दोलन का महान आरम्भ था और निश्चय ही भारत की राष्ट्रीय स्वतंत्रता के इतिहास में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान रहेगा।'[१]

गांधी जी नमक कानून तोड़ने के अपराध में ५ अप्रैल को कैद किए गए। उनकी कैद से देश भर में आन्दोलन आरम्भ हो गया। प्रत्येक वर्ग को पूर्ण स्वराज्य प्राप्ति में सहयोग के लिए आमंत्रित किया गया। करबन्दी, नशाबन्दी तथा विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार सम्पूर्ण देश में फैल गया। इस स्वराज्य आन्दोलन में प्रत्येक वर्ग ने समुचित सहयोग दिया। यहां स्मरणीय यह है कि कांग्रेस की इस कार्यवाई के आरम्भ में मूलतः आर्थिक राष्ट्रीय-क्रान्ति की चेतना थी।

सरकार द्वारा भी दमन कार्य जोर-शोर से प्रारम्भ हुआ। स्थान-स्थान पर लाठी चार्ज हुआ। देश एक जेलखाने सा हो गया। औरतों के साथ नृशंसतापूर्ण कार्य हुए। विद्यार्थी और शिक्षक पीटे गये। लम्बी-लम्बी सजाएं दी गयीं और कितनों की सम्पत्ति जब्त कर ली गई।

इन्हीं दिनों जून, १६३० में साइमन कमीशन ने अपनी रिपोर्ट दी, जिसमें भारतीय भावना की उपेक्षा थी। इससे आन्दोलन को और बल मिला।

आन्दोलन के विकास के साथ ही देश में क्रान्तिकारी कार्य भी तेजी से होने लगे। क्रान्तिकारियों ने चटगांव के शस्त्रागार को अप्रैल, १६३० में लूट लिया। शोलापुर में विद्रोह फूटा और सम्पूर्ण शहर विद्रोहियों के कब्जे में आ गया। १६३० में ही भगतसिंह ने सरकारी नीति के विरोध में विद्रोह प्रकट करने के लिए असेम्बली में बम

१- कांग्रेस का इतिहास में उद्धृत अंश, पृ० ३०६

फेंका । इस वर्ष के उत्तरार्द्ध में सम्भवत: ऐसा कोई सप्ताह नहीं था, जब किसी अंग्रेज अधिकारी पर बम न फेंका गया हो ।

आन्दोलन और आतंक के इस परिवेश में मध्यवर्गीय तथा पूंजीपति वर्गीय ऊब चुके थे । अत: वे चाहते थे कि सरकार और कांग्रेस में समझौता हो जाए । समझौते के लिए उदारवादी नेता तेजबहादुर सप्रू और जयकर कांग्रेसी नेताओं और वाइसराय से मिले । अन्य शर्तों के साथ ही कांग्रेस ने अर्थ और सुरक्षा पर पूर्ण अधिकार के साथ भारतीय जनता के प्रति उत्तरदायी शासन की मांग रखी । वाइसराय इससे सहमत नहीं हो सके । अत: प्रथम गोलमेज परिषद् में कांग्रेस सम्मिलित नहीं हो सकी । लार्ड जेटलैण्ड ने इसे राजनीतिक बुद्धिमत्ता से रहित अद्वितीय कार्य कहा । वस्तुत: द्वितीय परिषद् में सम्मिलित होकर कांग्रेस वैधानिक शासन की दिशा में कोई विशेष महत्वपूर्ण कार्य नहीं कर सकी[१] ।

१२ नवम्बर १९३० को प्रथम गोलमेज परिषद् प्रारम्भ हुई । प्रधानमंत्री मैकडानल्ड ने परिषद् को भारत के भावी विधान का प्रारूप तैयार करने का भार दिया, लेकिन वह भार भी पूर्ण नहीं था । उन्होंने संघात्मक शासन प्रणाली की स्थापना को अपना ध्येय बताया और सुरक्षा तथा वैदेशिक विभाग को सुरक्षित विषय बताकर वाइसराय के कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत दे दिया । कांग्रेस ने उसमें भाग नहीं लिया । उसमें ब्रिटिश भारत , भारतीय राजाओं तथा ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया । इस परिषद् द्वारा मजदूर दलीय सरकार इस तथ्य से अवश्य परिचित हो गई कि भारत तुरत औपनिवेशिक स्वराज्य चाहता है ।

मुसलमानों ने अपने सम्प्रदाय की सुरक्षा के लिए परिषद् में जोरदार अपील की । हिन्दू प्रतिनिधि सफलतापूर्वक इसका विरोध नहीं कर सके । सुभाषचन्द्र बोस के शब्दों में "गोलमेज परिषद् ने भारत को दो ब कड़वी गोलियां दीं, सुरक्षा और संघ की । इन गोलियों को सौम्य बनाने के लिए उनके ऊपर उत्तरदायित्व की चीनी लपेट दी गई थी[२] ।"

सरकार द्वारा गोलमेज परिषद् की कार्रवाई पूरी तो हुई पर कांग्रेस के अभाव में यह सम्प्रदायवादियों और प्रतिक्रियावादियों का सम्मेलन सिद्ध हुई । वाइसराय

१- इंडियन नैशनलिस्ट मुवमेण्ट एण्ड थाट-- डा०बो०पी०एस० रघुवंशी,पृ०२११,१९५१ई०
२- दी इण्डियन स्ट्रगल--सुभाषचन्द्र बोस, पृ० २७५

ने महात्मा गांधी से सहयोग मांगा । प्रधानमंत्री ने भी अपनी सहमति प्रकट की ।

सरकार इस विषय में सचेष्ट थी । इसीलिए उसने गांधोजी को बिना शर्त के, उनके १९ साथियों के साथ, मुक्त कर दिया ताकि वे समझौते के सम्बन्ध में विचार विमर्श कर सकें । कांग्रेस ने भी समझौते को स्वीकारा और घोषणा की कि उस समय कोई नया आन्दोलन आरम्भ न किया जाय ।

गांधी इरविन समझौता ५ मार्च, १९३१ को सम्पन्न हुआ, जिसमें गांधी जी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन वापस लेने और गोलमेज परिषद् में हिस्सा लेना स्वीकार किया । सरकार ने भी कई शर्तों को स्वीकार कर लिया । उनमें प्रमुख थे --राजनीतिक बन्दियों की मुक्ति, आर्डिनेन्सों को वापस लेना, जब्त सम्पत्ति लौटाना, समुद्र के किनारे रहने वालों को बिना टैक्स नमक बनाना तथा नशाबन्दी का शान्तिपूर्ण विरोध करने की छूट देना भी स्वीकार किया । महात्मा जी की इस स्वीकृति से कई लोगों ने उन पर शक्तिशाली जन-आन्दोलन को पथभ्रष्ट करने और स्वराज्य संघर्ष को छोड़ने का आरोप लगाया । कुछ आलोचकों ने क्षुब्ध होकर इसे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रति भारतीय राष्ट्रीयता का समर्पण भाव कहा । लेकिन महात्मा जी इस समझौते को अपनी विजय मानते थे । पर नवयुवक इसके विरुद्ध थे, क्योंकि हाल में ही सरदार भगतसिंह को फांसी मिली थी ।

१९३१ में ही हिन्दू-मुस्लिम दंगा अपने भीषण रूप में कानपुर में हुआ । इसमें गणेश शंकर विद्यार्थी मारे गए । सम्पूर्ण देश में इससे क्षोभ और दुःख व्याप्त हो गया ।

अत्यन्त वाद-विवाद के बाद १९३१ की करांची कांग्रेस ने समझौते के प्रस्ताव को स्वीकृति दी और कांग्रेस प्रतिनिधि के रूप में मात्र गांधी जी २९ अगस्त १९३१ को द्वितीय गोलमेज परिषद् में शामिल होने के लिए इंग्लैण्ड चले ।

लेकिन वहां २६ अगस्त को मजदूर सरकार द्वारा इस्तीफा दिए जाने और अनुदार दल की नई सरकार हो जाने के कारण, परिस्थितियां भिन्न थीं । अत: गोलमेज परिषद् बनाने वाली आडम्बरपूर्ण वाद-विवाद समिति मात्र बनकर रह गई ।

इस परिषद् में गांधी जी साम्प्रदायिक समस्याओं का समाधान चाहते थे । लेकिन उनकी सारी चेष्टाएं भारतीय राजाओं और सम्प्रदायवादियों के संयुक्त प्रयास से निष्फल हो गयीं । डा० अम्बेदकर ने भी दलित जातियों का प्रभावपूर्ण

चित्रण करते हुए हिन्दुओं के साथ रहना अस्वीकार कर दिया । पं० मालवीय जैसे हिन्दू नेता भी गांधी जी के विरोधी थे । अन्तत: दलित वर्ग,मुस्लिम,भारतीय ईसाई, आंग्ल भारतीय और ब्रिटिश सरकार के सदस्य संयुक्त रूप से इसे राष्ट्रीयता के पक्षधर गांधी जी के विरुद्ध हो गए और पृथक चुनाव की मांग करने लगे । महात्मा गांधी ने अत्यन्त दु:ख के साथ कहा कि वे साम्प्रदायिक समस्याओं के समाधान में सफल नहीं हो सके ।

१ दिसम्बर १६३१ को परिषद् की कार्यवाही समाप्त होने पर गांधी जी ६ दिसम्बर को इंगलैण्ड से भारत के लिए रवाना हुए । अभी वे रोम में ही थे कि 'लन्दन टाइम्स' ने एक इटालियन प्रेस रिपोर्टर की रिपोर्ट प्रकाशित की, जिसमें कहा गया था कि वे पुन: संघर्ष आरम्भ करने जा रहे हैं । यह संवाद सर्वथा गलत था । २८ दिसम्बर को वे भारत आए और ४ जनवरी,१६३२ को फिर से कैद कर लिए गए । इस गिरफ्तारी से संघर्ष फिर से आरम्भ हो गया । आन्दोलन की प्रगति के साथ ही सरकार की कड़ी आतंकवादी दमन भी प्रगति करता गया । कांग्रेस नेताओं की लम्बी लम्बी कैदें हुईं ।

मुसलमान सरकार के साथ हो गए । मौलाना शौकत अली ने बम्बई में बहिष्कार आन्दोलन को चुनौती दी । फलत: हिन्दू-मुस्लिम उत्तेजना बढ़ी और मई में साम्प्रदायिक दंगा आरम्भ हुआ । दलित वर्ग भी मुसलमानों की राह पर था । शहर की दशा खराब होती गई, पर नौकरशाही प्रसन्नता के साथ चुपचाप सब देखती रही ।

८ अगस्त १६३२ को मैकडानाल्ड ने एक एवार्ड प्रकाशित किया,जिसमें अल्पमत वाली जातियों के लिए पृथक निर्वाचन का विधान बनाया गया था । मुसलमानों के लिए तो स्थान सुरक्षित था ही, सिखों और दलित वर्ग के लिए भी स्थान सुरक्षित कर दिया गया । यह सब भारतीय सदस्यों के साम्प्रदायिक समस्याओं के सुलझाने में असफल होने के कारण किया गया । ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा हिन्दू सम्प्रदाय में भी फूट डालने के कारण महात्मा गांधी दु:खी हुए और उन्होंने आमरण अनशन प्रारम्भ किया ।

इस कार्य से हिन्दू जनता अत्यन्त उत्तेजित हो उठी । मालवीय जी द्वारा हिन्दुओं की एक सभा बुलायी गई । इसमें डा० अम्बेडकर भी थे । गांधी जी की प्राणरक्षा के लिए समझौते का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ । सरकार द्वारा प्रदत्त सुविधाओं

से असन्तुष्ट डा० अम्बेदकर ने मौके का लाभ उठाकर दलित वर्ग के लिए अधिक स्थानों की मांग की । दलित वर्ग को प्रान्तीय विधान सभा में सरकार द्वारा ७१ स्थान मिला था । अब १४८ स्थान देना तय हुआ और इस आशय का एक समझौता हुआजो पूना-समझौता के नाम से अभिहित किया गया । गांधी जी द्वारा हुई इस सिफारिश को सरकार ने भी स्वीकार कर लिया । फलत: कांग्रेस के साथ दलित वर्ग भी हो गया और अछूतोद्धार का आन्दोलन तीव्र गति से प्रारम्भ हुआ ।

अछूतोद्धार आन्दोलन के तीव्र सक्रियता से सविनय अवज्ञा आन्दोलन की गति निष्क्रिय हो गयी । तृतीय गोलमेज परिषद् १९३२ ई० में लन्दन में हुई । इसमें एक तरफ तो राजभक्त और प्रतिक्रियावादी ब्रिटिश अधिकारियों के साथ मिल कर भारत के भाग्य पर विचार कर रहे थे और दूसरी तरफ इधर भारत में देशभक्तों पर जेल में कोड़े पड़ रहे थे । क्रमश: सविनय अवज्ञा आन्दोलन मंद होता गया । पर कुछ न कुछ धीमी गति में ही गांधी जी के जेल मुक्त किये जाने की तिथि अर्थात् ८ मई १९३३ तक यह चलता रहा ।

मुक्ति के पश्चात् ६ सप्ताह के लिए गांधी जी ने आन्दोलन बन्द कर दिया । कारण, आर्डिनेन्सों से जनता भयाक्रान्त थी तथा देश में हिंसावृत्ति बढ़ रही थी और अहिंसा के पावन सिद्धान्त को धक्का लग रहा था । सामूहिक रूप से आन्दोलन स्थगित था पर राष्ट्रीय सम्मान के हेतु व्यक्तिगत आन्दोलनों का क्रम १९३४ के मार्च तक चलता रहा ।

क्रमश: लोग पदों की ओर आकृष्ट होने लगे । कौंसिल-प्रवेश का लोभ जगा । १९३३ के मार्च में डा० अन्सारी की अध्यक्षता में सविनय अवज्ञा आन्दोलकों की एक सभा हुई । सभा ने फिर से निर्वाचन में सम्मिलित होने वालों के लिए, मतदाताओं को संगठित करने का निश्चय किया । इससे कांग्रेस ने भी सहमति प्रकट की । गांधी जी ने भी इसे स्वीकृति दी परन्तु स्वयं को उन्होंने सविनय अवज्ञा आन्दोलन में ही लगाए रखा ।

१९३४ के कांग्रेस के बम्बई अधिवेशन में कौंसिल प्रवेश के प्रस्ताव से सहमति प्रकट की ।

सरकार ने भारत के वैधानिक विकास का प्रारूप तैयार करते हुए एक श्वेत पत्र मार्च १९३३ में विज्ञापित किया । इसमें प्रकाशित साम्प्रदायिक स्वार्थ से देश चौंकता उठा । मुसलमानों द्वारा इसे समर्थन मिला जब कि हिन्दू इसके एकदम विरोधी

थे । गांधी जी इस विषय में स्पष्ट नहीं थे । स्वार्ड ने कांग्रेस में मतभेद पैदा कर दिया । मालवीय जी और अणे ब ने कांग्रेस से त्यागपत्र दे दिया । उन्होंने कांग्रेस राष्ट्रीय दल का संगठन किया । इन दिनों हिन्दू और मुसलमान बहुत उत्तेजित थे ।

श्वेत पत्र के आधार पर बने भारतीय कानून को राजकीय स्वीकृति ४अगस्त १९३५ को मिली । इसमें अधिक भारतीयों को मतदान का अधिकार दिया गया था तथा प्रान्तीय स्वराज्य भी स्वास्थ्य शिक्षा और आर्थिक कल्याण के क्षेत्र में मिला था ।

कौंसिल प्रवेश के विषय में भी कांग्रेस में मतभेद था । दक्षिणपंथी नेता विधान के अनुसार कौंसिल प्रवेश के इच्छुक थे पर नेहरू तथा बोस जैसे वामपंथी इसके विरोधी थे । १९३६ में नेहरू ने निर्वाचन में हिस्सा लेने का विरोध करते हुए कहा कि हमने जिस महान कार्य के लिए संकल्प किया है, उसके लिए विश्राम नहीं करना है । यदि हम ऐसा करते हैं तो देश के करोड़ों लोगों के साथ विश्वासघात करते हैं । सुभाषचन्द्र बोस ने इसे पराजय और समर्पण कहा । जय प्रकाश और नरेन्द्र देव जैसे समाजवादी विरोध में कांग्रेस समिति की बैठकों से कई बार बाहर चले आए । पर राजा जी पटेल, राजेन्द्र प्रसाद और महात्मा जी भी कौंसिल-प्रवेश के समर्थक थे । दोनों दलों में गांधी जी ने सुलह कराया और कांग्रेस ने निर्वाचन में हिस्सा लिया । बिहार,उड़ीसा,मद्रास,युक्तप्रान्त,मध्यप्रान्त और बरार में कांग्रेस को बहुमत मिला । बम्बई, बंगाल,आसाम और उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त में कांग्रेस एकमात्र बड़े दल के रूप में चुनी गई । पंजाब और सिंध में बहुत अल्प मात्रा से यह पराजित रही । निराश और आक्रान्त भारतीय जनता के मानस में, चुनाव के की इस विजय से,राष्ट्रीयता सम्बन्धित भावनाएं दृढ़ हुई और प्रतिक्रियावादियों के उस कथन के कारण जवाब मिला कि भारतीय राष्ट्रीयता अब लुप्त हो चली है ।

इस युग के उत्तरार्द्ध में भारत में समाजवाद आया । जवाहरलाल नेहरू ने भी इसी समय अपने को समाजवादी कहा, भारत में कम्युनिस्ट संघ १९२८ ई० के आस पास बना । कम्युनिस्ट पार्टी ने मजदूरों तथा किसानों में वर्ग-चेतना उत्पन्न की । अनेक अवसरों पर पूंजी और श्रम में विवाद हुए । साम्यवाद लोकप्रिय होता गया , क्योंकि यह मजदूरों और किसानों की समस्याओं पर ध्यान देता था । १९३४ ई० में कांग्रेस ने भी समाजवादी दल की स्थापना की । १९३८ के बाद समाजवाद भारत के जीवन में अधिकाधिक लोकप्रिय होता गया । इससे जन-चेतना विकसित होती ही रही,

साथ ही संघर्ष-भावना भी बढ़ती गई। इन दिनों शोषण के विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रियाएं हुईं।

प्रगतिवाद युग

समाजवाद के आगमन ने भारतीय राष्ट्रीयता में उग्र क्रान्तिवादिता भर दी थी। आलोच्य-काल की राजनैतिक परिस्थितियां कांग्रेस द्वारा सरकारी सहयोग से प्रारम्भ होती हैं। ऊपर कहा जा चुका है कि कांग्रेस कई प्रान्तों में बहुमत प्राप्त कर चुकी थी। निर्वाचन के सन्दर्भ में नेताओं ने देश भर में ओजस्वी भाषण दिया। इन सब कारणों से कांग्रेस तथा राष्ट्रीय चेतना तीव्र और सक्रिय हो गई। आशा और विश्वास का वातावरण व्याप्त हुआ, लेकिन इस विश्वास में बलिदान एवं उत्सर्ग नहीं बल्कि विधान का आग्रह था। राष्ट्रीय चेतना ने प्रतिक्रियावादियों को धक्का लगा। लोगों की यह निराशा समाप्त हो गई कि राष्ट्रीय चेतना समाप्त प्राय है। इसी राष्ट्रीय जागरूकता और उग्रता के परिवेश में कांग्रेस का मंत्रिमण्डल में प्रवेश हुआ।

जून, १६३७ में लार्ड लिनलिथगो ने जो उस समय वायसराय थे, एक वक्तव्य प्रकाशित किया, जिसमें सरकार की ओर से कांग्रेस को पूर्ण सहयोग देने की बात कही गई। १६३७ ई० की जुलाई में कांग्रेस की स्वतंत्र सरकार ६ प्रान्तों में और २ प्रान्तों में संयुक्त सरकार स्थापित हुई। और इस प्रकार वे जो, सरकार के विरोधी थे, अब हिज मजेस्टी के शासन के सूत्रधार बने, पर आगे द्वैध शासन के परिणामस्वरूप कांग्रेस के कार्यकलाप में अनेक बाधायें उत्पन्न हुईं। फल यह हुआ कि वह किसी भी महत्वपूर्ण कार्य में सफल नहीं हुई।

आगे चलकर १६३८ में सुधारवादी तथा समझौतावादी दृष्टिकोण और कार्य के चलते कांग्रेस में विभेद पैदा हो गया। अनेक कांग्रेसी मंत्रिमण्डल बनाने के विरोधी थे। पर सुधारवादियों ने विरोध की परवाह न कर सरकार का साथ दिया। फलतः शोषण तीव्र हुआ और उसका १६३८ में उसका प्रत्यक्षीकरण हुआ।

सुधारवादी नेता गांधीवादी होते हुए भी अत्यन्त सहिष्णु और वैधवादी थे। इसलिए वे अंग्रेज़ सरकार को मिटाने के लिए राष्ट्रीय शक्ति का उपयोग नहीं करना चाहते थे, बल्कि हर तरह से सरकार के सहयोग के लिए प्रस्तुत थे। इनमें साम्राज्यवाद

प्रमुख थे राजा जी तथा सरदार पटेल । ये ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरोध द्वारा नाजीवाद के चरणों को दृढ़ करने के पक्ष में नहीं थे, क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीयता के संदर्भ में वे ब्रिटिश सरकार को जनतंत्र का पक्षधर और समर्थक मानते थे । यही कारण था कि वे सरकार के साथ समझौता करने के समर्थक थे ।

सुभाषचन्द्र बोस वामपंथी दल के पक्षधर थे । उन्हें उदारवादियों की सुधार और समझौते की नीति एकदम पसन्द नहीं थी। अतः वे इस नीति के तीव्र आलोचक थे । महायुद्ध की अनिवार्यता को उन्होंने पहचान लिया था । उसमें इंग्लैण्ड पर आने वाली संभावित विपत्तियों को भी उन्होंने समझा था । ब्रिटेन पर जब नाजीवाद की बढ़ती हुई ताकत आक्रमण करे, उसी समय उसे एक धक्का देकर वे समाप्त कर देना चाहते थे । प्रतिज्ञाओं की परवाह उन्हें नहीं थी । विदेशी साम्राज्यवाद को भारत से मिटाने के लिए वे हिंसात्मक कार्यों के भी पक्ष में थे । मजदूरों और किसानों में वे शोषण की विभीषिका दिखाकर तीव्र असंतोष फैला देना चाहते थे । इस विरोधी गांधीवादी दल में साम्यवादियों और समाजवादियों ने भी उनका साथ दिया । जी० अधिकारी, जो प्रमुख साम्यवादी थे,ने लिखा कि कांग्रेस का रास्ता भीरुतापूर्ण और समझौतावादी पूंजीपतियों का था ।

उदारवादी कांग्रेसी ब्रिटेन का विनाश कर, स्वतन्त्रता के पक्ष में नहीं थे । न ही वे स्वराज्य के लिए सरकार को अंतिमेत्थम् देने के पक्ष में थे । १९३९ई० में त्रिपुरी अधिवेशन के सभापति के निर्वाचन को इस विरोधी परिस्थिति ने अत्यन्त उलझा दिया । वामपंथियों के आग्रह से सुभाषचन्द्र बोस नेफिर से अध्यक्ष पद का उम्मीदवार बनना चाहा। लेकिन उदारवादी इसके पक्ष में नहीं थे, क्योंकि इससे कांग्रेस की समझौतावादी नीति को धक्का लगता । इसलिए उदारवादियों ने डा० पट्टाभि सीतारमैया को उनके विरोध में खड़ा किया और उनके पक्ष में स्पष्टतः प्रचार किया ।

इन विरोधी विषम परिवेश में अध्यक्ष निर्वाचित हुए । २०३ के बहुमत से सुभाषचन्द्र बोस अध्यक्ष बने । गांधी जी ने इस चुनाव पर खुशी प्रकट करते हुए भी पट्टाभि सीतारमैया की हार को अपनी हार कहा । लेकिन त्रिपुरी अधिवेशन में उदारवादियों की ही चलती रही,क्योंकि बीमारी के कारण सुभाष बाबू कुछ न कर सके । फिर गांधीवादियों को धनिकों और जनता का भी सहयोग प्राप्त था । इस प्रकार १९०७ से प्रारम्भ वामपंथी तथा उदारवादी विचारों का संघर्ष समाप्तप्राय:

हो गया । क्षुब्ध होकर सुभाषचन्द्र ने कांग्रेस से सम्बन्धविच्छेद कर,फारवर्ड ब्लाक को स्थापित किया ।

द्वितीय महायुद्ध १६३६ के सितम्बर में आरम्भ हुआ । केन्द्रीय धारा सभी की अनुमति बगैर ही भारत के गवर्नर जेनरल ने भारत को इस युद्ध में सम्मिलित कर लिया । गांधी जी इस अनुत्तरदायी कार्य के प्रति चुप रहे । कांग्रेस ने सरकार से युद्ध-नीति जानना चाहा । और वह युद्ध में इस शर्त पर सम्मिलित होना स्वीकार किया कि युद्धोपरान्त भारत स्वतन्त्र राज्य घोषित हो, लेकिन सरकार ने ऐसा कोई आश्वासन नहीं दिया । नवम्बर, १६३६ में कांग्रेस मंत्रिमंडल ने कांग्रेस कार्य समिति के आदेश से पद त्याग दे दिया । इससे सभी प्रान्तों में गवर्नरों के शासन का प्रारम्भ हुआ । १६३५ ई० में साम्राज्यवाद से सुलह कर, कांग्रेस ने मंत्रिमण्डल में जाने का निर्णय लिया था , पर यह दिशा अधिक ठीक नहीं कही जा सकती, क्योंकि इससे साम्प्रदायिक धरातल पर शासन हस्तगत करने को प्रोत्साहन मिला । मुस्लिम सम्प्रदायवादियों को इस कथन का सुनहरा अवसर मिला कि कांग्रेस का ध्येय हिन्दू राज्य की स्थापना है और उन्होंने इस बात को अधिकाधिक प्रचारित भी किया । फलत: हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य में वृद्धि हुई और एकता का ह्रास हुआ । २२ दिसम्बर १६३६ को मुस्लिम लीग ने मुक्ति दिवस मनाया, क्योंकि उस दिन कांग्रेस राज्य समाप्त हुआ ।

साम्राज्यवाद को भारत की स्वतन्त्रता को अस्वीकृत करने का आधार हिन्दू-मुसलमान के बिगड़े हुए सम्बन्ध को बनाया । लार्ड लिनलिथगो ने कहा कि सरकार द्वारा किसी निश्चित नीति की घोषणा नहीं किए जाने का कारण अल्पमतों, देशी राजाओं और पूंजीपतियों की सुरक्षा के प्रश्न क से सम्बद्ध है । १६४० की जनवरी में उन्होंने गवर्नर जेनरल की कार्यकारिणी समिति को विस्तृत कर कुछ राजनीतिक नेताओं को लेने की घोषणा की । इस दिशा में उन्होंने कांग्रेस के सुझावों को स्वीकृत नहीं किया । अत: सदा की भांति कांग्रेस के सामने इस बार भी असहयोग ही रास्ता बचा ।

अप्रैल,१६४० में रामगढ़ के कांग्रेस अधिवेशन में पूर्ण स्वराज्य के बदले अन्य कुछ भी न लेने की घोषणा हुई । इस अधिवेशन में भारत के लिए विधान निर्मातृ सभा की भी मांग की गई । जो भारत का विधान स्वतन्त्रता,जनतंत्र और राष्ट्रीय एकता के आधार पर बनाये । जनता से भी यह अनुरोध किया गया कि राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए वह सविनय अवज्ञा आन्दोलन में भाग ले । युद्ध-विरोध आन्दोलन नवम्बर १६४० में प्रारम्भ हुआ । अनेक सत्याग्रही जेल भेजे गए । यह संघर्ष निष्क्रिय था । फलत:

अंग्रेजी सरकार उससे नहीं हिली और १९४१ तक यह समाप्त हो गया ।

इस काल में राष्ट्रवादी नेताओं के अतिरिक्त कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा भी जन-संघर्ष शुरू हुआ था । जनतांत्रिक और तानाशाही साम्राज्यवादी शक्तियां ही इस समय युद्ध में लड़ रही थीं । रूस-युद्ध भी चल रहा था । पर नाजी जर्मनी द्वारा रूस पर हमला किए जाने पर ब्रिटेन आदि जनतांत्रिक साम्राज्यवादियों ने रूस से युद्ध-समझौता किया । तत्पश्चात् भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की दिशा परिवर्तित हो गई । रूस के सम्मिलित होने पर उसने युद्ध को जन-युद्ध कहा और ब्रिटिश शासन के विरुद्ध स्वतन्त्रता के लिए किए संघर्ष का विरोध प्रारम्भ किया । 'राष्ट्रीय जन-संघर्ष से दूर रह कर तथा उसका विरोध कर कम्युनिस्ट पार्टी ने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संघर्ष को खोखला किया ।'[1]

कम्युनिस्ट पार्टी राष्ट्रीयता को वर्ग चेतना के माध्यम के रूप में मानती थी । अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मजदूर राज्य स्थापित करना उसका उद्देश्य था । अतः वह राष्ट्रीय नहीं, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से प्रभावित थी । मास्को उसका केन्द्र था । अतः वह सदा मास्को की ओर देखता रहा और उसका निर्देश स्वीकार कर अपनी नीतियां बनाता रहा । इसीलिए रूस के युद्ध में शामिल होते ही विश्व युद्ध जनता का युद्ध हो गया । 'जन-युद्ध की ज्वरोन्मत्तता में उसने सुभाष बोस को 'भारतीय स्वतन्त्रता का गद्दार' 'जापानी साम्राज्यवाद का पिट्ठू' और जापानी तानाशाही के पीछे दौड़ने वाला कुत्ता' कह कर सम्बोधित किया था ।'[2] जब कि हर भारतीय स्वातन्त्र्य के इच्छुक व्यक्ति के वे श्रद्धास्पद हैं । इसी आधार पर कम्युनिस्ट पार्टी ने १९४२ ई० के अगस्त क्रान्ति का भी विरोध किया ।

इस प्रकार भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष की प्रगति में, कम्युनिस्ट पार्टी इस काल में अवरोधक बनी रही । कम्युनिस्ट पार्टी को इस दृष्टिकोण से अराष्ट्रीय भी कहा जा सकता है ।

सोवियत रूस के विरुद्ध जर्मनी ने इसी बीच युद्ध की घोषणा कर दी । धुरी राष्ट्रों के आक्रमण के शिकार चीन और रूस के प्रति भारतीय जनता के मानस में सहानुभूति बनी और उसका प्रदर्शन कई-कई माध्यमों से हुआ । इसी समय जापान की

१- रीसेण्ट ट्रेण्ड्स इन इण्डियन नेशनलिज्म--ए०आर० देसाई, पृ० २६ ,सन् १९६० ई०
२- लीडरशीप एण्ड पोलिटिकल इन्स्टिट्यूशन्स आफ इण्डिया - पार्क और टिंकर, पृ०८२-८३, सन् १९६० ई०

युद्ध में सम्मिलित हो गया । जापान की प्रारम्भिक जीतों से साम्राज्यवादी बौखला उठे । अब खतरा भारत के द्वार पर था, इसलिए भारतीय भी भयाक्रान्त थे ।

इस घटना ने भारत के राष्ट्रवादी नेताओं की विचारधाराओं को प्रभावित किया । फलत: उनकी नीति भी परिवर्तित हुई । जवाहरलाल नेहरू और राजा जी इस पक्ष में थे कि इस शर्त पर सरकार से समझौता किया जाय कि देश में उत्तरदायी राष्ट्रीय सरकार बने । इसका समर्थन कांग्रेस कार्य समिति ने भी किया।

१९४२ ई० के शुरू में श्री और श्रीमती मार्शल च्यांग काई शेक भारत आए और एक साथ ही ब्रिटेन और भारत से शत्रुओं का विरोध करने की मार्मिक अपील की । साम्राज्यवादी शक्ति जापानी विजय से आक्रांत हो गयी । मित्र राष्ट्रों की स्थिति खतरे से पूर्ण थी । सबसे बड़ा प्रश्न था एक होकर युद्ध करने का इसलिए चर्चिल सरकार भी सहयोग की दिशा में अग्रसर हुई ।

स्टैफर्डक्रिप्स के राजनीतिक मिशन पर भारत आने की घोषणा मार्च १९४२ ई० में हुई । चर्चिल ने युद्धोपरान्त भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देने की घोषणा अपने हाउस आफ कामन्स के वक्तव्य में की थी । जापान का कब्जा, अब तक सिंगापुर जावा और बर्मा पर हो गया था ।

क्रिप्स भारत में कई बार आ चुके थे । मिशन का भारत में स्वागत हुआ । २३ मार्च को भारत में आकर वे लम्बे वार्तालापों आदि में समय नष्ट नहीं कर अंतिम राजनीतिक समझौता करना चाहते थे । २५ मार्च को सभी दलों के सदस्यों से मंत्रणा कर २९ मार्च को उन्होंने घोषणा की कि वे भारत में संघीय शासन के हामी हैं जो गृह तथा परराष्ट्र के क्षेत्र में स्वतन्त्र रहकर सम्राट के प्रति भक्ति प्रकट करते हुए अन्य उपनिवेशों की तरह रहे । इसके लिए सम्पूर्ण वैर-विरोध को समाप्त कर एक निर्वाचित संस्था के द्वारा भारत के लिए नयी विधान बनाने की योजना थी । विधान-निर्माण में देशी रियासतों के सम्मिलित होने की भी बात थी । भारत को कामन वेल्थ के साथ अपने सम्बन्धों के निर्णय का भी अधिकार मिला था । युद्धकाल में सुरक्षा का अधिकार सम्राट को दिया गया था । क्रिप्स सुरक्षा का पद , सभी दलों के बहुमत के बावजूद भारत को नहीं सौंपना चाहते थे । प्रान्तों का संघ में सम्मिलित होना उनकी इच्छा पर था ।

डा० पट्टाभि सीतारमैया के अनुसार क्रिप्स का प्रस्ताव अनेक रूपियों के

तोष के लिए अनेक प्रस्तावों से संयुक्त था । मुसलमानों और देशी रियासतों को संतोष देने का प्रयत्न था । कांग्रेस की इस मांग को क्रिप्स ने कोई आश्वासन नहीं दिया कि वह स्वतन्त्रता तथा विधान निर्मात्री परिषद् चाहता है । इसीलिए क्रिप्स मिशन सफल नहीं हुआ । सत्ता हस्तान्तरण की निश्चित तिथि बताने में वे असमर्थ थे । कांग्रेस जल्द से जल्द सत्ता हस्तान्तरण का इच्छुक थी । लोग भी पाकिस्तान जैसी कोई चीज नहीं मिलने से इससे अप्रसन्न थी। अन्त में ११ अप्रैल को घोषणा हुई कि क्रिप्स प्रस्ताव वापस ले लिया गया ।

क्रिप्स ने १९४२ को २७ जुलाई को एक ब्राडकास्ट में कहा कि कांग्रेस की मांग को स्वीकृत करने का अर्थ है -- हिन्दू शासन की स्थापना, मुसलमानों और दलित वर्गों पर । यह भी कहा कि गांधी जी चाहते हैं कि अंग्रेज भारत को अशान्त स्थिति में ही छोड़कर चले जायं । स्वतन्त्रता के लिए अधिकाधिक दबाव देने के धमकी की बात भी कही । प्रतिक्रिया स्वरूप ८ अगस्त को कांग्रेस का `भारत छोड़ो` प्रस्ताव आया । अंग्रेजों से साम्राज्य छोड़ने और युद्ध जीतने की मांग कांग्रेस ने की । टोरी सरकार इस प्रस्ताव से सहमत नहीं थी । परिणामस्वरूप राष्ट्रीय मांग की पूर्ति के लिए कांग्रेस सम्पूर्ण अहिंसात्मक कार्यों के द्वारा अपने शक्ति बल का परिचय देने के लिए बाध्य थी । गांधीवाद के इस रुख को अंग्रेजी सरकार ने पूर्णत: नहीं समझा । भारत की स्वतन्त्रता को उसने नहीं स्वीकारा । इस समय कांग्रेस भी `करो या मरो` का सिद्धान्त अपनाये थी । उसे विश्वास नहीं था कि युद्ध साम्राज्यवादी शोषण की समाप्ति के लिए हो रहा है । अत: प्रत्येक परिस्थिति में वह विरोध के लिए तत्पर थी ।

सरकारी कार्य भी जारी था । उसने बम्बई में ९ अगस्त को सभी नेताओं को कैद कर लिया । इस अचानक की कैद से लोग क्रुद्ध होकर बौखला उठे । आन्दोलन हिंसात्मक हो गया । कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों के अतिरिक्त सभी कांग्रेसी इस आन्दोलन में सम्मिलित हो गए । इस आन्दोलन में सरकारी विज्ञप्ति के अनुसार २५० स्टेशन,५०० डाकघर और १५० थाने नष्ट किए गए । रेलों का आना जाना बिहार और पूर्वी यू०पी० में कई सप्ताह बन्द रहा । टाटा आयरन एण्ड स्टील वर्क्स के १० हजार मजदूरों ने इस मांग की पूर्ति के लिए हड़ताल किया कि व्यवस्था राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के लिए प्रयत्न करने की प्रतिज्ञा करे । कई स्थानों में मजदूरों ने हड़ताल किया ।

राष्ट्रीय सरकार की स्थापना मिदनापुर और सतारा जिले में हुई। समाजवादी दल ने गुप्तरूप से विद्रोहात्मक कार्य, जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में आरम्भ किया।

नौकरशाही ने व्यापारियों की सहायता से चीजों का कृत्रिम अभाव उत्पन्न किया। व्यापारियों के लोभ ने उन्हें सुनहरा अवसर दिया। १९४३-४४ ई० में बंगाल के भयानक अकाल में १५ से २० लाख तक व्यक्ति मरे।

धुरी राष्ट्रों से हारने के कारण ब्रिटिश सरकार तिलमिला उठी और कांग्रेस पर नाजियों से गठबन्धन का आरोप लगाया। अंग्रेजों और अमेरिकियों की दृष्टि में भारतीय राष्ट्रीयता को हेय और निकृष्ट सिद्ध करने के लिए उसने यह गलत प्रचार किया। नाजियों से महात्मा गांधी कभी भी प्रभावित नहीं हुए। युद्ध आरम्भ होने से पहले हिटलर के नाम एक पत्र में उन्होंने कहा था कि युद्ध शुरू होना हिटलर की सबसे बड़ी भूल होगी। जापान का युद्ध में आना भी उनकी दृष्टि में अक्षम्य गलती थी। जापानी सेना से सामना करने के लिए अमेरिका और इंग्लैण्ड से फौजी सहायता का भारत में आना वे पसन्द नहीं करते थे पर भारत में अंग्रेज रहें, वे यह भी नहीं चाहते थे क्योंकि उनकी उपस्थिति से जापान भारत पर आक्रमण करने को उत्साहित हो रहा था।

धुरी राष्ट्रों की सहायता भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं को पसन्द नहीं थी, क्योंकि इसका अर्थ था नये साम्राज्यवाद के चंगुल में फंसना।

जापान १९४१ के दिसम्बर में विश्वयुद्ध में सम्मिलित हुआ। उस समय मलाया में साठ हजार भारतीय सेना अमरीकी, आस्ट्रेलियन और अंग्रेजी टुकड़ियों के अन्तर्गत था। भारतीय सेना मन से जापानियों का विरोध नहीं कर रही थी, क्योंकि वेतन और सुविधाओं में विभेद था। यही कारण है कि सुदूर पूर्व में जापान इतनी तीव्रता से प्रगति कर सका।

इन्हीं दिनों प्रसिद्ध और पुराने क्रान्तिकारी रास बिहारी बोस जापान में देश-निर्वासितों सी सजा भोग रहे थे। उन्होंने जापानी अधिकारियों के समक्ष एक प्रस्ताव रखा, जिसमें भारतीय - युद्ध-बंदियों की एक देशभक्त सेना बनाने का प्रस्ताव था। जापानियों ने इस प्रस्ताव को स्वीकृति दी और सितम्बर १९४२ में भारतीय राष्ट्रीय सेना का गठन हुआ। इस सेना में जावा, मलाया, बर्मा आदि में रहने वाले

अनेक नागरिक मर्ता हुए ।

जनवरी १६४१ ई० में सुभाषचन्द्र बोस जेल से भागे और अफगानिस्तान होते हुए जर्मनी पहुंचे । फिर जापान गए और जुलाई १६४३ में भारतीय राष्ट्रीय सेना में सम्मिलित हो गए । बोस के निर्देशन में यह सेना उच्चकोटि की चतुर सेना बनी । उन्होंने कहा कि हर देश का इतिहास यही घोतित करता है कि विदेशी सहायता के बिना किसी देश की जनता स्वराज्य नहीं पाती । अत: हमें भी ब्रिटिश साम्राज्य के शत्रुओं की सहायता पाने में संकोच की आवश्यकता नहीं ।

उन्होंने कहा कि वे आरामकुर्सी वाले नेता नहीं हैं जो संघर्ष से भागकर समझौता करते हैं । वे आत्म सम्मान, प्रतिष्ठा या देश के स्वार्थ के इच्छुक थे । अत: उन्होंने प्राणों की परवाह न कर राष्ट्र के लिए यह किया । उनके निर्देशन में भारतीय राष्ट्रीय ~~हक~~ राष्ट्रीय सेना १६४३ तक लड़ती रही ।

भारत में व्याप्त, राजनीतिक, गतिरोध में कमी नहीं हुई , यद्यपि महात्मा गांधी १६४४ ई० के मध्य में कैद से मुक्त कर दिए गए थे । अन्य कांग्रेसी नेता भी जून १६४५ ई० में रिहा हो गए थे । जवाहरलाल नेहरू ने अदम्य उत्साह और सक्रियता के लिए भारतीय जनता की प्रशंसा की । सरदार पटेल भारत छोड़ो के नारे से आगे जाकर 'एशिया छोड़ो' तक पहुंचे । अराष्ट्रीय तथा आन्दोलन विरोधी कामों के लिए साम्यवादी निन्दित हुए ।

जून १६४५ ई० में युद्ध खत्म हुआ और भारतीय राष्ट्रीय सेना के कैदियों को भारत में लाया गया । कांग्रेस ने उनके छुटकारे के लिए आन्दोलन आरम्भ किया । इन कैदियों की सुरक्षा के लिए जवाहरलाल भी ~~क~~ तत्पर हुए । इन बन्दियों का मुकदमा दिल्ली के लाल किले में देखा जा रहा था । वह किला राष्ट्रीय जागरूकता का प्रतीक बन गया । १६४५ में सुभाष बोस की मृत्यु विमान- दुर्घटना में होने की खबर से सारे देश में शोक की लहर फैल गई । सुभाषचन्द्र बोस विद्रोह में सफल नहीं हो सके किन्तु इन्होंने युद्धोत्तर काल में राष्ट्रीय चेतना में अपूर्व शक्ति का संचार किया जिससे भारतीय स्वतन्त्रता का सपना सत्य के बहुत निकट आ गया ।[1]

१- लीडरशिप एण्ड पोलिटिकल इन्स्टिट्यूशन्स आफ इण्डिया--पार्क और टिंकर,पृ०३७३ १६६० ई०

युद्ध समाप्ति के बाद ब्रिटेन में समाजवादी प्रभाव अधिक और टोरी दल का प्रभाव कम होने लगा । अत: मजदूर दल लोकप्रिय होता गया । कारण, उसने स्वतंत्रता और बन्धुत्व के आधार पर साम्राज्य के गठन की योजना प्रस्तुत की । उसकी बढ़ती शक्ति से टोरी दल घबरा गया था । ब्रिटिश मतदाताओं की दृष्टि में भारतीय नेताओं को हेय सिद्ध करने की चेष्टा में थे, क्योंकि इससे भारत से संबंधित उसके कार्यों को मान्यता मिल जाती । इसलिए वह भारत की उलझी परिस्थितियों को सुलझाने के लिए नये प्रयासों की ओर सचेष्ट हुए । १४ जून १९४५ ई० को लार्ड वावेल ने एक नये प्रस्ताव की घोषणा की और २५ जून को शिमला में एक कान्फ्रेन्स का आयोजन किया, जिसमें कांग्रेस मंत्रिमंडल के भूतपूर्व प्रधान मंत्रि , नेताओं , मुस्लिम लीग, दलित जाति और सिखों के नेताओं को निमंत्रित किया गया ।

मुस्लिम लीग ने इस समय पुन: अलग पाकिस्तान की मांग की । लेकिन शिमला कान्फ्रेंस में कोई महत्वपूर्ण बात नहीं हो सकी, क्योंकि जिन्ना अंतरिम सरकार बनाने के पक्ष में तभी थे जब मुस्लिम जनता को आत्मनिर्णय का अधिकार दिया गया । वाइसराय ने कहा कि अंतरिम सरकार में शामिल होने से पाकिस्तान की मांग पर कोई आंच नहीं आती । तब उन्होंने कहा कि मुसलमान सदस्य भी एक तिहाई के बदले हिन्दुओं के बराबर रहेंगे । इसका समाधान होने पर उन्होंने कौंसिल में सभी सदस्यों को मनोनीत करने का प्रस्ताव रखा । पर वाइसराय ने इसे स्वीकृत नहीं किया, क्योंकि कांग्रेस और सिकन्दर हयात खां इसके विरोधी थे । इस प्रकार ब्रिटिश प्रतिक्रियावादियों द्वारा आयोजित चौकड़ी समाप्त हो गई । शिमला कान्फ्रेन्स सफल न हो सकी ।

१९४५ ई० के मध्य में ब्रिटेन में मजदूर दल की स्थापना से भारत-ब्रिटेन सम्बन्ध में अधिक सद्भावना आयी । एटली ने वावेल से परामर्श किया और वहां से लौटकर उन्होंने १९४५-४६ में केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान सभाओं के निर्वाचन की घोषणा की । उन्होंने यह भी बताया कि सम्राट भारत के लिए एक विधान निर्मात्री संस्था निर्वाचन के बाद निर्मित करने के इच्छुक हैं ।

सभी ने इस प्रस्ताव का स्वागत किया तथा भारतीय जनता को मजदूर दलीय सरकार की सद्भावनाओं पर विश्वास बढ़ने लगा । ब्रिटिश सरकार भारत को स्वतन्त्रता देने का निश्चय कर चुकी है, यह घोषणा पैथिक लारेन्स ने की । यह भी कहा कि निर्वाचनोपरान्त वाइसराय संयुक्त सरकार बनायेंगे । इस चुनाव में कांग्रेस ने

सिंध, बंगाल और पंजाब के अतिरिक्त सभी जगह बहुमत प्राप्त किया और उसकी सरकारें बनीं ।

१९४६ ई० का वर्ष राजनीतिक घटनाओं से परिपूर्ण रहा । विधान-निर्माण के आधार के लिए प्रबन्ध करने और अंतरिम सरकार बनाने के लिए २३ मार्च,१९४६ ई० को कैबिनेट डेलीगेशन भारत आया । लीग के द्वारा पाकिस्तान की मांग करने और उसे प्राप्त करने के लिए प्रत्यक्ष कार्यवाई करने के निश्चय के कारण मिशन का काम बहुत कठिन हो गया । लीग ने मुसलमानों के लिए पृथक प्रभुसत्ता राज्य और विधान निर्मातृ परिषद् की मांग की । इस स्थिति में ही वह अन्तरिम सरकार में सम्मिलित होने को तैयार थी ।

१ अप्रैल से १७ अप्रैल तक विभिन्न दल के नेताओं से कैबिनेट मिशन ने परामर्श कर ईमानदारी से दोनों सम्प्रदायों में सुलह कराने का प्रयत्न किया । लीग बटवारे पर कटिबद्ध थी । मिशन इस प्रस्ताव को उचित नहीं समझता था । उसके अनुसार यह अल्पसंख्यकों की समस्या का समाधान नहीं था । इससे देश में अशान्ति बढ़ने की सम्भावना थी ।

अंततः मिशन द्वारा संयुक्त संघ सरकार के अन्तर्गत हिन्दू इकाई और मुस्लिम इकाई राज्यों का प्रस्ताव उपस्थित किया गया । साम्प्रदायिक समस्याओं के समाधान की व्यवस्था भी उसमें की गई । दोनों जातियों में एकता लाने की कोशिश उसके द्वारा हुई ।

लीग ने पाकिस्तान लेने के वैधानिक तरीके को त्याग कर प्रत्यक्ष कार्य का प्रारम्भ २९ जुलाई १९४६ को प्रारम्भ किया । यह प्रत्यक्ष कार्य का आरम्भ कलकत्ते में हुआ और नोआखाली में फैल गया । बहुत बड़ी संख्या में हिन्दू-मुसलमान मारे गये ।

मंत्रिमण्डल निर्माण के लिए कांग्रेस प्रस्तुत की गई और ४ अगस्त को मंत्रियों के नामों की घोषणा लार्ड वावेल ने की । २ सितम्बर १९४६ को कांग्रेस के ७ सदस्य अंतरिम सरकार में सम्मिलित हुए । लीग भी अक्तूबर के अंतिम सप्ताह में उसमें सम्मिलित हुई । लार्ड वावेल का रवैया ठीक नहीं था । इसलिए अंतरिम सरकार भिन्नता की ओर अग्रसर होती गई ।

मुस्लिम लीग और कांग्रेस दोनों को एटली ने दिसम्बर, १९४६ ई० में लन्दन में निमंत्रित किया। तीन दिनों के विचार-विमर्श के बावजूद वे किसी निष्कर्ष पर नहीं आ सके। लन्दन कान्फ्रेन्स में भारतीय राष्ट्रीयता ने भारतीय एकता की अंतिम लड़ाई लड़ी, पर हार गई।"

१९४६ की दिसम्बर को ब्रिटिश सरकार ने घोषणा की कि वह अल्प-संख्यकों पर कोई विधान लादना नहीं चाहती। इससे विधान निर्मातृ सभा की कार्यवाही में गतिरोध पैदा हो गया।

कलकत्ते में दंगा आरम्भ हो गया। प्रतिक्रियास्वरूप अन्य भागों में भी साम्प्रदायिक दंगा फूटा। लीग की कार्यवाई से पंजाब में सरकार का कार्य मार्च-अप्रैल १९४७ में बन्द हो गया। साम्प्रदायिक दंगे से पूरा प्रान्त छिन्न-भिन्न हो गया।

ब्रिटिश सरकार ने २० फरवरी, १९४७ ई० को घोषणा की कि वह जून, १९४८ के पहले ही भारत को सत्ता हस्तांतरित करने को इच्छुक है। सरकार द्वारा लिए इस निर्णय पर गांधी जी खुश थे।

२३ मार्च, १९४७ को लार्ड माउण्ट बैटेन भारत पधारे। पाकिस्तान की मांग को कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया। लार्ड माउण्ट बैटेन ने १५ अगस्त १९४७ के पहले ही भारतीयों को सत्ता सौंपने और भारत के हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में विभाजित करने की घोषणा की। बंगाल और पंजाब के मुस्लिम बहुल क्षेत्र को पाकिस्तान को देने के लिए सीमा-कमीशन की नियुक्ति हुई।

विभाजन महात्मा गांधी को पसन्द नहीं था पर नेहरू और पटेल माउण्ट बैटेन के प्रस्ताव से स्वीकृति प्रकट कर चुके थे। १४ अगस्त को भारत विभाजित हो गया और १५ अगस्त, १९४७ ई० को दो भागों में बंट गया। और वह औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त कर ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के अन्तर्गत एक देश बना, क्योंकि प्रभुसत्तासम्पन्न राज्य का गौरव इसे नहीं प्राप्त हो सका था। उस समय भारत पूर्ण अधिकार प्राप्त उपनिवेश ही रहा। भारत की समस्याएं अब भिन्न हो गयीं। अब उसकी समस्या विदेशी शासक से संघर्ष की नहीं, बल्कि अपनी आर्थिक दशा सुधारने और विकास से सम्बद्ध थी।

भारत के समक्ष विदेशियों के भारत छोड़ने और स्वतन्त्रता प्राप्ति के कारण अनेक विषम परिस्थितियां उपस्थित थीं। देशी रियासतों की समस्या प्रमुख थी। ये रियासतें स्वतन्त्र थीं और इच्छानुसार हिन्दुस्तान या पाकिस्तान में मिल सकती थीं। कई देशी राजा स्वतन्त्र राज्य बनाकर दिल्ली पर अधिकार करने की सोचते

थे । इन सब कारणों से भारत के सामने यह महत्वपूर्ण समस्या थी कि इन देशी रियासतों का भारत में विलयन कर एक सुसंगठित राज्य की स्थापना की जाय । अंततः सरदार पटेल के प्रयत्न से सभी देशी रियासतों का विलयन भारत में हुआ ।

कश्मीर का विलयन अभी नहीं हुआ था । पाकिस्तान उसे हस्तगत करना चाहता था । कश्मीर भारत या पाकिस्तान में विलयन के पहले सोचना समझना चाहता था । पर उत्तरी-पश्चिमी सीमा के कबाइलियों ने पाकिस्तानी सैनिक अफसरों के नेतृत्व में कश्मीर पर हमला कर दिया । अक्टूबर, १९४७ में स्थिति अत्यधिक गम्भीर हो गई, क्योंकि लूट पाट करते हुए आक्रमणकारी अब कश्मीर की राजधानी श्रीनगर तक पहुंचने ही वाले थे । इसी समय कश्मीरमहाराज ने भारत से सैनिक-सहायता मांगी और भारत में कश्मीर के विलयन के पत्र पर हस्ताक्षर किए । तब भारतीय सेना कश्मीर [illegible] पहुंची । कश्मीर के जन-नेताओं ने भी महाराजा के विलयन सम्बन्धी कार्यों को स्वीकृति दी । भारत की इच्छा थी कि कश्मीरी जनता स्वयं बाहरी प्रभावों से मुक्त होकर, यह निर्णय दे कि वह पाकिस्तान के साथ रहना चाहेगा या भारत के साथ । ३१ दिसम्बर को कश्मीर का मामला सुरक्षा परिषद् में भारत ने उपस्थित किया । उसमें पाकिस्तान पर, भारत पर आक्रमण का आरोप लगाया गया था, क्योंकि कश्मीर भारत में कश्मीर विलय हो चुका था और इसलिए वह भारत का एक अंग था । सुलह के लिए कई प्रयत्न हुए और अन्त में जनवरी १९४९ में शान्ति-सीमा रेखा स्थापित हुई । कश्मीर के उस हिस्से को 'आजाद कश्मीर' कहा जाने लगा, जिस पर पाकिस्तान ने अधिकार कर लिया था । अभी तक कश्मीर समस्या का समाधान नहीं हो सका है ।

हैदराबाद और जूनागढ़ रियासतें भी रोचक ढंग से भारत में मिलीं । हैदराबाद निजाम के शासन में था । यह रियासत भारत के मध्य में स्थित था । कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण भी था । स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही एक अल्पसंख्यक राजनीतिक दल ने निजाम को स्वतंत्र राज्य बनाए रखने का लोभ दिखाकर अपने हाथ का खिलौना बना लिया । इस दल के कहे में पड़कर निजाम ने जनता और राष्ट्रीय व्यक्तियों पर अनेक अत्याचार किए, कराए । जनता पहले तो सहन करती रही लेकिन धीरे-धीरे विद्रोह प्रज्वलित होता रहा और हैदराबाद में अशान्ति फैलती गई । सरदार पटेल ने पहले शान्ति के साथ इस समस्या के समाधान का प्रयत्न किया, लेकिन निजाम अपने हठ पर रहे । अंततः सितम्बर १९४८ ई० में भारत ने सेना द्वारा कुछ दिनों में हैदराबाद को अधिकृत कर लिया ।

जूनागढ़ सौराष्ट्र में स्थित है। वहां का शासक नवाब था। उसकी स्थिति इस तरह की थी कि वह भारत के अतिरिक्त और किसी में नहीं मिल सकता था, पर बाहरी दबाव के कारण उसने पाकिस्तान में सम्मिलित होने की घोषणा की। यहां की जनता द्वारा नवाब के इस निरंकुश निर्णय का विरोध हुआ और एक प्रबल आन्दोलन आरम्भ हो गया। परिणामस्वरूप इस आन्दोलन की वजह से नवाब को भागकर पाकिस्तान में शरण लेनी पड़ी। तत्पश्चात् वहां एक काम चलाऊ सरकार बनी। उसने भारत सरकार से जूनागढ़ का शासन अपने हाथ में ले लेने की प्रार्थना की और इस प्रकार जूनागढ़ भारत में सम्मिलित हो गया।

स्वतन्त्र भारत के संविधान-निर्माण की समस्या भी एक महत्वपूर्ण समस्या थी। इस कार्य के लिए १९४६ के दिसम्बर महीने में ही विधान सभा का संगठन हुआ था। इस सभा की प्रारूप समिति ने फरवरी, १९४८ में संविधान का प्रारूप प्रकाशित किया तथा नवम्बर, १९४८ में ही विचार-विमर्श के लिए संविधान-सभा में उपस्थित किया गया। २६ नवम्बर १९४९ को संविधान सभा ने अंतिम रूप से भारत का संविधान स्वीकृत किया और २६ जनवरी १९५० से वह लागु किया गया। इसके अनुसार अब भारत सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य घोषित किया गया और औपनिवेशिक पूर्ण अधिकार प्राप्त राज्य की स्थिति समाप्त हो गई।

भारत अभी तक ब्रिटिश राष्ट्र मण्डल का सदस्य बना रहा, यद्यपि वह सम्पूर्ण प्रभुसत्ता सम्पन्न गणराज्य घोषित हो चुका था। अब राष्ट्रमण्डल के साथ उसके सम्बन्ध के आधार में परिवर्तन की अपेक्षा हुई और २७ अप्रैल, १९४९ को इस सम्बन्ध में एक सरकारी विज्ञप्ति हुई, जिसके अनुसार ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में से ब्रिटिश शब्द हटा दिया गया। १७ मई, १९४९ई० को भारत की संविधान सभा द्वारा भी इस घोषणा को स्वीकृति मिली। इस प्रकार भारत स्वतन्त्र रहकर भी राष्ट्रमण्डल का एक सदस्य बना हुआ है।

स्वतन्त्रता के साथ ही भारत के सम्मुख शरणार्थियों की समस्या भी अत्यन्त महत्वपूर्ण समस्या के रूप में उपस्थित हुई थी। पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान के अंचलों में अपना सब कुछ गंवा कर भारत लौटने वाले लाखों शरणार्थी थे। अब इनके पुनर्वास की भयानक समस्या आ खड़ी हुई। कारण, भारत की आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। किसी प्रकार धीरे-धीरे कई वर्षों में इस समस्या का समाधान भी हुआ।

इन अनेक समस्याओं के समाधान के साथ ही भारत ने अपनी शक्तियों का विकास भी किया और वह एशिया का प्रमुख राष्ट्र बन गया । १६४६ ई० में स्थापित दोनों गणराज्य का भी भारत ने हार्दिक स्वागत किया । विश्व की अन्य समस्याओं में भी भारत ने रुचि रखी और उसकी नीति शान्ति की नीति रही है ।

सामाजिक

राजनीतिक परिस्थितियों की तरह सामाजिक परिस्थितियाँ भी क्रान्ति भावना की उद्भावना में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं । समाज जब पतनोन्मुख होता है, उसके प्राचीन आदर्श जब कुरीतियों की सीमा तक पहुंच जाते हैं,तब समाज के जागरूक व्यक्ति उन आदर्शों को खोखला समझ कर नयी मान्यताओं को स्थापित करना चाहते हैं । इसके लिए उन्हें प्राचीन आदर्शवादियों से संघर्ष करना पड़ता है । संघर्ष से विरोध उत्पन्न होता है । इन विरोधी क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं से साहित्य भी अनुप्राणित होता है । क्रान्ति की भावनायें साहित्य में भी प्रतिबिम्बित हो उठती हैं । इस परिप्रेक्ष्य में आलोच्यकाल की सामाजिक परिस्थितियों का विश्लेषण अनिवार्य हो जाता है ।

पृष्ठाधार

अठारहवीं शताब्दी के भारतीय समाज में मनु द्वारा निर्धारित मार्ग, वर्णाश्रम धर्म, संयुक्त कुटुम्ब प्रथा,छुआछूत,तीर्थ-यात्रा,विधवा-विवाह-निषेध,बाल-विवाह, बहु-विवाह,सती-प्रथा,बालहत्या,पर्दा ,श्राद्ध,स्त्रियों की अशिक्षा आदि का प्रचार था ।[1] समाज में ब्राह्मणों का बोलबाला था । निम्नवर्गीय तथा उच्चवर्गीय सभी व्यक्ति उन पर निर्भर रहते थे । राजनीतिक और आर्थिक अराजकता थी । फलस्वरूप रूढ़ियों का पालन और कट्टरता के साथ होता था समाज में गतिशीलता नहीं थी ।

अठारहवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध का भारतीय समाज प्रदर्शन-प्रिय था । अलंकरण की प्रवृत्ति शरीर से लेकर काव्य और कला तक में थी । साथ ही इस समय 'हिन्दुओं में तीव्र धार्मिक भावना थी और इस सम्बन्ध में वे उदारतापूर्वक धन व्यय करते और दूसरे व्यक्तियों को आश्रय देते थे ।'[2]

१- आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका--लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय,पृ०२८,१९५२ ई०

२- वही, पृ० १०८

समाज में संयुक्त कुटुम्ब प्रथा थी । एक कुटुम्ब में व्यवसाय आदि में अपनी पैतृक परम्परा को ही निबाहा जाता था । परिवार में एक व्यक्ति प्रधान होता था । उसके कथनानुसार ही सारी पारिवारिक व्यवस्था होती थी ।

परिवार में नारी का स्थान मात्र घर और बच्चों की देखभाल करना ही था । मातृत्व उनका परम लक्ष्य था ।

तत्कालीन समाज में वर्ण-व्यवस्था अत्यन्त कठोर थी । ब्राह्मण,क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों के अनेक छोटे-छोटे वर्ग हो गए थे । व्यवसाय के आधार पर इन वर्गों की उत्पत्ति हुई थी और इसे ईश्वरीय विधान माना जाने लगा था । अपना वर्ण छोड़कर कोई दूसरा वर्ण नहीं ग्रहण कर सकता था । अर्थात् जाति-पाँति अपनी चरमावस्था पर थी । इसके कारण अज्ञान,अन्याय,अत्याचार और अपमान को प्रश्रय मिल रहा था । कारण वर्ण-व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण सर्वोपरि थे । वे अपनी सुख-सुविधा के लिए मनमाना विधान रचते थे । शिक्षा का प्रचार इन्हीं तक था । अतः धार्मिक और सामाजिक जीवन की बागडोर इन्हीं के हाथों थी । यहां तक कि शासन के अनेक महत्वपूर्ण पदों पर भी ये अक्सर आसीन थे ।

निम्नवर्ग सदियों से चली आ रही इस परम्परा में बुरी तरह जकड़ चुका था । सामाजिक यातना सहन करना उनका स्वभाव और संस्कार बन गया था । अतः उनमें विद्रोह की भावना पैदा ही नहीं होती थी । सवर्णों का व्यवहार हर तरह से, निम्न वर्णों के साथ,मानवोचित मापदण्डों के विरुद्ध रहता था । फिर भी कोई परिवर्तन नहीं हो पाता था । क्योंकि आलोच्यकालीन हिन्दू समाज अपनी परम्पराओं के पालन में अत्यन्त कट्टर था । मुसलमान और अंग्रेज शासक भी हिन्दुओं को कोई नई सामाजिक व्यवस्था की ओर उन्मुख नहीं कर सके । मृत्यु भय या आर्थिक प्रलोभन ही किन्हीं हिन्दुओं को अपने जन्म धर्म से विमुख कर सकती थी । और समाज-व्यवस्था धार्मिक बन्धनों से जकड़ा था । अतः अपनी जगह पर ज्यों का त्यों था ।

उस समय बाल-विवाह की प्रथा थी । अधिक से अधिक ८-१० वर्ष की होते ही कन्याओं का विवाह हो जाता था । वैसे तो ३-४ वर्ष की अवस्था में यह विवाह होता था । दहेज-प्रथा प्रचलित नहीं थी । पर धूम-धाम खूब होता था । कभी कभी वृद्ध-विवाह भी होता था । समाज विधवा-विवाह की आज्ञा नहीं देता था । विधवा को कठोर नियंत्रित जीवन व्यतीत करना पड़ता था ।

आलोच्यकालीन हिन्दू समाज में सती-प्रथा भी थी । कहीं-कहीं विधवा को सती होने के लिए लोग मजबूर करते थे पर प्रत्येक विधवा के लिए यह आवश्यक नहीं था । हां, सती हो जाना गौरवपूर्ण अवश्य माना जाता था ।

इतिहास-लेखकों का कहना है कि अकबर और अन्य मुसलमानों ने इसे बन्द करने की कोशिश की थी । इस प्रथा के विरुद्ध मराठे भी थे । अंग्रेज शासक भी इस प्रथा को बन्द करना चाहते थे । लेकिन उन्होंने अधिक हस्तक्षेप इसलिए नहीं किया कि भारतीय जनता उसे अपने सामाजिक और धार्मिक जीवन में हस्तक्षेप न समझे । हेस्टिंग्ज़ और वेलेज़ली के प्रयास निष्फल हुए थे ।

धीरे-धीरे उन्नीसवीं शती के द्वितीय दशाब्द तक पाश्चात्य विचारों से प्रभावित होने के कारण बंगाल में ब्राह्मणों का स्थान पहले जैसा नहीं रहा । राजाराम-मोहनराय के विचारों से अनुप्राणित होकर लोगों ने सती प्रथा के विरुद्ध आवाज उठाई। 'अन्त में जनमत से सहायता प्राप्त कर और नवीन्द्र काउन्स बनारस के पंडितों से परामर्श कर ४ दिसम्बर १८२९ के बंगाल रेग्यूलेशन १७ के द्वारा सती-प्रथा बिलकुल बन्द कर दी गई । १८३० में यह कानून मद्रास और बम्बई में भी लागू कर दिया गया । + + + १५ मई १८३३ को अवध के नवाब ने भी अपने राज्य में यह प्रथा बन्द कर दी ।'[१]

तत्कालीन राजपूतों में बाल-हत्या की प्रथा थी । लड़कियों को जन्म लेते ही उसे मुंह रखकर गला घोंटकर या दूध के घड़े में डुबाकर मार डालते थे । अपने इस नृशंस कार्य को वे धर्म का आवरण दिया करते थे । वस्तुत: इसके मूल में राजपूती आन थी । तत्कालीन मुसलमान शासकों से अपनी बहू-बेटी की रक्षा करने के लिए, इस प्रथा का पालन करते थे और कुल-गर्व की रक्षा करते थे ।

धीरे धीरे यह प्रथा मिट रही थी । १९ वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध तक बहुत कम हो गई थी । अंग्रेज शासकों ने विविध उपायों से इसे बन्द करने का सफल प्रयत्न किया ।

हिन्दू समाज में खान पान सम्बन्धी नियम भी कठोरता से पाले जाते थे । अन्य जाति द्वारा खाना छू जाने भर से व्यक्ति जाति-बहिष्कृत माना जाता था ।

पर्दा-प्रथा भयंकर रूप से था । स्त्रियां अन्त:पुर की सम्पत्ति मात्र थी ।

१- आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका- डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ०११६-१७, सन् १९५२ ई० ।

समुद्र यात्रा निषिद्ध था । समुद्र-यात्रा करना धर्म के विरुद्ध था ।

समाज में दास-प्रथा भी १८४३ के पूर्व तक थी । दासों की खरीद-बिक्री होती थी । कभी-कभी कर्ज न चुका सकने के कारण लोग दास हो जाते थे । १८४३ के ऐक्ट ५ द्वारा अंग्रेजी सरकार ने दास-प्रथा का अन्त किया ।

इस प्रकार "अंग्रेज़ी शासन स्थापित होने के समय और उसके अन्तर्गत विवेच्य हिन्दी प्रदेश का सामाजिक जीवन अनेक कट्टर गतिहीन रूढ़िबद्ध, असामाजिक और अनुदार अंध-विश्वासों कुरीतियों और कुप्रथाओं से भरा हुआ था । समाज उस तालाब की भांति था जिसके जल की उन्मुक्त गति अवरुद्ध हो गई थी जल-कणे और फलतः जिसका पानी सड़कर नाना प्रकार के विकार उत्पन्न कर रहा था ।"[1]

स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज जड़ था । कम्पनी सरकार ने ईसाई पादरियों के कहने के बावजूद भारत की सामाजिक व्यवस्था को विद्रोह के भय से,हाथ नहीं लगाया । समाज में घुन लगा था । किसी नवीन रचनात्मक कार्य का अभाव था । परम्परा के खूंटे में बंधकर गत्यात्मकता नष्ट हो चुकी थी ।

पर धीरे-धीरे हिन्दी भाषी अंग्रेजों के माध्यम द्वारा पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान के सम्पर्क में आने लगे और परम्परा के विरुद्ध एक नये भविष्य की सूचना देने लगे ।

युग-प्रवाह

भारतेन्दु युग

१९ वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध की अपेक्षा इस काल की सामाजिक परिस्थितियों में तीव्र परिवर्तन हुआ । वैसे पूर्वार्द्ध में भी कई-कई धार्मिक और सांस्कृतिक आन्दोलन हुए थे, जिनके फलस्वरूप भारतीय समाज में सुधार एवं क्रांति की भावना विकसित हुई थी । १८२८ ई० में राजाराम मोहन राय ने ब्रह्म समाज की स्थापना की । यद्यपि उसकी स्थापना में उनका मूल उद्देश्य हिन्दुओं को ईसाई बनने से बचाना था । पर धर्म के

१- आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका- डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ०१२५, सन् १९५२ ई०

अतिरिक्त समाज पर भी इसका व्यापक प्रभाव पड़ा था । सामाजिक कार्यों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य सती प्रथा का उन्मूलन था । पुरुषों के बहु-विवाह का विरोध, स्त्रियों को जायदाद में हिस्सा मिलने, विधवा विवाह,छुआछूत,स्त्री-शिक्षा का समर्थन भी राजा राम मोहनराय ने किया । शिक्षा के लिए ब्रह्म समाज की ओर से विद्यालय भी खोले गए । इन सब कार्यों का सूत्रपात १९ वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध में ही आरम्भ हो गया था । जिसका प्रभाव हिन्दू समाज पर पड़ रहा था । पर यह सब शिक्षित वर्ग विशेष तक ही सीमित था ।

१९ वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध में सामाजिक परिस्थिति तेजी से बदलने लगी । ब्रह्म समाज का कार्य भी व्यापक हुआ और सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना घटी । १८७५ ई० में दयानन्द सरस्वती द्वारा आर्य समाज की स्थापना । राजाराम मोहनराय और दयानन्द दोनों ने सुधारों की रूपरेखा एक सी ही थी । विस्तारों में अवश्य विभिन्नता थी ।

उस समय समाज में जातिगत वैमनस्य तथा अछूतों की समस्या बड़ी दयनीय थी । राजाराम मोहनराय ने जाति व्यवस्था को सुलझाने में पर उतना ध्यान नहीं दिया था, उनका ध्यान कुलीन ब्राह्मणों के बहु विवाह की प्रथा पर था । पर आर्य समाज वैदिक धर्म पर आधारित था । अतः दयानन्द उपजातियों को हटाकर चारों वर्णों को कर्म के आधार पर पृथक् करना चाहते थे, जन्म के आधार पर नहीं ।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, स्त्रियों की दशा भी अत्यन्त दयनीय थी । आर्य समाज द्वारा स्त्रियों के सुधार की दशा में अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य हुए । बाल-विवाह , बहु विवाह,दहेज प्रथा आदि का विरोध किया और भारतीय समाज को नवीन दृष्टि प्रदान की । समाज का ध्यान नये मूल्यों की ओर आकृष्ट किया । स्वामी दयानन्द की लड़ाई सभी सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध थी ।

सामाजिक सुधार की दिशा में किया गया श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का कार्य भी महत्वपूर्ण है । इन्होंने भारतीय परम्परावादी समाज में चेतना की नयी किरणें भरने के लिए कई-कई संस्थाओं की स्थापना के द्वारा अन्तर्जातीय विवाह,मादक द्रव्य-निषेध,रात्रि पाठशालाओं आदि का प्रचार किया । १८७२ ई० में स्पेशल मैरिज एक्ट पारित हुआ, जिससे अन्तर्जातीय विवाह का विधान बना । और जब १८८५ ई० में कांग्रेस की स्थापना हुई तब भी सामाजिक परिवर्तन की प्रेरणा मिली और सामाजिक रूढ़ियों के प्रति क्रान्ति की भावना अधिकाधिक प्रश्रय पाती गई ।

इधर मुसलमानों में भी सैयद अहमद ने सुधार का बीड़ा उठाया सन् १८८५ में `अंजुमन ए हिमायत ए इस्लाम` की लाहौर में स्थापना हुई जिसका उद्देश्य इस्लाम के विरुद्ध आक्षेपों का उत्तर देना और बालक बालिकाओं के लिए उचित शिक्षा का प्रबंध था।[1] १८६४ में नदवतुल समाज की स्थापना द्वारा भी समाज सुधार की ओर ध्यान दिया गया। इसी समय के आस पास मद्रास में `वेद समाज` बम्बई में प्रार्थना समाज और पंजाब में `देव समाज` की स्थापना हुई। १८७५ में थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना हुई। सभी संस्थाओं का उद्देश्य भारतीय समाज में नवीन क्रान्तिकारी परिवर्तन करना था। इनका माध्यम अपनी प्राचीन संस्कृति का आधार लेना भले ही हो।

रवीन्द्र सहाय वर्मा ने इन सुधारों के प्रेरणा-स्रोत की ओर संकेत करते हुए डा० रवीन्द्रसहाय वर्मा ने लिखा है कि ` इन सब सामाजिक आन्दोलनों की प्रेरणा पश्चिम से ही आई। पर साथ में यह कहना ठीक है कि इन आन्दोलनों की प्रगति आंग्ल प्रभाव के प्रसार के साथ साथ ही हुई।[2] इनके प्रेरणा स्रोत की सत्यता को छोड़, इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि आंग्ल प्रभाव ने भारतीय समाज में एक नयी नूतन सामाजिक चेतना का विकास किया, जिससे रूढ़िग्रस्त परम्पराओं का त्यागना आवश्यक सा लगने लगा। प्राचीन मान्यताओं के प्रति अनास्था के रूप में इस स्पष्ट प्रभाव प्रकट हुआ। क्रमश: रूढ़ियां टूटने लगीं और नवीन मान्यताएं स्वीकृत होती गयीं। संकीर्णता के विरुद्ध आवाजें उठने लगीं और समुद्र यात्रा के निषेध का भी विरोध हुआ। पाश्चात्य प्रभाव से प्रेरित होकर भारतीय समाज ने विवेक के माध्यम से परम्पराओं का विश्लेषण किया और जो मान्यताएं सारहीन प्रतीत हुईं, उनका तीव्र खण्डन किया जाने लगा।

सामाजिक सुधार के लिए सभी नवीन मान्यताओं का समर्थन रूढ़िग्रस्त समाज से ने नहीं किया। नवीन सभ्यता से प्रभावित व्यक्तियों ने या तो इन सुधारों को यथावत स्वीकार की या भारतीय समाज के पुनर्गठन की आवश्यकता से सहमति प्रकट की।

१- आधुनिक काव्य-धारा का सांस्कृतिक स्रोत- केसरी नारायण शुक्ल, पृ०४२, प्रथम संस्करण
२- हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव - डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा, पृ०४२, सं०२००१ वि०

पर हिन्दू समाज का एक पुरातन पंथी वर्ग अपनी कट्टरता नहीं छोड़सका और अंततक वह नयी मान्यताओं का विरोध करता रहा ।

द्विवेदी युग

आलोच्यकाल के सामाजिक क्षेत्र में युगान्तरकारी क्रांति-भावना जाग्रत हुई । ब्रह्म समाज और आर्य समाज ने १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सामाजिक खोखलेपन को दूर करने, उसके पुनरुत्थान करने की जो भावना जाग्रत की थी, वह इस काल में और तीव्र हुई । कारण, इस समय तक सामाजिक मस्तिष्क को अपनी रुग्णता का भान हो गया था और उससे छूटने की इच्छा उसमें जाग्रत हो गई थी । पाश्चात्य शिक्षा का अधिक प्रचार हो चुका था और उससे भारतवासियों को अपनी सामाजिक जड़ता का बोध हुआ था । अतः इस दिशा में वे परिवर्तन के लिए अग्रसर हो चुके थे । मात्र सुधार की पुकारों तक ही भारतीय जनता अग्रसर नहीं हुई थी बल्कि इस दिशा में उसने क्रान्तिकारी व कदम भी बढ़ाए थे । भारतेन्दु युग के कवियों की रचनाओं से भी उन्हें अद्भुत प्रेरणा मिली थी ।

नवीन सामाजिक मूल्यों को प्रतिष्ठित करने वाली नवीन क्रान्तिकारी चेतना पुनरुत्थान और अभ्युत्थान की थी । परिणामस्वरूप वे मान्यताएं खण्ड-खण्ड होकर बिखरने लगीं जो सामाजिक जीवन को जड़ बनाती थीं । विधवा-विवाह, अछूतोद्धार आदि की ओर आर्य समाज ने भारतीय जनता को प्रेरित किया । अतः इनसे सम्बन्धित प्रतिबन्ध छिन्न होने लगे और सामाजिक विद्रोह की प्रवृत्ति तीव्रतर होती गई ।

अनेक दुर्गुणों जैसे आलस्य, फूट, व्यभिचार, दंभ, विलास, दुराचार आदि को सामाजिक जीवन की जर्जरता मानकर, लोग इन्हें त्यागने की ओर प्रवृत्त होने लगे । कर्मण्यता की अधिकाधिक आवश्यकता को भारत ने महसूस किया । अतः वह कर्मण्यता जो राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त थी, सामाजिक दिशा में भी फैली । जात-पात के बन्धन ढीले पड़ने लगे और हरिजनों को भी समाज में उचित स्थान देने की ओर लोगों का ध्यान गया । फूट का भी कुप्रभाव लोगों ने देखा और इसे दूर करने की चेष्टा भी प्रारम्भ हुई ।

इस युग की सामाजिक भावना के अभ्युत्थान की महान क्रान्तिकारी चेतना नारी जागरण में द्रष्टव्य है । युगों से दलित भारतीय अबलाएं भी सजग हो उठीं और उनके संगठन बने । नारी का क्षेत्र राजनीति शिक्षा आदि भी हुआ । समानता की भावना भी जन्मी और विकसी । पर इस क्षेत्र में पाश्चात्य प्रवृत्तियों को पूर्णत: नहीं अपनाया गया । परतंत्रता के बन्धनों को काटने की आकांक्षिणी नारियां क्रांति कुमारियां बनीं । स्वदेशी आन्दोलन और सत्याग्रह आन्दोलन सदृश कामों में उन्होंने पुरुषों के साथ मिलकर भाग लिया । इस प्रकार अपने सामाजिक अधिकारों को समझने और अपनाने की आकांक्षा से प्रेरित नारी-जीवन में अप्रतिम क्रांतिकारी परिवर्तन और क्रियाशीलता दृष्टिगत होती है ।

संकीर्ण भावना का ह्रास भी इस काल की महत्वपूर्ण सामाजिक क्रांति है । इसमें समुद्र-यात्रा का अवरोधन हटना एक ऐसी ही क्रान्ति है । विदेशों में शिक्षा प्राप्त करने का विरोध प्रारम्भ से ही उच्च वर्णों द्वारा होता रहा था, लेकिन आर्य-समाज आदि सुधार संस्थाओं के प्रयत्न से यह बन्धन क्षीण होता गया ।

इस युग में जनवादी चेतना का प्रभाव विशेषरूप से देखा जा सकता है । बुद्धिवाद भी इससे संयुक्त है । इस चेतना द्वारा देश की सामाजिक दिशा में शंकित मूल्यों को त्यागने और समानता स्थापित करने की प्रेरणा मिली । समानता की भावना के फलस्वरूप ही नारी स्वतन्त्रता, अछूतोद्धार आदि आन्दोलन तीव्रतर होते गए ।

देशोत्थान के लिए सामाजिक क्रान्ति की आवश्यकता के प्रति सचेत होने के कारण इस युग में अनेक परिवर्तन हुए ।

छायावाद युग

द्विवेदी-युगीन सामाजिक परिस्थितियां अपनी समस्याओं के साथ ही इस युग में विकसित होती रहीं । आर्य समाज के क्रान्तिकारी-सुधार -कार्य इस काल में भी गतिशील रहे । नारी-जागरण, अछूतोद्धार, बाल-विवाह, विधवा-विवाह, वृद्ध-विवाह, बहु विवाह, जाति पांत की कटुता आदि अनेक समस्यायें राजनीतिक समस्या के साथ उभरती रहीं और उनके समाधान का भी अथक प्रयत्न होता रहा ।

इस युग की महत्त्वपूर्ण घटना नारी-जागृति है । यों तो नारी जागरण का आरम्भ द्विवेदी युग में ही हो चुका था पर ऐसी नारियों का अभाव था, जो सार्वजनिक क्षेत्र में काम करें । पर्दा-प्रथा की कट्टरता ने उन्हें इस दिशा में आगे बढ़ने से रोका था । इस काल में इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य हुए । राष्ट्रीय आन्दोलन में स्त्रियों ने भी पुरुषों के साथ हिस्सा लिया । शिक्षा के क्षेत्र में भी नारी-जगत में क्रान्ति हुई और अधिकाधिक संख्या में शिक्षा पाने लगीं । शिक्षित होने के साथ ही उनकी जड़ता, उनका अज्ञान दूर होने लगा और वे समान अधिकार के लिए क्रांतिकारी प्रयत्न करने लगीं । धीरे-धीरे पर्दा-प्रथा भी समाप्त होने लगी ।

नारी जागृति का एक कारण भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की एक मुख्य प्रवृत्ति जनतंत्रात्मकता भी थी । इस प्रवृत्ति ने नारियों की अधिकार-चेतना को भी जाग्रत किया । पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव ने भी उन्हें चेतना दी, प्रेरित किया । इस दिशा में आर्य समाज का कार्य भी प्रशंसनीय रहा ।

जात-पात मिटाने के लिए आर्य समाज अछूतोद्धार के द्वारा एक लम्बी अवधि से संघर्ष कर रहा था , लेकिन इस प्रश्न को उतनी प्राथमिकता नहीं मिल पायी थी । उदारवादी हिन्दुओं द्वारा या तो इस समस्या को समर्थन मिला था या मिटा दिया गया था किन्तु दूसरी गोलमेज परिषद् में जब दलित वर्ग को पृथक निर्वाचन देने का प्रश्न उठा तो हिन्दू चौकन्ने हुए । अल्पमत की रक्षा के नाम पर साम्राज्यवादी, हिन्दू आदि को भी, दो खण्डों में बांटकर, पृथक कर देना चाहते थे । पूना-पैक्ट के द्वारा गांधी जी ने इस समस्या का समाधान किया । उन्होंने हरिजनों को अधिक स्थान देकर, हिन्दू सम्प्रदाय से पृथक होने से बचा लिया । तत्पश्चात् कांग्रेस ने भी अछूतोद्धार आन्दोलन को अपना लिया । मंदिरों के द्वार भी अछूतों के लिए खुले । उन्हें हरिजन संज्ञा से अभिहित कर गौरव दिया गया ।

इस प्रकार इन सामाजिक क्रान्तियों से समाज में अनेक परिवर्तन होते गए । जैसे जैसे जनता सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूक होती गई, प्राचीन सामाजिक मूल्य, मान्यताएं खंडित होती गयीं और नवीन मूल्य स्थापित होते गए । राजनीतिक क्षेत्र की भांति सामाजिक क्षेत्र में भी क्रांतियां हुईं ।

प्रगतिवाद युग

अनेक कारणों से इस युग की सामाजिक परिस्थितियां पूर्व युग की ही रहीं, पर प्रगतिशील तत्वों के संयोग से उनमें तीव्रता आती गई । जनता की सामाजिक चेतना रूढ़ियों, परम्पराओं और अंधविश्वासों से अधिकाधिक दूर हटती गयी, क्योंकि अब वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में सभी सामाजिक मूल्यों, मर्यादाओं का पुनर्मूल्यांकन होने लगा था । बौद्धिकता से प्रेरित होकर अब सभी सामाजिक सम्बन्धों में उपयोगिता की खोज होने लगी ।

आर्य समाज और इस तरह की अन्य संस्थाओं ने जात पात, छुआछूत, बहु विवाह, बाल विवाह, दहेज प्रथा धर्म ढोंग आदि के प्रति अनास्था भाव पहले ही जगा दिया था पर उसके मूल में बौद्धिकता का आधार कम और धार्मिकता का विशेष आग्रह था ।

इस युग में सामाजिक रूढ़ियों को छिन्न करने में राष्ट्रीय आन्दोलन की बढ़ती हुई शक्ति ने महत्वपूर्ण कार्य किया, पर इस दिशा में साम्यवाद का कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा । पुरानी सामाजिक व्यवस्था पर तीव्र प्रहार करते हुए उसने नवीन सामाजिक व्यवस्था की कल्पना की । फलस्वरूप जाति-भेद, छुआछूत और अनेक कुप्रथाओं के बाह्याडम्बर समाप्त होने लगे । सामाजिक स्थितियों में समानता बढ़ने लगी । मानव-मानव को एक समझ कर, सभी को समान सामाजिक अधिकार दिए जाने लगे ।

समाज का एक वर्ग बहुत पिछड़ा था । प्रारम्भ से ही उच्च वर्ग इनका शोषक रहा था । वर्ग-चेतना ने इस दिशा में पिछड़ी जातियों को एक होने की प्रेरणा दी तथा उच्च वर्ग के शोषण वृत्ति के विरुद्ध बोलने का मौका दिया । इस प्रकार समाज के एक वर्ग ने दूसरे के विरुद्ध विद्रोह किया । पर इसका नतीजा यह हुआ कि हिन्दुओं में वैर और द्वेष बढ़ने लगा और आर्थिक विषमता के आधार पर उठने वाली वर्ग-चेतना सामाजिक विषमता के आधार को लेकर फूटी । इससे प्रगतिवादी तत्वों की क्षति हुई ।

नारी-जागरण की गति इस काल में अत्यन्त तीव्र हुई । बहु विवाह, बाल विवाह, वृद्ध विवाह आदि के विरोध में स्वर और लेख हुए । विधवा विवाह को सामाजिक मान्यता दी गयी । पर इस समय दहेज प्रथा बढ़ने लगी और इसके विरोध में भी आवाज उठने लगी । नारी जीवन में समानता का आकलन किया गया और उस

दिशा में नारी-जागृति की चेतना अधिकाधिक बढ़ी ।

जन-चेतना इस युग में बहुत ही विकसित हुई । इसीलिए परम्पराओं और रूढ़ियों के प्रति तीव्र क्रान्ति हुई।

कृषक वर्ग का जागरण भी इस समय की एक महत्वपूर्ण घटना है । १९३६ ई० में अखिल भारतीय किसान सभा स्थापित हुई । अपनी समस्याओं के समाधान हेतु यह संगठन किसानों ने किया । स्वयं अपनी समस्याओं के समाधान के अतिरिक्त किसानों ने राष्ट्रीय आन्दोलन में भी योग दिया ।

इस युग में मजदूरों की चेतना भयानक रूप से बढ़ी । इस चेतना ने आन्दोलन का रूप ले लिया । पूंजीवाद से कई-कई बार उनका संघर्ष हुआ । मजदूरों में एकता आई। अपने हित के लिए वे संगठित हुए और अपने वर्ग की समस्याओं के समाधान के लिए सचेष्ट रहे ।

स्वातंत्र्योत्तर काल देश की सामाजिक परिस्थितियों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए । स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही जन-मानस का जागरण अत्यधिक होने लगा । लोगों ने समझा कि अब आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन का उपयुक्त समय है । पीड़ित वर्ग ने समानता के लिए अनेक आवाजें उठायीं । सरकार भी इस ओर सचेत हुई । सामाजिक रूढ़ियों में परिवर्तन के लिए सरकार ने विधानों का सहारा लेना प्रारम्भ किया । इस सम्बन्ध में प्रथम विधान अस्पृश्यता निवारण के लिए बना । इसके अनुसार अछूतों को सार्वजनिक स्थानों में जाने का वैधानिक अधिकार प्राप्त हुआ । फलस्वरूप उन अनेक मंदिरों में हरिजनों का प्रवेश हुआ, जहां पहले उनको छाया भी निषिद्ध थी । विश्वनाथ मंदिर, वाराणसी, वैद्यनाथ मंदिर वैद्यनाथ धाम आदि में हरिजनों का प्रवेश इसी विधानानुसार हो सका । लेकिन वैधानिक समानता मिल जाने पर भी जन-साधारण में उनके प्रति समानता की वैसी भावना नहीं उत्पन्न हो सकी । विधान-सभाओं, नौकरियों आदि में भी पिछड़ी तथा अन्य जातियों के लिए स्थान सुरक्षित किए गए । हरिजनों में शिक्षा-प्रसार के लिए भी प्रयत्न प्रारम्भ हुआ।

पाश्चात्य समाज व्यवस्था का अंधानुकरण भी इस युग में हुआ और पाश्चात्य समाज-व्यवस्था के प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगे । इससे कई महत्वपूर्ण परिवर्तन होने लगे । समाज में संयुक्त परिवार की प्रथा धीरे-धीरे टूटने लगी । जातीय बन्धन का ह्रास होने लगा । अंतर्जातीय विवाह भी प्रारम्भ हुआ । इससे प्राचीन समाज-व्यवस्था

की रूढ़िवादिता खंडित होने लगी । सरकार ने हिन्दू कोड विधेयक पारित किया । जिसके अनुसार प्रत्येक बालिग स्त्री-पुरुष अपनी इच्छानुसार किसी भी जाति एवं गौत्र के व्यक्ति के साथ विवाह कर सकते हैं । इसी प्रकार निश्चित कारणों के आधार पर तलाक देने का अधिकार भी इस विधान में रक्खा गया । वैसे तलाक कोप्रथा हिन्दू समाज के लिए सर्वथा नवीन नहीं, पर वर्तमान युग में उसे सरकारी अनुमति मिली । और इस प्रकार समाज व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ ।

नवीन विधान के अनुसार प्रत्येक बालिग कोमताधिकार दिया गया । इसमें आर्थिक, लैंगिक, शैक्षणिक या किसी प्रकार के ऊंच-नीच का भेद-भाव नहीं । इस प्रकार इस विधान के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को समानता का अधिकार देकर राजनीति के क्षेत्र में एक कर दिया गया । जनता को अपना शासक स्वयं निर्वाचित करने का गौरव मिला । सामाजिक जीवन में यह बहुत बड़ी क्रान्ति हुई ।

मद्य-निषेध विधान भी बना । मादक द्रव्यों के निषेध के लिए सरकार द्वारा इनकी आपूर्ति पर नियंत्रण रखा गया है ।

इसी प्रकार बाल-अपराध रोकने, पतिता स्त्रियों के उद्धार,भीख मांगने आदि कुरीतियों की ओर भी समाज और जनता का ध्यान आकृष्ट हुआ । और इनके सुधार के लिए अनेक प्रयत्न होने लगे ।

धार्मिक

मानव-जीवन की निष्ठा और आचार-व्यवहार में धर्म का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उसकी विचार-परम्परा के निर्माण में धर्म का विशेष हाथ रहता है और विचार परम्परा के अनुसार आदर्श निर्मित होते हैं। अत: धार्मिक परिस्थितियों की क्रान्ति के आचार मूलक संगठन में महत्वपूर्ण भूमिका है। भारत में यह विशेषत: द्रष्टव्य है, क्योंकि यहां धार्मिकआचार-विचार सामाजिक आचारों-विचारों से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध रहे हैं। उनके बीच विभाजन-रेखा खींचना कठिन है अत: विचारों के निर्माण के कारणों को जानने के संदर्भ में धार्मिक परिस्थितियों का सिंहावलोकन अपेक्षित है।

पृष्ठाधार

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में धर्म अपने पूर्व रूप में चला आ रहा था। कोई नवीन आन्दोलन नहीं हुआ। धर्म के सभी प्रचलित रूपों का जन्म पहले ही हो गया था। हां, इस समय तक यह अपने मूल रूपों से बहुत कुछ सजीवता और सप्राणता त्याग कर विकारग्रस्त हो चुका था। धर्म के अनेक संप्रदाय थे। वैष्णव धर्म के तो अनेक संप्रदाय थे ही, इनके अतिरिक्त शैव धर्म, जैन धर्म आदि भी थे। इनकी भी विभिन्न शाखाएं -उपशाखाएं थीं। विभिन्न सम्प्रदायों में किंचित् प्रतिद्वन्द्विताएं अवश्य रहती थीं, परन्तु उनके अनुगामियों में प्रतिद्वन्द्विता कम होती हो, ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता।

तत्कालीन धार्मिक परिस्थितियों की एक विशेषता यह है कि विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों में विभक्त रहने के बावजूद धार्मिक आस्थाओं में कुछ समानताएं थीं जैसे परब्रह्म में विश्वास, आत्मा की अमरता, पुनर्जन्म लोक-परलोक आदि। फिर भी लोग असंख्य देवी-देवताओं को मानते थे। धार्मिक त्योहारों का भी जीवन में महत्वपूर्ण स्थान था। धार्मिक मेला, उत्सव आदि सामाजिकता के प्रसार में सहयोगी थे।

इन धार्मिक रीति-रिवाजों की संख्या बहुत अधिक थी। जीवन का क्षण-क्षण जैसे धर्म से बंधा रहता था। इसके लिए पग-पग पर ब्राह्मणों की अपेक्षा रहा करती थी। स्वयं जनता शास्त्रों से अनभिज्ञ रहती थी। अत: ब्राह्मण अपनी इच्छानुसार

उन्हें नचाते थे। स्वयं ब्राह्मण भी शास्त्रों का ज्ञान अधूरा और अवैज्ञानिक रखते थे। परिणामस्वरूप धीरे-धीरे जनता में अमानुषिक, अव्यवहारिक धार्मिक परम्पराएं प्रविष्ट होती गयीं। हिन्दू समाज रूढ़ियों में फंसकर रह गया। देश-काल परिस्थितियों के अनुसार उनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

समाज में अनेक अवांछित धर्माचार फैले थे। देवी-भवानी, पशु-पक्षी, बड़-पीपल, आदि-आदि अनेक वस्तुओं की पूजा, भूत-प्रेतों में विश्वास, फकीरों दरवेशों आदि में विश्वास इत्यादि अनेक ऐसे कृत्य थे, जिनके कारण हिन्दू समाज का पतन हो रहा था। "वास्तव में समाज प्रत्येक धार्मिक कृत्य और रीति-रस्म की दैवी उत्पत्ति में विश्वास रखता था।"[1]

साधु-यति क्रूर कर्मों में विश्वास रखते थे। तरह-तरह से शरीर को कष्ट देना स्वर्ग प्राप्ति का उपाय समझा जाता था। जनता ऐसे साधुओं की बातें नत-मस्तक होकर माना करती थी। साधुओं की संख्या बहुत अधिक थी। इनकी बहुत ही गहरी पैठ तत्कालीन सामाजिक यहां तक कि राजनीतिक क्षेत्र में भी थी।

उन्नीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध में पाश्चात्य शिक्षा आदि के प्रभाव से उच्च-वंशीय हिन्दुओं ने धर्म के इस विकृत रूप की आलोचना और निन्दा प्रारम्भ की। नवीन शासक भी उनके उद्देश्य से सहमत थे। बंगाल से होता हुआ यह प्रभाव हिन्दी प्रदेश में भी आया। पर साधारण जन समाज पूर्ववत् ही बना रहा। अब ईसाइयों ने हिन्दू धर्म की कमजोरियों से लाभ उठाना प्रारम्भ किया। इस धर्म की ओर बहुत लोग आकृष्ट हुए। पर ईसाइयों को मनमानी सफलता नहीं मिली, क्योंकि धर्म परिवर्तन करने पर भारतीयों को पैतृक जायदाद से हिस्सा नहीं मिलता था। अतः आर्थिक लाभ की दृष्टि से लोग धर्म परिवर्तन करने में हिचकते थे।

युग-प्रभाव

1- आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका-- डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ०६५, सन् १९५२ ई०

युग-प्रवाह

भारतेन्दु युग

इस युग में भारतवासियों को पाश्चात्य सभ्यता का पूर्ण बोध हो चुका था और इस बोध से उनमें पुनर्जागरण की चेतना भरने लगी थी । धार्मिक स्थिति १८५७ के विद्रोह से भी प्रभावित हुई थी । इस विद्रोह में सामूहिक रूप से पाश्चात्य विचारों के मूलोच्छेद का प्रयत्न दीखता है । वे.जो इस संघर्ष का मूल कारण सांस्कृतिक और धार्मिक मानते हैं, इसमें भारतीयों को सफलता देखते हैं, क्योंकि इस विद्रोह के बाद पाश्चात्य प्रभाव के विरोध की सामूहिक भावना का सूत्रपात हुआ । महारानी विक्टोरिया का घोषणापत्र इसके बाद प्रकाशित हुआ । इसमें भी धार्मिक रूढ़िवादियों को ही अधिक प्रोत्साहन मिला[1] । धार्मिक और सांस्कृतिक चेतना इसके बाद से बलवती हुई, यह निश्चित है । तत्सम्बन्धी कई आन्दोलन हुए और अनेक संस्थाओं की स्थापना हुई । १८७५ ई० में आर्य समाज की स्थापना स्वामी दयानन्द सरस्वती ने की । आर्य समाज ने युगानुकूल धर्म की वैज्ञानिक व्याख्या का प्रयत्न किया । उसने वेदोत्तर-कालीन हिन्दू धर्म के पौराणिक रूप को त्याज्य बताया । पर वेदों में धर्म तथा विविध विज्ञानों के तत्वों का समावेश प्रमाणित किया । इस संस्था का रूप जनव्यापी था । इसमें शिक्षित-अशिक्षित जात-पांत का भेद-भाव नहीं था । इसने ईसाई धर्म और मुस्लिम धर्म तथा संस्कृति दोनों का विरोध किया ।

हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्ध १८५७ के बाद एक नवीन रूप धारण कर चुका था । अंग्रेजी राज्य में हिन्दू धार्मिक रूप में जितने स्वतंत्र थे, मुसलमानी राज्य में उतने नहीं । परिणामस्वरूप इस्लाम की प्रगतिशील गति को अवरुद्ध करने में हिन्दू धर्म सफल हुआ । हिन्दू संस्कृति पश्चिमी प्रभाव को भी नहीं स्वीकार सकती थी । इस समय ईसाई मिशनरी अपने धर्म प्रचार के प्रयत्न में तेजी से जुटे थे । हिन्दुओं के चेतन वर्ग इस बढ़ते प्रभाव को रोकने के लिए प्रयत्नशील हुए । इससे विरोध भाव को बल मिला । कारण हिन्दू धर्म के नेताओं को पाश्चात्य नैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव के कारण अपने धर्म का अस्तित्व ही खतरे में दीख रहा था । इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दू धर्म ने स्वयं को और कठोर नियमों में बद्ध कर अपनी परम्पराओं के रक्षा की चेष्टा की ।

१- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र- डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय,पृ०४०,सन् १९५६ ई०

यदि एक ओर हिन्दू धर्म का एक वर्ग इस तरह कट्टरता में बंधकर धर्म का प्राचीन रूप सुरक्षित रखने की चेष्टा में था तो दूसरी ओर आंशिक पाश्चात्य प्रभाव से प्रेरित होकर, ब्रह्म समाज,आर्य समाज तथा अन्य संस्थाओं द्वारा धार्मिक कट्टरता, रूढ़िवादिता तथा अंधविश्वास को समाप्त करने का आन्दोलन शुरू हुआ । इन संस्थाओं द्वारा छुआछूत,वर्ण-भेद आदि को मिटा कर, सब को एक सूत्र में बांधने का प्रयत्न कर सांस्कृतिक दृष्टि से देश को एक करने की कोशिश हुई । इस काल में हिन्दू धर्म और संस्कृति पर इन संस्थाओं का बहुत गहरा असर पड़ा ।

पाश्चात्य विचारों से अधिक अभिभूत होकर कुछ नवयुवक धार्मिक व्यवस्थाओं की अवहेलना भी करने लगे थे । यह दृष्टि हिन्दू धर्म के लिए घातक थी । अतः हिन्दू धर्म के समर्थकों ने पाश्चात्य धर्म और संस्कृति का घोर विरोध किया ।

मैडम ब्लैवाट्स्की और कर्नल अल्काट १८७६ ई० में भारत आए । उन्होंने थियोसोफिकल सोसाइटी को भारत में स्थापित किया । इस संस्था ने धार्मिक मत-मतान्तरों को समाप्त कर, पारस्परिक सहिष्णुता और सहयोग स्थापित करने का प्रयत्न किया । इस संस्था ने भारतीय जन-मानस में नवीन चेतना भरने और उसके सांस्कृतिक अभ्युत्थान में महत्वपूर्ण योगदान दिया, क्योंकि इसके माध्यम पाश्चात्य और भारतीय दर्शन के मूलभ -विचारों को अपनाया था । सन् १८६३ में श्रीमती एनी बेसेण्ट भारत में आयीं । थियोसोफिकल सोसायटी के प्रचार में इन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया। इस संस्था के कार्य मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित थे और मानव जाति की उन्नति इसका ध्येय था । भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में भी इसका महत्वपूर्ण कार्य रहा है ।

इस काल को यदि धार्मिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का काल कहा जाय तो अनुचित नहीं होगा । कारण, यह काल कई-कई धार्मिक तथा सांस्कृतिक संस्थाओं की स्थापना का काल है । इन संस्थाओं द्वारा अवंर हिन्दू धर्म के पुनर्जागरण का प्रयत्न हुआ । हिन्दू धर्म जो सदियों से कढ़िग्रस्त था, उसे परिष्कृत करने की आवाज इनके द्वारा उठाई गई । साथ ही सामाजिक सुधारों की आधारभूमि भी इन्होंने तैयार की ।

मुसलमान भी पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव से अछूते नहीं बचे थे । परम्परावादी मुसलमानों को इस्लाम खतरे में दीख रहा था । जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन था, मुसलमान अंग्रेजों को सहयोग देते थे । लेकिन उच्चवर्गीय मुसलमान अपने धर्म और संस्कृति पर अधिक ध्यान देते थे । पश्चिमी सभ्यता का बहिष्कार उन्होंने भी किया । इस युग में मुस्लिम वर्ग अपने राजनीतिक,धार्मिक और सांस्कृतिक ह्रास से बहुत दुःखी था । अतः आलोच्यकाल के पूर्व ही मुसलमानों ने धार्मिक सुधार की ओर जो चेष्टाएं आरम्भ की थीं, वे इस युग के प्रारम्भ तक चलती रहीं । सैयद अहमद ब्रेल्वी और इस्माइल हाजी मौलवी मुहम्मद १८२० ई० में मक्का यात्रा से लौटे । नवीन मुस्लिम धार्मिक विचारों से ये भरे थे । इन्होंने इस्लामी कुरीतियों को दूर करने का आंदोलन प्रारम्भ किया । १८५७ के बाद तक यह आन्दोलन जारी रहा ।

इस प्रकार हिन्दू-मुस्लिम दोनों धर्मों के लिए यह युग सुधारवादी क्रान्ति का युग था । धार्मिक और सांस्कृतिक आन्दोलनों के द्वारा कुरीतियों को एवं कट्टरताओं को मिटाने की चेष्टा हो रही थी ।

द्विवेदी युग

इस युग की धार्मिक परिस्थितियां साम्प्रदायिकता से ओत प्रोत रही हैं । आर्य समाज हिन्दुत्व की भावना पर आधारित था । इसके धार्मिक,सांस्कृतिक और सामाजिक पुनरुत्थान की भावना में हिन्दुत्व का भाव ही प्रबल था । जवाहरलाल नेहरू ने आर्य समाज की उत्पत्ति के सम्बन्ध में लिखा है " आर्य समाज इस्लाम और ईसाई धर्म के, विशेषतः इस्लाम के प्रभाव की प्रतिक्रिया था[1] ।" मुसलमान भी आर्य समाज के तीव्र प्रभाव को देखकर सचेत हो गए और अपने धर्म की ओर उनका ध्यान अधिक गया । उन्होंने भी धार्मिक संस्थाओं का संगठन प्रारम्भ किया । परिणामस्वरूप साम्प्रदायिकता की भावना विकसित होने लगी । दोनों धर्मों में खाई बढ़ती गई ।

उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों के पुनर्जागरण का काल है । वेद और प्राचीन सभ्यता की ओर ध्यान देकर हिन्दुओं ने वर्तमान से दूर रहने का प्रयत्न किया । इधर मुसलमानों ने भी कुरान और मक्का मदीना

१- डिस्कवरी आफ इंडिया-जवाहरलाल नेहरू,पृ०३१८,सन् १९५६

के ध्यान में अपने दुख को समोने की कोशिश की । आर्य समाज के द्वारा, हिन्दुओं ने, 'हिन्दुस्तान हिन्दुओं के लिए' की घोषणा की और मुसलमानों ने वृहत्तर इस्लाम के लिए कोशिशें आरम्भ कीं फलतः मतभेद बढ़ता ही गया । सरसैयद अहमद खां कांग्रेस की स्थापना में देशद्रोह देखने लगे । इसीलिए उन्होंने मुसलमानों को कांग्रेस में सम्मिलित होने से रोका । हाली ने मुसद्दस में इस्लाम का गुणगान किया । 'वृहत्तर इस्लाम की कल्पना का पक्षी, साहित्य की भूमि पर उतरने के लिए, हाली की कविता में अपने डैने तौल रहा था ।'[1]

सरसैयद अहमद को डर था कि कहीं इस्लाम सनातन धर्म का ही अनुवाद न बन जाए । इसीलिए उन्होंने मुसलमानों को हिन्दुओं से सम्पर्क बढ़ाने को मना किया था । उन्होंने मुसलमानों का नेतृत्व सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक दृष्टि से किया । मुसलमानों को राजभक्त होने की प्रेरणा दी और साम्प्रदायिक भावना को बढ़ाया।

बंग-भंग आन्दोलन मुख्यतः हिन्दू आन्दोलन था । इसमें हिन्दुओं का संगठन देखकर मुसलमान भी सचेत हुए । उन्होंने भी एक ऐसी राजनीतिक संस्था की आवश्यकता महसूस की, जो उनकी साम्प्रदायिक मांगों का माध्यम बन सके ।

अंग्रेजों ने अपने शासन की नींव फूट के आधार पर ही रखी थी । 'ब्रिटिश राजनीति ने यह समझ लिया था कि भारत की धर्म-प्रवण जनता पर तब तक शासन नहीं किया जा सकता, जब तक उनकी धार्मिक भावना और विश्वास को निर्बल न बनाया जाय ।'[2] इसके लिए वे भारतीय जनता में फूट डालना भी आवश्यक मानते थे । उन्होंने मुसलमानों को हिन्दुओं के विरोध में उकसाना प्रारम्भ किया । 'धीरे-धीरे इस्लाम की विशिष्ट धार्मिकता ने भारतीयता की भावना नष्ट कर दी । मुसलमान अपने को उस इस्लामी बेड़े के मुसाफिर समझने लगे जो भारत में आकर गंगा के दहाने में डूब गया ।'[3] इधर अंग्रेज मुसलमानों को स्वतंत्र संगठन के लिए बढ़ावा दे साथ

१- पाकिस्तान के पीछे साहित्य की प्रेरणा-दिनकर, हिमालय, अक्तूबर, १९४६, पृ०५

२- उन्नीसवीं शताब्दी की पृष्ठभूमि-- रामकुमार वर्मा

३- वही

ही सहायता भी दे रहे थे । फलत: १९०६ ई० में आगाखां के नेतृत्व में मुसलमानों ने पृथक चुनाव की मांग की और दिसम्बर में मुस्लिम लीग की स्थापना की । कुछ लोगों का विचार है कि इसके पीछे लार्ड मिण्टो की सहायता थी ।

इसी युग में साहित्यिक क्षेत्र में इकबाल का आगमन हुआ । अंग्रेजों द्वारा प्रदत्त साम्प्रदायिक इकाई का बीजमंत्र उनके काव्य में फूटने लगा । मुसलमानों को विश्वास होने लगा कि साम्प्रदायिक इकाई, कल्पना मात्र ही नहीं है सरकारी समर्थन भी तब मिल गया, जब मार्लेमिण्टो सुधार में धार्मिक आधार पर राजनीतिक अल्पसंख्यकता मानी गई तथा प्रतिनिधित्व का अधिकार अल्पसंख्यक मुसलमानों को दिया गया । पृथक इकाई की भावना इससे बलवती हुई और पृथक प्रतिनिधित्व की मांग को सर सैयद अली इमाम की अध्यक्षता में १९०८ ई० में दुहराया गया ।

१९१० ई० में कांग्रेस द्वारा इसका विरोध हुआ । कांग्रेस को लार्ड हार्डिञ्ज की सहानुभूति प्राप्त थी । इसलिए मुसलमानों का जोश पहले जैसा नहीं रहा । अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियां भी राजभक्ति के अनुकूल नहीं थी, इससे मुसलमान निराश हुए । और स्वराज्य हमारा लक्ष्य है यह घोषणा १९१३ ई० में मुस्लिम लीग ने भी की । १९१६ में कांग्रेस और लीग का समझौता हुआ । तब से धीरे-धीरे दोनों वर्ग एक-दूसरे के निकट आने लगे । १९१९ ई० में रौलट एक्ट के विरोध में हिन्दू और मुसलमान एक थे । दोनों जातियों की एकता एवं भ्रातृभाव का उल्लेख एक सरकारी रिपोर्ट में यों किया गया, `सब लोग बड़े ही उत्तेजित थे । एक बात मार्के की दिखाई पड़ती थी । वह था हिन्दू-मुस्लिम भ्रातृभाव । दोनों जातियों के नेता बस इसी एकता की रट लगाए हुए थे ।...... वह भ्रातृभाव का अद्भुत दृश्य था[१] ।`

इन दोनों वर्गों — हिन्दू-मुस्लिम — की इस साम्प्रदायिक भावना के अतिरिक्त आलोच्यकाल में धार्मिक सुधारों की ओर से भी लोग बेफिक्र नहीं थे । दोनों वर्गों में पुनरुत्थानवादी भावना थी । दोनों ने गौरवपूर्ण अतीत को जाना, समझा और उसके प्रकाश से वर्तमान को प्रकाशित करने की चेष्टा की । यदि एक ओर धार्मिक बुराइयों को दूर करने की चेष्टा थी, तो दूसरी ओर कट्टरता भी पैदा हो रही थी । उपर कथनानुसार, परिस्थितियों के अनुसार उसकी गति तीव्र और धीमी होती थी ।

१- कांग्रेस का इतिहास — पट्टाभि सीतारमैया, पृ० १३१

आलोच्यकाल में धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में बुद्धिवाद का अत्यधिक समावेश हुआ । यूरोपीय संस्कृति के प्रभाव से भारतीय संस्कृति में बुद्धिवाद का जोर बढ़ा । फलतः बुद्धिवाद के प्रकाश में अंधविश्वास नष्ट होने लगा । परम्पराएं ढहने लगीं । भारतीय जनता की दृष्टि परीक्षक की हो गई । तर्क तथा ज्ञान द्वारा प्राचीन मूल्यों का सिंहावलोकन प्रारम्भ हुआ । फलतः नये जीवन-मूल्य विकसित हुए । जीवन के अन्य क्षेत्रों के साथ ही, धार्मिक क्षेत्र में भी नए दृष्टिकोणों का विकास हुआ । बुद्धिवाद की प्रेरणा का स्रोत पाश्चात्य संस्कृति थी, पर साथ ही भारतीय सांस्कृतिक-धार्मिक संस्थाओं ने भी इस दिशा में प्रेरित किया । आर्य समाज और ब्रह्म समाज आदि बुद्धिवादी दृष्टिकोण से परिचालित थे । रवीन्द्र, विवेकानन्द गांधी आदि ने इस युग को बौद्धिक चेतना प्रदान की । जीवन को नये मूल्यों से सम्पन्न किया । वेदान्त के अद्वैत दर्शन की नवीन व्याख्या करते हुए विवेकानन्द ने मानव की ईश्वरता को दिव्यता प्रदान की । उन्होंने बुद्धिवादी दृष्टिकोण के आधार पर मनुष्य का देवीकरण कियातथा देवोपम रामकृष्ण को मानव-महिमा मंडित किया । इस प्रकार बुद्धिवाद द्वारा हमारी धार्मिक सांस्कृतिक परम्परा को अस्थिरता और अनास्था मिली । संशय और अनास्था की भावना जीवन के प्रत्येक मूल्यों के सामने उपस्थित हुई । बौद्धिक दृष्टिकोण का कठोर आघात अवतारवाद पर पड़ा ।

ऐसा नहीं है कि बुद्धिवाद के कारण आदर्शवाद की समाप्ति हो गयी । बुद्धिवाद आदर्शवाद का विरोधी नहीं है, बल्कि आधार रूप में उससे उद्भूत यथार्थवाद आदर्शवाद में वर्तमान रहता है । इस प्रकार तत्कालीन युग में बुद्धिवाद से स्वीकृत आदर्शवाद ग्राह्य हुआ । राष्ट्रीय जीवन के जागरण एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थान के इस युग में आदर्शवाद का उदय अपेक्षित भी था । अतः इस समय सांस्कृतिक धरातल पर आदर्शवाद दीखता है । अतीत के सेवक रक्षित पक्ष की बड़ी भव्य और आदर्शमूलक व्यंजना हुई ।

जनवाद और मानववाद की भावना भी तत्कालीन युग की सांस्कृतिक और धार्मिक स्थिति में महत्वपूर्ण है । वेदान्त दर्शन मानववाद की पृष्ठभूमि रही । कारण, वेदान्त दर्शन में मानव, मानव को समान या एक मूलभूत तत्व से ओतप्रोत देखने का दृष्टिकोण है । विवेकानन्द द्वारा भारतीय विचारधारा में मानववादी दृष्टिकोण की स्थापना हुई । मानवतावाद पश्चिमी के प्रभाव से भी प्रेरित हुई ।

राजनीति समानता से जनवाद की भावना को प्रेरणा मिली । इस युग में राजनीतिक सत्ता को मध्यम वर्ग से निम्नवर्ग में पहुंचाने की भावना जगी । समान राजनीतिक अधिकारों की देन की चेतना विकसित हुई । यह सब बुद्धिवादी दृष्टिकोण के कारण हुआ ।

तत्कालीन धार्मिक और सांस्कृतिक बोध गांधीवादी विचारधारा से भी परिचालित हुआ । सत्य,अहिंसा,सत्याग्रह की उदात्त और व्यापक भावनाओं ने धर्म तथा संस्कृति को भी प्रभावित किया । इसी समय स्वच्छन्दतावाद भी आया । इससे भी बन्धन के तिरस्कार की सहज वृत्ति का विकास हुआ । स्वच्छन्दतावाद की प्रमुख प्रवृत्ति परम्परा का विरोध है । बुद्धिवाद में भी यह प्रवृत्ति है । अत: बुद्धिवादी दृष्टिकोण के अन्तर्गत स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण को भी लिया जा सकता है । पर सभी विचारधाराओं के मूल में बौद्धिकता रहते हुए भी ये पृथक् भावधाराएं हैं, एक नहीं । इन विभिन्न भावधाराओं से तत्कालीन युग की धार्मिक सांस्कृतिक परिस्थितियां आन्दोलित होती रहीं ।

छायावाद युग

धार्मिक-सांस्कृतिक मूल्यों की नवीन स्थितियां इस युग में भी उत्पन्न होती रहीं, जिनसे क्रान्ति चेतना उद्बुद्ध होती रही ।

अन्य युगों की तरह इस युग में भी आर्य समाज ने हिन्दू-धर्म को संगठित करने की चेष्टा की, उसे बल दिया । इस्लाम और ईसाई धर्म के प्रहारों को आर्य-समाज ने झेला और हिन्दू धर्म की रक्षा की, उसे प्रगतिशील बनाया । आलोच्यकाल में साम्प्रदायिक भावना पुन: बलवती हो उठी थी ।

सन् १९२१ ई० में मोपला (मालाबार) में एकाएक मुसलमानों का विद्रोह हुआ । इस क्रम में बलात् उन्होंने ढाई हजार अधिपवर्ती हिन्दुओं को इस्लाम में दीक्षित कर लिया । आर्य समाज ने उन ढाई हजार भ्रष्ट हिन्दुओं को शुद्ध कर,फिर से हिन्दू बनाया । राजस्थान के मलकाना राजपूतों की शुद्धि भी उसने किया । इससे मुसलमान क्रोधित हो उठे और राष्ट्रीय एकता को चोट पहुंची । जो हो, हिन्दू, आर्य समाज हिन्दुत्व की तलवार बांह साबित हुआ ।[१]

१- संस्कृति के चार अध्याय--रामधारी सिंह दिनकर,पृ०४७०,सन् १९५६ ई०

हिन्दू धर्म की रूढ़ियों, कुरीतियों, जड़-परम्पराओं को मिटाने का प्रयास तो आर्य समाज कर ही रहा था। अनेक व्यक्तियों की आस्था मूर्ति पूजा तथा अन्य मान्यताओं से हट गई। तर्क और बौद्धिकता की वेगवती धारा ने हिन्दू समाज की कुरीतियों को बहा डाला। नये मूल्य बनने लगे।

महात्मा गांधी द्वारा धर्म के क्षेत्र में अद्भुत क्रान्ति हुई उन्होंने उपनिषद् बौद्ध और जैन धर्म की अहिंसा को अपनाया और व्यष्टि नहीं, समष्टि के धरातल पर उसका प्रयोग किया। इस प्रकार भारतीय संस्कृति को एक नयी चेतना से उन्होंने सम्पन्न किया। परम्परागत आडम्बरों, कुरीतियों पर भी गांधी जी ने प्रहार किया। वे धर्म को बाह्याडम्बरों तक ही सीमित नहीं रखना चाहते थे, बल्कि वे सम्पूर्ण जीवन के क्रिया-कलाप में धर्म का व्यावहारिक रूप देखना चाहते थे। उन्होंने धर्म के सम्बन्ध में कहा, "नैतिकता के मूल सिद्धान्त और सुनियोजित बुद्धि के जो विरुद्ध हैं, उसे नहीं मानना ही धर्म है, चाहे वह कितना भी प्राचीन क्यों न हो।" "सांस्कृतिक नवोत्थान के साथ भारत में बुद्धिवाद की जो चेतना आयी, उसे गांधी जी ने सर्वतोभावेन ग्रहण किया।"[१] इस प्रकार तत्कालीन धार्मिक परिवेश में गांधी जी का महत्त्वपूर्ण स्थान था।

हिन्दू महासभा, जो मुस्लिम लीग की विरोधी संस्था कही जा सकती है। इसने हिन्दू धर्म को अपने ढंग से प्रभावित करने की कोशिश की। लीग द्वारा पाकिस्तान की मांग का जोरदार खण्डन इसके द्वारा हुआ। भारत की अखण्डता और एकता का समर्थन इसने किया। उन्होंने कहा कि आर्यावर्त आर्यों के लिए है और भारत का विभाजन बर्दाश्त नहीं किया जा सकेगा। हिन्दू महासभा हिन्दू राज की स्थापना के पक्ष में थी।

मुसलमान भी हिन्दुओं की तरह अपने को अधिक संगठित करते गये। प्रथम महायुद्ध के उपरान्त टर्की में हुए वारदातों को लेकर भारत के मुसलमान सरकार के विरोधी हो गए और सन् १९५० ई० में स्वराज्य और खिलाफत को लेकर हिन्दू-मुसलमान का संगठन हुआ और वे कंधे से कंधा मिलाकर राष्ट्रीय आन्दोलन में अग्रसर हुए। लेकिन असहयोग तथा खिलाफत आन्दोलन चौरी चौरा आदि की हिंसात्मक घटनाओं के कारण वहीं रुक गया, आगे नहीं बढ़ा। इससे नौकरशाही द्वारा प्रचार

१- संस्कृति के चार अध्याय— रामधारी सिंह दिनकर, पृ०४७०, सन् १९५६ ई०

किया गया कि हिन्दू मुसलमानों को भलाई के लिए कभी नहीं लड़ेंगे । मुसलमान इस बात से बहुत प्रभावित हुए, क्योंकि उस असर के पश्चात् ही देश में कई साम्प्रदायिक दंगे हुए ।

१६२४ ई० के मोपला-विद्रोह में हिन्दुओं पर जो अत्याचार हुआ, उससे सारा देश थर्रा उठा तथा हिन्दू-मुस्लिम खाई और चौड़ी हो गई । फलत: खिलाफत और असहयोग के पक्षपातियों ने भी कांग्रेस को छोड़ दिया । १६२५ ई० में मुस्लिम लीग के अधिवेशन में खिलाफती नेता मुहम्मदअली ने कहा कि उनका संबंध विच्छेद गांधी जी से हो गया है । जिन्ना आदि भी कांग्रेस से हट गए । देश में दंगों की बाढ़ आ गई । एकता के अभाव ने देश की राष्ट्रीयता को बहुत हानि पहुंचाई । कांग्रेस के एकता बनाए रखने का प्रयत्न व्यर्थ हुआ ।

अंग्रेज सरकार ने राष्ट्रीय एकता को भंग करने के लिए धार्मिक विद्वेष पैदा करने की नीति अपनायी थी । इसलिए साइमन कमीशन की रिपोर्ट में पृथक् चुनाव की प्रणाली की सिफारिश की । एकता के लिए प्रयत्न राष्ट्रीयता के समर्थकों द्वारा हुआ । १६२८ में लखनऊ में सर्वदल सम्मेलन हुआ । लेकिन कांग्रेस के सुझाव लीग को मान्य नहीं हुए ।

साम्प्रदायिक भावना १६३० ई० के आन्दोलन में बहुत कम हुई और पर सरकार उसे कम नहीं होने देना चाहती थी । उसने गोलमेज परिषद् बुलाया, जिसमें साम्प्रदायिकता के आधार पर पृथक निर्वाचन-पद्धति पर विचार-विमर्श हुआ । इस परिषद् में राष्ट्रीय मुसलमान नहीं, बल्कि प्रतिक्रियावादी मुसलमानों को ही आहूत किया गया था । स्पष्ट है कि सरकारी नीति फूट की थी । दूसरी गोलमेज परिषद् में इसकी पुनरावृत्ति हुई । बहुत कोशिशों के बावजूद, गांधी जी साम्प्रदायिक एकता स्थापित नहीं कर सके ।

फिर भी १६३० ई० सविनय अवज्ञा आन्दोलन में खिलाफत आन्दोलन की तरह ही, मुसलमानों ने पूरे उत्साह के साथ हिन्दुओं का साथ दिया । सांप्रदायिक विरोध कम हो गया ।

साम्प्रदायिक कटुता उस युग में तब बढ़ी, जब आन्दोलन समाप्त हो गए । आन्दोलनों के समय साम्प्रदायिकता नहीं भड़की । पर पूर्व कालों की अपेक्षा इस काल में साम्प्रदायिकता अधिक रही । राष्ट्रीय मुसलमान भारतीय स्वतन्त्रता के

युद्ध में योग देते रहे । पर प्रतिक्रियावादियों की वजह से कटुता का भाव बढ़ता गया ।

प्रगतिवाद युग

इस युग में धार्मिक परिस्थितियां लगभग पूर्ववत् हो रहीं । परिवर्तन बहुत कम हुए, लेकिन मुस्लिम लीग द्वारा पृथक इस्लाम राज्य की मांग के कारण हिन्दू जनता में साम्प्रदायिक वैषम्य बढ़ने लगा । अपनी स्वार्थ नीति के कारण सरकार भी प्रश्रय देती रही । मुस्लिम लीग की इन कार्यवाहियों से हिन्दुओं में भी जातीयता और साम्प्रदायिक भावना तीव्र हुई तथा दोनों जातियों का वैमनस्य बढ़ता गया ।

१९४६ ई० में मुस्लिम लीग ने प्रत्यक्ष कार्यवाई की । फलतः देश में दंगे आरम्भ हो गए । इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप पंजाब, बिहार और बंगाल में भीषण दंगे हुए । जन-धन की भीषण क्षति हुई । इससे राष्ट्रीय एकता का भी अत्यन्त ह्रास हुआ । इस प्रकार इस युग में धार्मिक आवेश का प्रदर्शन विशेषतः हुआ ।

सांस्कृतिक दृष्टिकोण में अवश्य कई निर्णायक परिवर्तन हुए । हमारी संस्कृति में जटिलता और विविधता इस परिवर्तन की पृष्ठभूमि थी । जटिलता के निराकरण की दिशा में दो विदेशी मनीषियों की विचारधाराओं का प्रभाव भारतीय जीवन पर विशेष पड़ा । ये थे मार्क्स और फ्रायड ।

मार्क्स ने आर्थिक आधार भूमि पर समाज की व्याख्या प्रस्तुत की । उसने सामाजिक समस्याओं की भौतिकवादी व्याख्या करते हुए सम्पूर्ण जनता को शोषक और शोषित दो वर्गों में बांटा । वह राजनीतिक शक्ति पर, शोषित वर्ग के संगठन द्वारा शोषकों का नाश कर, अपना अधिकार कर लेना चाहता था । समानता के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति को सुख-सुविधाएं देना उसका लक्ष्य रहा ।

प्रगतिशील शक्तियां देश में १९२७ ई० के बाद से ही दीखने लगी थीं, पर १९३७ के पश्चात् इस क्षेत्र में विशेष प्रगति होने लगी । समानता के सिद्धान्त से लोग अभिभूत हो उठे । जनवादी मूल्यों के आधार पर सभी समस्याओं को हल करने का प्रयत्न किया जाने लगा ।

मार्क्सवाद ईश्वर का अस्तित्व नहीं मानता था । वह रूढ़ियों तथा परम्पराओं का घोर विरोधी था । ईश्वर के बारे में उसने कहा कि वह शोषक वर्ग द्वारा निर्मित एक अस्त्र है, जो शोषितों को गुलाम बनाने के लिए प्रयुक्त किया जाता रहा है । अतः ईश्वर शोषितों के लिए नहीं । इस अनीश्वरवादी विचारधारा

का व्यापक प्रभाव जनता पर पड़ा और जनवादी मूल्यों का विकास हुआ ।

विचारधाराओं के परिवर्तन में, नयी दिशाओं की ओर प्रेरित करने में फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद ने भी महत्वपूर्ण कार्य किया । काम-सम्बन्धी विचारों को फ्रायड ने मनोविज्ञान के आधार पर नये रूप में विश्लेषित किया । उसके अनुसार वे इच्छाएं जिनकी पूर्ति सामाजिक वर्जनाओं के कारण चेतन जीवन में नहीं होने पातीं, वे दमित होकर कुंठित हो जाती हैं । ये कुंठाएं अधिकतर यौन सम्बन्धी हैं । अवसर पाकर ये इच्छाएं नग्न या अर्द्ध नग्न रूप में हमारे सम्मुख आती हैं । इस विचारधारा से काम सम्बन्धी पुरानी मान्यताएं बिखरने लगीं और तत्सम्बन्धी नये मूल्य स्थापित होने लगे ।

वैसे भारत जैसा परम्परावादी देश अपने प्राचीन मूल्यों को एकदम नहीं त्याग सका । धार्मिक और सांस्कृतिक मान्यताओं की प्राचीन परम्परा भी चलती रही ।

इन समस्त विचारधाराओं का सामूहिक प्रभाव यह हुआ कि जीवन के प्रति दृष्टिकोण भौतिकवादी हो उठा । बौद्धिकता की प्रधानता हुई । सभी मूल्यों का परीक्षण तर्क के आधार पर होने लगा । वे मूल्य टूटने लगे, जो उपयोगी सिद्ध नहीं हुए । इनके स्थान पर जनवादी मान्यताएं पनपने लगीं । इस प्रकार इस युग में भारतीय सांस्कृतिक जीवन एक नये धरातल पर निर्मित हुआ और इस आधार पर क्रमशः नवीन क्रान्तिकारी चेतना विकसित होती गई ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत को धर्म-निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया । साम्प्रदायिकता तथा धार्मिक विद्वेषों को समाप्त किया-न करने की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण कदम था । धर्म-निरपेक्षता के कारण सभी धर्मावलंबियों को सहयोग का भी अवसर मिला ।

आर्थिक

मनुष्य की विचारधाराओं, क्रिया-कलापों पर अर्थ, बाह्य परिवेश के रूप में, सम्भवत: सबसे अधिक प्रभाव डालता है । कारण, अर्थ से ही मनुष्य की प्राय: सम्पूर्ण भौतिक क्रियाएं परिचालित होती हैं । आर्थिक सम्पन्नता द्वारा सम्पूर्ण भौतिक आवश्यकताएं पूरी होने पर जब मनुष्य सुख से रहता है, उसमें विद्रोह की प्रवृत्ति नहीं पनपती । वस्तुत: विद्रोह या क्रान्ति के बीज अभाव और असंतोष में उगते हैं। इस प्रकार आर्थिक स्थिति मानसिक विचारधाराओं के साथ ही क्रिया-कलापों की निर्मिति में भी अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखती है । यहां तक कि गहराई से विचार करने पर यह भी देखा जा सकता है कि आर्थिक-व्यवस्था से असंतुष्ट व्यक्ति ही समाज-व्यवस्था और फिर वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था पर ध्यान देता है । अर्थात् राजनीतिक और सामाजिक क्रान्ति के विचार भी आर्थिक स्थिति से प्रेरित होते हैं । इसलिए तत्कालीन परिस्थितियों ने किस प्रकार क्रान्ति के लिए आधारभूमि प्रस्तुत की, इसके विश्लेषण के लिए तत्कालीन आर्थिक परिस्थितियों का सिंहावलोकन अनिवार्य है ।

पृष्ठाधार

भारतवर्ष के आर्थिक जीवन के प्रधान केन्द्र गांव रहे हैं । अंग्रेजों के आने के पहले ये ग्राम राजनीतिक दृष्टि से उथल-पुथल के शिकार होते थे, लेकिन आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर रहा करते थे । उस समय यातायात के साधन कम थे । अत: प्रत्येक गांव अपने-आप में स्वावलम्बी रहता था । जमीन पर किसी का व्यक्तिगत अधिकार नहीं, सामूहिक रहता था । कर के रूप में उत्पादित वस्तुओं में से सामूहिक रूप में राजकोष के लिए निर्धारित रकमें दी जाती थीं ।

कृषि के अतिरिक्त महत्वपूर्ण उद्योग धंधे भी होते थे । कताई-बुनाई इनमें प्रमुख था । अन्य उद्योग धंधों और दस्तकारी का भी महत्वपूर्ण काम होता था । कृषक परिवारों और उद्योगी परिवारों के अतिरिक्त अन्य वर्ग जैसे ब्राह्मण, धोबी, लुहार, चमार, नाई, अपंग व्यक्तियों और गांव की रक्षा करने वाले सैनिकों के लिए, प्रत्येक गांव में उत्पादन शक्ति की क्षमतानुसार कुछ खेत निर्धारित कर दिया जाता था । इनसे उपर्युक्त वर्गों का भरण-पोषण होता था । संक्षेप में, तत्कालीन समाज में कोई

भूखा नहीं रहने पाता था । सब की आवश्यकताएं समाज द्वारा पूरी हो जाती थीं ।

अंग्रेजी राज्य की स्थापना से पहले किसानों का सरकारी प्रतिनिधि से व्यक्तिगत सम्बन्ध नहीं रहता था, बल्कि मुखिया ही माध्यम रहता था। पर गांव के मुखिया और सरकारी प्रतिनिधि के बीच एक और व्यक्ति रहता था, जो आगे चलकर जमींदार बन गया । इस वर्ग का काम था नियमों के अनुसार हिसाब-किताब रखना । पर धीरे-धीरे स्वार्थ के कारण इसने किसानों से महाजनी प्रारम्भ कर दी और बदले में उनसे जमीन आदि लेने लगा । इस प्रकार किसान और सरकार के बीच एक जमींदार-वर्ग बन गया ।

तत्कालीन समाज में धार्मिक कृत्यों और दान-पुण्य पर लोग बहुत खर्च करते थे । साधु, सन्त, फकीर और भिखारियों की संख्या बहुत अधिक थी । ये समाज के अनुत्पादक अंग थे । इनसे आर्थिक जीवन को क्षति पहुंचती थी, क्योंकि राष्ट्र का बहुत सा धन अनुत्पादक रूप में पड़ा रह जाता था ।

उस समय अनेक छोटे-बड़े औद्योगिक नगर भी थे । व्यापारी, कारीगर और शिल्पी आदि प्रमुख थे । अनेक तरह की चीजों का व्यापार होता था । नगरों का आर्थिक जीवन मुख्यतया हाथ करघों और चरखों पर आधारित था । अराजकता और राजनीतिक उथल-पुथल में अनेक औद्योगिक केन्द्रों का ह्रास होता था, पर आर्थिक संगठन और व्यवस्था में आमूल परिवर्तन नहीं होता था ।

भारतवर्ष की आर्थिक स्थिति का दूसरा अध्याय अंग्रेजों के आगमन और विकास के साथ आरम्भ होता है । अंग्रेजों की नीति औपनिवेशिक साम्राज्यवाद की नीति थी । उन्होंने एक भिन्न पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था की स्थापना भारत में की, जिसका परिणाम उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम दशाब्द में ही दीखने लगा था ।

१७५७ की प्लासी युद्ध के पश्चात् अंग्रेजों द्वारा भारत का आर्थिक शोषण आरम्भ हुआ । आरम्भ में कम्पनी की प्रारम्भिक नीति के फलस्वरूप बंगाल और बिहार का अत्यधिक आर्थिक शोषण हुआ । व्यापारियों, कारीगरों, शिल्पियों आदि को इस आर्थिक नीति से बड़े-बड़े नुकसान उठाने पड़े । इसका प्रभाव गांवों पर भी पड़ा । भारतीय औद्योगिक जीवन के केन्द्र-बिन्दु वस्त्र-निर्माताओं को अत्यधिक यातना सहनी पड़ी ।

जैसे-जैसे ईस्ट इंडिया कम्पनी स्थापित होती गई, हिन्दी-प्रदेश की आर्थिक स्थिति का क्षय होता गया । जब से कम्पनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी मिली, तब से आर्थिक परिस्थिति और भी शोचनीय होती गई । कारण, कम्पनी मालगुजारी तो लेती थी लेकिन जनता के प्रति अपना उत्तरदायित्व नहीं निभाती थी । साथ ही जमींदारों और रियासतों को नीलाम पर भी चढ़ा देती थी । फलतः धीरे-धीरे गांव बरबाद होने लगे । दुर्भिक्ष, भुखमरी फैलने लगी । रुपया इंगलैण्ड भेजा जाने लगा और राष्ट्र निर्धन होता गया । १८१६ तक समस्त हिन्दी प्रदेश पर ईस्ट इंडिया कम्पनी की सत्ता स्थापित हो गयी थी ।

कृषि-व्यवस्था को तो क्षति पहुंची ही, कम्पनी की नीति के फलस्वरूप भारत के उद्योग धंधे भी बहुत ही क्षतिग्रस्त हुए । 'फ्री ट्रेड' नीति के अन्तर्गत भारत में तो इंगलैण्ड की वस्तुएं बिना किसी आयात-निर्यात कर के या नाममात्र के कर से आती थीं, लेकिन भारत से जाने वाली वस्तुओं, विशेषतः कपड़ों पर भारी-भारी कर लगाकर उनके जाने में अड़चनें डाली गयीं । फलतः वहां का माल देश में बेहिसाब खपने लगा । इंगलैण्ड में अन्यान्य मशीनों के आविष्कार के साथ ही भारतीय उद्योग धंधों का रहा-सहा अस्तित्व भी समाप्त होने लगा । भारतीय नरेशों और उच्चकुलों के पतन के कारण आश्रयदाताओं के अभाव भी उद्योग-धंधों की अवनति का एक कारण हुआ । इस प्रकार १८२३ तक उद्योग-धंधों का पूरा ह्रास हो गया । अब भारत एक कृषि-प्रधान देश रह गया । उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम दशाब्द में नेपोलियन की शक्ति बढ़ी, जिससे इंगलैण्ड के मालों की यौरोप में बिक्री कम हो गई । अतः अन्य ब्रिटिश व्यापारियों ने कम्पनी के एकाधिकार के विरुद्ध आवाज उठाई । फलतः १८१३ में परिवर्तित चार्टर में कम्पनी का एकाधिकार छीन लिया गया । अब समस्त ब्रिटिश वणिक जाति अपने देश में तैयार चीजों को बाहर खपाने लगा । इससे भी भारतीय उद्योग धंधों का ह्रास हुआ साथ ही वैज्ञानिक आविष्कारों से भी भारत को अपरिचित रखा, जिसके द्वारा यूरोप प्रगति कर रहा था ।

कृषि की दशा भी बदतर होती गई । कर भी अत्यन्त अनिश्चित ढंग से लगाए जाते थे । इस कारण किसान अपने आर्थिक जीवन में निश्चिंतता का अनुभव नहीं कर पाते थे ।

इसके अतिरिक्त कुछ और कारणों से भी भारत की आर्थिक स्थिति में ह्रास हुआ । कम्पनी के कारण भारत का धन तेजी से इंगलैण्ड जा रहा था । कम्पनी के कर्मचारियों के

पदाधिकारियों के सगे-सम्बन्धियों को भी भारत में ऊंचे-ऊंचे पद दिए गए। 'यद्यपि १८३३,१८५३ और १८५८ (विक्टोरिया) की घोषणाओं के अनुसार सैद्धान्तिक रूप में भारतवासियों का सरकारी नौकरियां पाने का अधिकार स्वीकार कर लिया गया था, किन्तु व्यावहारिक रूप में बहुत दिनों तक उन्हें उच्च सरकारी नौकरियां न मिल सकीं।'[१] उत्पादन शक्ति के विकास के लिए साधनों का निर्माण भी नहीं हुआ। सबसे बड़ी बात थी, भारतीय सामानों पर अधिक कर का लगाना। यहां तक कि देश की बनी चीजें ही देश में निर्यात होती थीं, फिर भी उन पर इंगलैण्ड से आयी वस्तुओं की अपेक्षा कर अधिक लगता था। आकलैण्ड ने कोर्ट के डाइरेक्टरों की इच्छा के बावजूद उस अनीतिपूर्ण व्यवस्था को दूर किया।

प्रथम अफगान युद्ध (१८३८) और उसकी असफलता से भी भारत की आर्थिक स्थिति को धक्का पहुंचा था। अनेक टकसालों के बन्द हो जाने से सोने-चांदी का भाव भी गिर गया था। महाजनी का कारबार भी बन्द हो गया था। अंग्रेजों के अन्य उपनिवेशों में धन की पूर्ति के लिए, साम्राज्यवादी युद्धों का और भारत सरकार का इंगलैण्ड में व्यय, ऋणपत्रों ( ) पर मुनाफा आदि अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, भारतीय जनता पर बड़े-बड़े कर लगाए गए। फलत: धन विदेश जाने लगा और जनता दिन-पर-दिन दरिद्र होती गई। १८३३ में कम्पनी सरकार के अधिकार छीन लिए जाने पर भी, भारतीय सरकार की आर्थिक नीति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। देश का साम्राज्यवादी शोषण होता रहा।

स्वयं भारतीयों की परम्पराओं के कारण भी आर्थिक स्थिति का ह्रास हो रहा था। उत्तराधिकार के नियम ऐसे थे, जिनके कारण कृषि योग्य भूमि टुकड़ों में बंट जाती थी। नरेशों, राजाओं की विलासिता में कोई कमी नहीं थी। तत्कालीन युग में कम्पनी ने समाज के मध्यम वर्ग को भी विकास का अवसर नहीं दिया। कुछ मध्यवर्गीय व्यक्ति कंपनी सरकार की नौकरी अवश्य करते थे पर सरकार भू-संपत्ति पर निर्भर व्यक्तियों को नहीं पनपने देना चाहती थी। इस युग के अंत में हिन्दी प्रदेश में अनेक विभिन्न सरकारी योजनाएं कार्यान्वित होने लगीं, तब मध्यम वर्ग भी तेजी से विकसित होने लगा। इस समय तक शिक्षा का प्रचार होने लगा था, पाश्चात्य प्रभाव पड़ रहा था। इन प्रभावों के कारण मध्यम वर्ग अंग्रेजी राज्य में दिलचस्पी

१- आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका-डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ०८८

लेने लगा । आगे भारतेन्दु युग में समाज का नेतृत्व इसी वर्ग के हाथ में आया । यदि कम्पनी राज्य में ही मध्यम वर्ग विकसित हो जाता तो सम्भवत: उसी समय हिन्दी प्रदेश और साहित्य में पर्याप्त परिवर्तन होता । पर यह स्थिति नहीं होने के कारण साहित्यिक क्रान्ति नहीं हो सकी ।

युग-प्रवाह

भारतेन्दु युग

अंग्रेज भारत में आए,बसे।पर,भारत के आर्थिक संगठन पर पहले उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा । अत: क्रान्तिकारी परिवर्तन भी नहीं हुआ । आर्थिक संगठन पूर्ववत ही बना रहा । पर आलोच्यकाल में स्टीम पावर, स्टीम इंजिन और वैज्ञानिक साधनों का प्रचार तीव्र गति से बढ़ा । साथ ही फ्री ट्रेड (स्वतंत्र व्यापार) की आर्थिक नीति का सूत्रपात हुआ । फलस्वरूप देश के औद्योगिक संस्थानों को भारी धक्का पहुंचा । भारतीय मालों की बहुत अधिक कीमत होने से विदेशों में उनकी खपत समाप्त प्राय : हो गई । लेकिन भारत में विदेशी वस्तुओं की खपत बढ़ गई । वैज्ञानिक साधनों के अधिक प्रचार के कारण भारतीय ग्रामोद्योग समाप्त होने लगे । बड़े-बड़े औद्योगिक केन्द्र ढाका,मुर्शिदाबाद, सूरत आदि समाप्त प्राय हो गए ।

यातायात के साधन बढ़ गये थे । भारत में रेल बन गए थे । रेलों के बन जाने से भारत का कच्चा माल विदेशों में जाने लगा । विदेशों का तैयार माल भारत में बिकने लगा । उनकी कम कीमत और नवीनता ने भारतीय जनता को प्रभावित किया और दिन पर दिन उनका प्रचार अधिक होता गया ।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, भारतीय कृषि-धंधा भी अंग्रेजों की कूटनीति के कारण बरबाद हो रहा था । उद्योगधंधों के नाश होने से अधिकाधिक लोग कृषि की ओर आए । अत: कृषि-कर्मियों की संख्या बढ़ी । खेती का साधन पुराना था । अत: खेतों की तरफ अधिक लोगों के आने से वृद्धि तो विशेष हुई नहीं, बल्कि खेती पर अधिक लोगों का भार पड़ा । जीवन निर्वाह भी कठिन होने लगा ।

नहर सिंचाई का दर भी इतना अधिक था कि गरीब किसान उससे लाभ नहीं उठा सकते थे । दैव-कोप से भी कई बार फसल नष्ट हो गए । फलत: कई बार अकाल पड़े ।[1]
'सन् १८५० से १९०० के बीच में २४ अकाल पड़े। [illegible] से १९०० के बीच [illegible]'
इन सब कारणों से जनता की आर्थिक स्थिति और भी दयनीय हो गई ।

साम्राज्यवादी सरकार के शासन का व्यय भी भारतीय जनता ही वहन करती थी । लन्दन स्थित इण्डिया आफिस का खर्च भी भारत को ढोना था । यह खर्च लाखों पौण्ड वार्षिक था । ब्रिटेन के अन्य राजनीतिक कार्यों जैसे चीन में नियुक्त राजदूत , फारस में भेजे गये मिशन, अदन का शासन, अनेक ब्रिटिश कम्पनियों को दी गई सहायता की रकमों का भुगतान भी भारतीय खजाने से ही होता था । इनकी पूर्ति के लिए करों को लगाना आवश्यक था । इन करों से भारतवासी आक्रांत हो उठे । इनके अतिरिक्त अबीसीनिया(१८६७),ईराक(१८७५), अफगानिस्तान(१८७८),मिस्र (१८८२),सूडान(१८८५) और बर्मा (१८८६) के युद्धों में हुए भारी खर्च को देने के लिए भारत को बाध्य किया गया ।इस पूर्ति के लिए भी भारतीय जनता पर नये-नये टैक्स लगाए गए । परिणामस्वरूप भारतीय जनता चारों तरफ से पिसने लगी । अंग्रेज भारत में व्यापारी के रूप में आए थे । उनका मुख्य उद्देश्य आर्थिक शोषण ही था । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने कुटिल नीति, कूटनीति,बल प्रयोग, सभी उपाय किए कम्पनी के अधिकार प्राप्त होने पर,विक्टोरिया का शासन स्थापित होने पर भारतीय जनता में यह आशा बनी थी कि अब भारत का शोषण पहले जैसा नहीं होगा,लेकिन अंग्रेजों की आर्थिक नीति पहले जैसी ही बनी रही ।

१८८५ में कांग्रेस बनी, तब प्रारम्भ में उसने राजनीतिक स्वतंत्रता से अधिक जोर आर्थिक विकास पर दिया । लेकिन १९ वीं शताब्दी के अन्ततक कोई आर्थिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हो सका, वह पूर्ववत् ही बनी रही । शोषण अंग्रेजों का ध्येय था, वह होता रहा । इसका उल्लेख एक अंग्रेज ने इस प्रकार किया है —" हमारी पद्धति एक स्पंज के समान है । जो गंगा तट से सब अच्छी चीजों को चूसकर टेम्स तट पर ला निचोड़ती है ।"[2]

१- पृष्ठभूमि उन्नीसवीं शताब्दी— डा० रामकुमार वर्मा

२- हिन्दी कविता में युगान्तर-डा०सुधीन्द्र,पृ०२४, १९५७ ई०

द्विवेदी युग

बीसवीं सदी के आरम्भ से राजनीतिक मांगों में उग्रता आने लगी थी। परिणामस्वरूप आर्थिक क्षेत्र में भी उग्र कदम उठाना आरम्भ हुआ। आलोच्यकाल के पूर्व ही राजनीतिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में नव जागरण आ रहा था। इस युग में नव चेतना के प्रति उद्बुद्धता और बढ़ी। नव चेतना से अभिभूत भारतीय जनता ने अपनी विपन्नता देखी। उसका कारण जाना। वह कारण था अंग्रेजी राज्य द्वारा शोषण। राष्ट्रीय चेतना से प्रेरित जनता ने इस शोषण के विरुद्ध आवाजें उठायीं।

१९ वीं श० में अंग्रेजों ने शोषण के लिए जिन भारतीय उद्योग धंधों को नष्ट करने का प्रयास आरम्भ किया था, वह बीसवीं श० के प्रथम दो दशकों में चलता रहा। मैनचेस्टर की मिलें भारतीय कच्चे माल से पनपती रहीं। भारतीय कच्चे माल के अभाव में उनका फलना-फूलना असम्भव था। इधर भारतीय अपने उद्योगधंधों के नष्ट होने की वजह से विदेश में बनी चीजों पर निर्भर रहने लगे।

आलोच्यकाल के पूर्ववर्तीकाल में ही भारतेन्दु ने इसके विरोध में आवाजें उठायी थीं। इन दोनों कदमों के विरोध में उन्होंने स्वदेशी का नारा लगाया था। पर यह कार्यान्वित नहीं हो सका था। विदेशी बहिष्कार ही स्वदेशी आन्दोलन है। इस आन्दोलन से देश के उद्योग-धंधों के विकास की सम्भावना थी। साथ ही, विदेशी माल की खरीद बन्द हो जाने से देश की सम्पत्ति देश में ही रह जाती। कांग्रेस के कार्यों में आर्थिक नीति का स्थान तो था, पर अभी तक वह इस दिशा में कोई विशेष सक्रिय कार्य नहीं कर सकी थी। भारतीय जनता ने १९०५ ई० में, पहली बार स्वदेशी आन्दोलन के माध्यम से साम्राज्यवाद की आर्थिक नीति के विरुद्ध क्रांति भावना व्यक्त की। फलस्वरूप देश भर में विदेशी वस्त्रों की होली जली। स्वदेशी वस्त्रों को अपनाने की प्रतिज्ञाएं हुईं। यह आन्दोलन व्यापकरूप में बंग-भंग के बाद रहा। "कर्जन के शासन का राजनीतिक-आर्थिक फल बहिष्कार है।"[१]

अन्य अनेक प्रकार के व्यय को भी भारत वहन कर रहा था। प्रमुख थे, भारतीय शासन सूत्र संचालन का असाधारण व्यय दिल्ली दरबार के दुर्वह व्यय-भार, प्रथम महासमर का अपार व्यय आदि। एक ओर जनता अकाल आदि से पीड़ित थी,

---

१- द अवेकनिंग आफ इण्डिया—जे०आर०मैकडोनाल्ड, पृ०२०२

दूसरी ओर उन पर लादा यह व्यय-भार । उनकी स्थिति कारुण्य हो उठी । उनमें अंगरेजी राज्य की आर्थिक नीति के प्रति भी रोष-भाव प्रबल होने लगा । बेकारी की समस्या भी बढ़ रही थी । ऊंची-ऊंची डिग्रियों के बावजूद, युवक बेकार थे । अत: उनके मन में अंगरेजी शासन के प्रति विरोध का भाव बद्धमूल होने लगा । नवयुवक आतंकवादी कार्यों के प्रति आकृष्ट होने लगे । उन नवयुवकों में जो बेकार थे, क्रान्ति तत्त्व उभरने लगे और वे अंगरेजी राज्य को नष्ट करने के लिए, सुधार की आशा का परित्याग कर, हिंसात्मक कार्यों की ओर उन्मुख हुए ।

किसान-वर्ग में भी क्रान्ति-चेतना सक्रिय होने लगी थी । कारण, प्राचीन युग की तरह गांव अब राजनीतिक तथा आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र नहीं रह गए थे । खेती पर बढ़ते हुए बोझ के फलस्वरूप तथा जमींदारों के शोषण के कारण कृषकों की दशा दिनोंदिन दयनीय होती जा रही थी । शोषण एवं अत्याचार के अंगरेजी शासन में उनकी आस्था भी नहीं रही । इधर राजनीतिक-जागृति ने उनका ध्यान भी देश की परतंत्रता की ओर आकृष्ट किया । परिणामस्वरूप उनमें भी क्रान्ति-चेतना सक्रिय हुई ।

अंगरेज निलहे साहबों की अत्याचारपूर्ण नीति ने बंगाल और बिहार के किसानों को तबाह कर डाला था । महात्मा गांधी का ध्यान उनकी दर्दनाक स्थिति की ओर गया । १९१७ ई० में उन्होंने गोरे निलहों का विरोध सत्याग्रह के अस्त्र से कर उनका उद्धार किया । उनकी प्रयोग-भूमि चम्पारण थी । १९१८ ई० में गांधी जी ने गुजरात के खेड़ा और अहमदाबाद के अकाल ग्रस्त कृषकों को कष्ट मुक्त करने के लिए सत्याग्रह का सहारा लेकर पूरी सफलता पाई । इससे किसानों की विचार-प्रक्रिया की नवीन दिशाएं उन्मुक्त हुईं । उनके मन में अपनी स्थिति से उबरने की भावना जगी । इस प्रकार कृषकों के विचार-जगत में राष्ट्रीय चेतना का क्रान्तिकारी बीज पड़ा ।

आलोच्यकाल में शोषण का रूप और था । खेतिहर मजदूर एक और अन्य प्रकार से लूटे जाते थे । अंगरेज उपनिवेशों में खेती करने के लिए भारत से प्रतिज्ञाबद्ध मजदूर ले जाए जाते थे । वहां इन मजदूरों के साथ दुर्व्यवहार किया जाता था और भारत लौटने भी नहीं दिया जाता था । अशिक्षित, खेतिहर मजदूरों को अनेक प्रलोभन देकर प्रतिज्ञापत्र पर अंगूठे का निशान लगवा लेते थे । ऐसे अंगरेजों को जनता `गिरमिटिया साहब' कहती थी । इस अमानुषिक कार्य के विरुद्ध भी गांधी जी ने आवाज उठाई और सत्याग्रह अस्त्र का प्रयोग किया । इसमें भी उन्हें सफलता मिली ।

इस प्रकार यह युग आर्थिक परिस्थितियों की दृष्टि से शोषण और उत्पीड़न का युग अवश्य रहा, पर इस शोषण की प्रतिक्रिया स्वरूप तीव्र क्रांति भी व्याप्त रही । भारतीय जनता के विचारों में नये क्षितिज का उन्मेष हुआ, जागृति की नयी किरणें फूटीं ।

छायावाद युग

इस युग की आर्थिक परिस्थितियों का पर्यवेक्षण पूंजीवाद के विकास और शोषण का पर्यवेक्षण है । इस काल में सामन्ती अर्थ व्यवस्था टूटने लगी और उसके स्थान पर पूंजीवादी अर्थ तंत्र आया । भारत में अभी उद्योग धंधों का विकास बहुत कम हुआ था । कारण था-पराधीनता । जब कि इंग्लैण्ड में औद्योगीकरण बहुत पहले हो चुका था । अंग्रेज भारत से कच्चा माल लेने और उसे अपना बाजार बनाए हुए थे । अत: भारतीय जनता के बहुत प्रयत्नों के बावजूद भारत में औद्योगिक क्रान्ति की लहर नहीं फैल सकी, पर आलोच्यकाल में पूंजीवादी व्यवस्था के आगमन के साथ ही भारत की औद्योगिक उन्नति प्रारम्भ हुई । देश के औद्योगीकरण की बात माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिफार्म में भी कही गयी थी, पर उसके पीछे अंग्रेजों की कूटनीति ही थी । रिपोर्ट में कहा गया था :

"आर्थिक और सैनिक दोनों ही दृष्टियों से साम्राज्यवादी हितों की यही मांग है कि अब आगे से हिन्दुस्तान के प्राकृतिक साधन अच्छी तरह काम में लाये जायं । हिन्दुस्तान का औद्योगीकरण होने पर साम्राज्य की ताकत और कितनी बढ़ जायगी, इस हम अभी इसका हिसाब नहीं लगा सकते ।"[1]

भारत में उद्योग-धंधों को प्रारम्भ करने के पीछे अंग्रेजों का उद्देश्य युद्ध जनित औद्योगिक ह्रास की क्षतिपूर्ति करना था । इसके लिए उन्होंने भारतीय पूंजी को भी आगे लाने को प्रोत्साहित किया । इसके पीछे उनका उद्देश्य था पूंजीपतियों के विकास द्वारा भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के आर्थिक पक्ष को निष्क्रिय बनाना । उन्हें भारतीय पूंजी अथवा उद्योग से विदेशी उद्योग-धंधों की तरह खतरा भी नहीं था ।

१- माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट, पृ० २६७ , सन् १९१८ ई०

युद्धोपरान्त आलोच्यकाल में भारत में अन्य विदेशी देशों के सामानों का आयात विशेषरूप से बढ़ रहा था । अंगरेज यह नहीं चाहते थे कि भारत अन्य देशों का मालगोदाम बन जाए । अत: उन्होंने अन्य विदेशी देशों के आधार पर कर की मात्रा बढ़ाई और दूसरी ओर भारतीय उद्योग धंधों को प्रोत्साहित किया । इससे अंगरेजों को यह आशा भी बंधी कि पूंजीपति वर्ग उनकी ओर झुकेगा । फिर युद्ध-काल में अंगरेजों ने भारत के औद्योगिक विकास का वादा भी किया था । अत: आलोच्य काल का पूर्वार्द्ध औद्योगिक विकास की प्रबल चेतना से भरा है ।

भारतीय उद्योग अंगरेजों की इस नीति के फलस्वरूप पनपने लगा । १९१३ई० से १९३३ ई० के मध्यभारत के औद्योगिक उत्पादन में ५६ प्रतिशत की वृद्धि हुई । १९११ में मिल मजदूर २१ लाख थे । १९२१ में वह संख्या २६ लाख हो गई । इस काल में कोयले और इस्पात के उत्पादन में भी वृद्धि हुई । १९१३ ई० में भारत में व्यवहृत होने वाली वस्तुओं का तीन चतुर्थांश विदेश से आता था । १९३२-३४ ई० में यह क्रम उलट गया । अब एक चौथाई माल ही विदेश से आने लगा । लोहे का सामान जो भारत में व्यवहृत होता था, तीन चौथाई बनने लगा ।

इससे स्पष्ट है कि आलोच्यकाल में देश के औद्योगीकरण का बहुत विकास हुआ, लेकिन अंगरेज भारतीय पूंजी का विकास बहुत अधिक नहीं चाहते थे । इसलिए १९२४ ई० से उन्होंने उन्हीं उद्योगों को बढ़ाने में सहायता की दी, जिनमें अंगरेजी पूंजी लगी थी । महायुद्ध के समय अंगरेजों द्वारा जो नीति बरती जाती थी, वह अब नहीं रही । अत: सरकार के विरुद्ध भारतीय पूंजीवाद कर वा खड़ा हुआ और राष्ट्रीय कांग्रेस को जो भारत की औद्योगिक उन्नति का पक्षपाती था, सहायता देने लगा । राष्ट्रीय क्रान्ति की दिशा में पूंजीपति वर्ग, सरकारी नीति से असन्तुष्ट होकर ही बढ़ा था ।

सरकार से १९२४ ई० में लोहा उत्पादन के लिए संरक्षण की मांग की गई । पर वह मांग अस्वीकृत हुई । साथ ही उसे दी जाने वाली सरकारी सहायता भी बन्द हो गई । ब्रिटिश आयात के ऊपर चुंगी विशेष रूप से कम कर दी गई । सरकार की मुद्रा विनिमय की नीति से उन्हें बहुत धक्का लगा । अब सरकारी सहायता तो बन्द थी । लेकिन विदेशी उद्योगपतियों की सहायता से भारतीय पूंजी ने प्रगति करना आरम्भ किया । पर रुपये की कीमत कम हो जाने से देशी उद्योगधंधों

की स्थिति चिन्तनीय थी ।

स्पष्ट है कि इस नीति के कारण १६२८ ई० के बाद भारतीय पूंजी से प्रारम्भ होने वाले उद्योग-धंधों की वृद्धि अल्प ही हो सकी ।

इन्हीं दिनों रिजर्व बैंक स्थापित हुआ । इससे देश का सम्पूर्ण अर्थ तंत्र अंगरेजों के हाथ में आ गया । रुपये का मूल्य कम हो गया था । अतः भारतीय वस्तुओं की कीमत गिर गई जब कि अंगरेजों का सूद और कर्ज बहुत ज्यादा हो गया । फलतः देश की दशा दयनीय हो उठी और उसका आर्थिक जीवन शोषण के परिणामस्वरूप जर्जर हो गया ।

कल-कारखानों के खुलने के कारण, देश के प्राचीन उद्योग और भी नष्ट हो गए थे । शिल्प उद्योग बरबाद हो चुका था । इस उद्योग से जितने लोग आजीविकोपार्जन करते थे , अब मिलों में उतने व्यक्ति काम नहीं पा सके । डी०एच० बुकनन का यह कथन भारतीय औद्योगिक स्थिति के बारे में ठीक ही है :-

थोड़े से बड़े बड़े औद्योगिक केन्द्र जरूर हैं, लेकिन दस्तकारी से जितने लोगों की रोजी चलती थी, कारखानों से उतने अधिक लोगों को रोजी नहीं चलती । देश के प्रतिवर्ष के आयात से निर्यात कम है[१]।"

फलतः देश में बेकारी बढ़ती गई । खेती के प्राचीन ढंग पर, अधिक लोगों का जीवन-निर्वाह सम्भव नहीं था । अतः देश की आर्थिक स्थिति दयनीय होती गई ।

अंगरेजों का एकाधिपत्य बैंक,बीमा, एक्सचेंज,जहाज, रेल ,चाय, काफी,रबर, जूट आदि उद्योगों पर था । इससे वे देश का आर्थिक शोषण करते रहे । प्रथम महायुद्ध का खर्च भी भारत को व्यय करना पड़ा । करों की संख्या बढ़ती जा रही थी । ~~राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने वालों की~~ राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने वालों की ~~सम्पत्ति~~ सम्पत्ति जब्त की गई थी । इन सब कारणों का समवेत प्रभाव देश की आर्थिक स्थिति पर पड़ा और देश-दशा अत्यधिक शोचनीय होती गई ।

१- हिन्दुस्तान में पूंजी कारबार की उन्नति -डी०एच० बुकनन, पृ०४५१ सन् १६३४ ई०

इस काल में आर्थिक स्थिति का एक और नवीन मोड़ आया । वह था पूंजीवाद का विरोध कर । मजदूर वर्ग के उन्नयन की आकांक्षा और उनका शोषण मिटा देने का अभियान । कम्युनिस्ट पार्टी इस दिशा में सबसे सक्रिय रही । इसके अतिरिक्त जवाहरलाल नेहरू, आचार्य नरेन्द्र देव, जयप्रकाश नारायण जैसे कांग्रेसी नेता भी इस दिशा में काम करते रहे । ये नवयुवक थे और समाजवादी अर्थ व्यवस्था के पक्षधर थे ।

कम्युनिस्ट पार्टी ने १६२८के आस पास मजदूर और किसानों में जागरण की चेतना भरी । उनके निर्देशन में ही किसान-मजदूर आन्दोलन प्रगति कर रहा था । गुजरात में किसानों का जोरदार आन्दोलन सरकार के विरुद्ध हुआ । इस आन्दोलन से भी सारे देश में जागृति फैली मजदूरों की हालत अत्यधिक दयनीय थी । वे बेहद अभाव ग्रस्त थे । उनमें वर्ग-चेतना का विकास हुआ । उनके द्वारा विदेशी पुंजीपति ज्यादा लाभ उठाते ही थे । इसलिए उन्होंने शोषण का विरोध किया । मजदूरों की अशान्ति से आर्थिक व्यवस्था में नवीन चेतना उत्पन्न हुई ।

इस वर्ग चेतना के परिणामस्वरूप बंगाल के जूट मिल में हड़तालें हुईं । टाटा आयरन वर्क्स तथा बम्बई की कपड़ा मिलों में भी हड़तालें हुईं । मजदूरों के आन्दोलन पर सरकार ने मार्च १६२६ में कड़ा रुख अख्तियार किया और मजदूरों के कई नेता कैद कर लिए गए । इस प्रकार मजदूर वर्ग की चेतना के फलस्वरूप एक ओर अंग्रेजों की शोषण नीति का विरोध हुआ तो दूसरी ओर भारतीय पूंजीपतियों की भी हानि हुई ।

इस काल में करबन्दी आन्दोलन शुरू हुआ और नमक कानून भंग किया गया ।

प्रगतिवाद युग

इस युग में देश की आर्थिक स्थिति कई-कई उतारों-चढ़ावों से आंदोलित होती रही । इस दशा में देश की आर्थिक स्थिति और दयनीय होती गई । महायुद्ध के आर्थिक बोझ ने देश को अत्यन्त क्षति पहुंचाई ।

शोषण की नीति जो अंग्रेजों द्वारा प्रारम्भ हुई थी, उसमें वृद्धि ही होती गई । इस काल में भी भारत से इंग्लैण्ड जाने वाला खिराज अधिकाधिक बढ़ता गया । प्रस्तुत आंकड़ों के अनुसार १६४५ ई० में इंग्लैण्ड प्रतिवर्ष भारत से १३५० लाख पौण्ड खिराज वसूल करता था । साथ ही बैंक पूंजी से हुए नफा द्वारा शोषण

भी बढ़ रहा था ।

वैसे भारत औद्योगिक विकास की दिशा में धीरे-धीरे अग्रसर था, पर वह प्रगति विशेषत: वस्त्र उद्योग की दिशा में ही थी। औद्योगीकरण में भारी उद्योग महत्त्वपूर्ण होते हैं । जैसे लोहा, इस्पात, मशीन आदि का उत्पादन । भारत इस दिशा में विशेष उन्नति नहीं कर सका था । साम्राज्यवादी शक्तियों ने विश्वयुद्धकालीन उद्योग-धंधों का विकास अवरुद्ध कर रक्खा था । बैंक व्यवस्था पर अंग्रेजों का नियंत्रण था और वे भारत के औद्योगिक और स्वतंत्र आर्थिक प्रगति में सदैव बाधक बने रहे । इसी से भारतीय उद्योगों पर ब्रिटिश पूंजी का आधिपत्य भी बना रहा ।

युद्धकाल में भारत का शोषण अनेक ढंग से होता रहा । औद्योगिक विकास भी नहीं हो सका । भारत की राष्ट्रीय आय का एक तिहाई अंश सैनिक रक्षा में व्यय हुआ । युद्ध का बृहत् व्यय मुद्रा-प्रसार के द्वारा पूरा किया गया । १९३९ ई० से १९४५ ई० के बीच भारत में ६ गुने अधिक नोट चलाए गए । इससे फौजी ठेकेदार और मिलों के स्वामी बेहद लाभान्वित हुए । क्षुधित जनता इस बोझ से पिस उठी । जीवन की आवश्यकताओं के अभाव में जनता की स्थिति दयनीय रही । मंहगी बढ़ती गई । जनता अनेक कष्टों से जूझती रही ।

इंगलैण्ड की स्थिति भी महायुद्ध की आर्थिक विशृंखलताओं के कारण नाजुक थी । अंग्रेजों की स्थिति राजनीति-दिशा में तो चिन्त्य थी ही, आर्थिक क्षेत्र में भी यही दशा हो गई । ब्रिटिश पूंजीवाद बहुत कमजोर हो गया । अत: अब इस दिशा में अंग्रेजी पूंजी ने भारतीय स्वाधिकारी पूंजीपतियों से समझौता आरम्भ किया । १९४५ के बाद विशेषत: ऐसे समझौते हुए । बिड़ला-नफील्ड, टाटा-इम्पीरियल केमिकल, बिड़ला-स्टूडीबेकर वालचन्द-क्राइसलर आदि महत्त्वपूर्ण समझौते हैं ।

पूंजीवादी शक्ति और शोषण-वृत्ति का विरोध भारत में, समाजवादी संस्थाओं द्वारा आलोच्यकाल के पूर्व ही शुरू हो गया था । पूंजी और श्रम का विरोध विकसित हो रहा था तथा वर्ग-चेतना प्रखर हो गई थी । इस युग में वर्ग-चेतना तीव्रतर हुई । कारण यह था कि महायुद्ध की वजह से मंहगी बढ़ गई थी । इससे मजदूरों और किसानों की दशा शोचनीय होती जा रही थी । पूंजीपतियों तथा व्यापारियों के शोषण चक्र ने उन्हें जकड़ा दिया था । इसीलिए विरोध का स्वर तीव्रतर होने लगा ।

किसानों की दशा भी शोषण के कारण दयनीय होती जा रही थी। उन्हें कुल आमदनी का एक तिहाई हिस्सा लगान के रूप में दे देना पड़ता था। उन पर ऋण-बोझ भी बढ़ता जा रहा था। कृषकों पर ४० करोड़ पौण्ड ऋण १६२१ में था। वह ऋण १६३७ में १३५ करोड़ पौण्ड हो गया।

महायुद्ध के समय बर्मा से चावल आना बन्द हो गया। इससे देश अकालग्रस्त हो गया। बंगाल में भीषण अकाल पड़ा। प्रो० के० पी० चट्टोपाध्याय के अनुसार इस अकाल में ३५ लाख आदमी मरे। विभिन्न बीमारियों से १२ लाख मनुष्य मौत के शिकार हुए। इस प्रकार किसानों की आर्थिक स्थिति भी छिन्न-भिन्न थी। मंहगाई का एक नमूना यह होगा कि १६४२ ई० में जो चावल ६रु० मन था, १६४३ में वह ४०रु० मन बिकने लगा। देहातों में वह १०० रु० मन तक बिका। खेती और ग्रामोद्योग को भी इस अकाल से बहुत हानि हुई।

इस काल में मजदूरों की संख्या में अत्यन्त वृद्धि हुई। १६३८ में मजदूरों की संख्या करीब ६ करोड़ थी। मजदूरों की दशा अत्यन्त दयनीय थी। वे वर्ग-चेतना से जाग उठे थे। ट्रेड यूनियनों का कार्य भी इस दिशा में बहुत महत्त्वपूर्ण रहा। अब कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों की स्थापना के साथ ही ट्रेड यूनियनों में अधिक क्रियाशीलता आई। हड़तालों की एक बड़ी लहर देश में १६३७-३८ में आई। १६३७ में हड़तालों की संख्या ३७६ थी।

जब १६३६ ई० में द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हुआ। मजदूर वर्ग ने राष्ट्रीय आन्दोलन में महत्त्वपूर्ण कदम उठाये। 'जब कि राष्ट्रीय आन्दोलन के नेतागण अभी टालमटोल करने में ही लगे हुए थे, सबसे पहले मजदूर वर्ग ने साम्राज्यवादी युद्ध के खिलाफ लड़ाई का बिगुल बजाया। २ अक्टूबर १६३६ को साम्राज्यवादी युद्ध के विरोध में बम्बई के नब्बे हजार मजदूरों ने हड़ताल की।'[१] इस प्रकार मजदूर वर्ग ने साम्राज्यवाद के विरोध में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को नवीन शक्ति दी।

१- भारत: वर्तमान और भावी- रजनी पामदत्त, पृ०१६३, सन् १६५६ ई०

इस प्रकार साम्राज्यवादी शोषण देश की स्थिति को बदतर बना रही थी । इधर युद्ध जनित मंहगी और अकाल ने देश की आर्थिक स्थिति और भी जर्जर कर दी । आर्थिक दृष्टि से भारत अत्यन्त दयनीय हो उठा ।

इस काल में वर्ग-चेतना अत्यधिक विकसित हुई । देशी और विदेशी पूंजीपतियों के विरोध में मजदूर संगठित होकर संघर्ष करने लगे और आर्थिक शोषण को समाप्त करने का प्रयत्न करने लगे ।

१९४७ में स्वतंत्रता प्राप्त करने पर, विभाजन से, भारत में अनेक आर्थिक अव्यवस्थाएं उत्पन्न हुईं । भारत में बनी इ नई राष्ट्रीय सरकार को युद्धकालीन अर्थ-व्यवस्था के दुष्परिणामों और मुद्रास्फीति जन्य विषम परिस्थितियों से टकराना पड़ा । भारत में चावल,गेहूं,कपास और पटसन जैसे कच्चे मालों की कमी हो गई । यह विभाजन का फल था, क्योंकि इनको पैदा करने वाले क्षेत्र पाकिस्तान में चले गये । फिर स्वतंत्र भारत में पाकिस्तान से लाखों विस्थापित आए, जिनके पुनर्वास और सहायता देने का विषम दायित्व भारतीय सरकार पर पड़ा । उत्पादन में तो कोई वृद्धि थी नहीं । अत: सभी चीजों का मूल्य बेतरह बढ़ने लगा । आयात की भी कठिनाइयां थीं, क्योंकि परिवहन अव्यवस्थित था और औद्योगिक उपकरण भी अनुपयुक्त थे । कांग्रेस द्वारा जनता को आर्थिक उन्नयन का आश्वासन मिला था । अत: अब जनता ने आर्थिक दशा को सुधारने की जोरदार मांग आरम्भ की । इस प्रकार अनेक कठिनाइयों का समाधान कर सरकार को आगे बढ़ना था । इन कठिनाइयों की विशालता की ओर संकेत करते हुए श्री वी०के०आर०वी० राव ने ठीक ही लिखा है, "सच तो यह है कि स्वतंत्र भारत की नयी सरकार ने अगम-अपार आर्थिक कठिनाइयों के बीच जीवन की राह पर कदम उठाया था और जो आस्थावान थे, उनके अतिरिक्त किसी को भी यह स्पष्ट न था और न यह निश्चय था कि परिणाम क्या होगा ।"[1]

इस प्रकार देश के समक्ष कई आर्थिक समस्याएं खड़ी थीं । खाद्य,कच्चेमाल, परिवहन,औद्योगिक ढांचा,शरणार्थियों के पुनर्वास की समस्याएं तत्काल समाधान चाहती थीं ।

१- स्वतंत्रता के बाद भारतीय अर्थ व्यवस्था : एक सिंहावलोकन-वी०के०आर०वी०राव, आजकल,फरवरी,१९५६ ई० ।

स्वतंत्रता के बाद प्रारम्भ में तीन वर्षों तक सरकार राजनीतिक समस्याओं में अधिक उलझी रही, आर्थिक समस्याओं में कम । लेकिन आर्थिक समस्याओं की पूर्ण उपेक्षा की गई, ऐसी बात नहीं है । खाद्य समस्या विषम थी । इसका समाधान आवश्यक था । १९४८ ई० में खाद्यान्न पर से नियंत्रण हटा लिया गया । शुरू में इसकी भीषण प्रतिक्रिया हुई और खाद्यान्नों का दाम तीव्रतर होने लगा । विवश होकर, आठ महीने के पश्चात् सरकार को पुनः उसे नियंत्रित करना पड़ा । खाद्य सामग्री का बेहद अभाव, इस तेजी का कारण था और इसके समाधान के लिए विदेशों से अनाज मंगाना आवश्यक था । साथ ही देश के उत्पादन में वृद्धि की भी आवश्यकता थी । अतः सरकार ने दोनों दिशाओं में प्रयत्न प्रारम्भ किया ।

निष्कर्ष

बाह्य परिस्थितियों का क्रान्ति पर समवेत प्रभाव

ऊपर जिन परिस्थितियों का विश्लेषण किया गया है, वे भारत की राष्ट्रीय क्रान्ति-भावना के उद्भव तथा विकास की दिशा में महत्वपूर्ण प्रेरक स्थितियां हैं। उनके संघटन से भारतीय जनता के हृदय में क्रान्ति की विचारधारा का उदय हुआ।

डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति को राष्ट्रीय चेतना के उदय का श्रेय दिया है। 'पश्चिम की एक जीवित जाति' के सम्पर्क से राष्ट्रीय-चेतना का उद्भव होना उन्होंने घोषित किया है[1]। डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा भी स्वीकार करते हैं कि अंग्रेजी के प्रभाव से हमारी सुप्त विमूर्च्छित राष्ट्रीय भावना जाग्रत हुई[2]। स्व० जवाहरलाल नेहरू की दृष्टि से भी भारत में परिवर्तन और क्रान्ति लाने का श्रेय अंग्रेजों को है[3]। डा० रामविलास शर्मा ने इससे भिन्न मत प्रकट किया है, 'अंग्रेज साम्राज्यवादियों ने भारतीय जनता को गुलामी की शिक्षा दी। भरसक उसके राष्ट्रीय सम्मान और उसकी प्रतिरोध-भावना को कुचलने की कोशिश की'[4]।

अंग्रेजी जाति और भाषा के सम्पर्क से भारत में शिक्षा की नई प्रणाली और नये विचार का दृष्टिकोण उदित हुआ। बौद्धिक चेतना के प्रकाश में परम्परित और जर्जर मान्यताओं को नये दृष्टिकोण से परखा जाने लगा। परम्परा के स्थान पर नवीनता ले आने का बहुत नहीं तो कुछ श्रेय अंग्रेज और अंग्रेजी को देना होगा किन्तु क्रान्ति के आविर्भाव के लिए किसी जाति के सम्पर्क अथवा उसकी प्रेरणा की आवश्यकता नहीं होती। क्रान्ति असंतोष की घुटन से

१- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र-- डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय,पृ०३ सन् १९५८ ई०

२- हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव-- डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा,पृ०५६,सं०२०११

३- डिस्कवरी आफ इण्डिया-- जवाहरलाल नेहरू,पृ०२५८-६९, सन् १९५६ ई०

४- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र -- डा० रामविलास शर्मा, पृ०३२, सन् १९५३ ई०

पैदा होती है और अत्याचार,उत्पीड़न की वृद्धि से तीव्रतर होती जाती है । इसलिए क्रान्ति के उद्भव का श्रेय अंग्रेजी और अंग्रेजों के सम्पर्क को नहीं दिया जाना चाहिए क्योंकि भारतीय जन-जीवन में क्रान्ति की एक सुदीर्घ परम्परा है । यह ऐतिहासिक परम्परा अंग्रेजी तथा अंग्रेजों के सम्पर्क से उद्दीप्त हुई है, इतना अवश्य मानना होगा । आर्य समाज,रामकृष्ण मिशन आदि संस्थाओं ने पुनर्जागरण को प्रेरणा देकर क्रान्ति को अधिक सक्रिय बनाया । 'आर्य समाज में बुद्धिवाद,उपयोगितावाद,राष्ट्रीयता तथा प्राचीन हिन्दू आदर्शों का विचित्र संयोग था ।'[1] जकारिया के अनुसार 'राष्ट्र के राजनीतिक उद्धार के आन्दोलन का रूप धारण करने से बहुत पहले इसने अनेक धार्मिक तथा सामाजिक सुधारों का सूत्रपात किया'[2] । इससे प्रकट है कि अंग्रेजों के सम्पर्क के अतिरिक्त आर्य समाज आदि धार्मिक तथा सांस्कृतिक संस्थाओं ने सुधारवाद के माध्यम से राष्ट्र को नये ढंग से सोचने तथा वर्तमान अधोगति से मुक्ति पाने की प्रेरणा दी, जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय क्रान्ति का स्वरूप प्रकट हुआ । इन संस्थाओं ने तोड़ने तथा नयी व्यवस्था स्थापित करने की दशा में महत्वपूर्ण योगदान किया है ।

भारत की राष्ट्रीय क्रान्ति का स्वरूप अन्य क्रान्तियों की तरह प्रारम्भ में सुधारवादी था । राजनीतिक,धार्मिक,सामाजिक सभी संस्थाओं ने सुधार की मांग की । राजनीतिक नेताओं ने कांग्रेस तथा अन्य संस्थाओं के मंच से शासन में सुधार करने की प्रार्थनाएं तथा निवेदन किए । धार्मिक संस्थाओं ने धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्र में सुधार करने का मंत्र दिया । 'यही सरकार की दृष्टि भी थी । शिक्षा प्रसार द्वारा वह इसी मनोवृत्ति का विकास करना चाहती थी जिससे भविष्य में क्रान्ति की सम्भावनाओं तथा उग्र वादिता को प्रश्रय न मिले ।'[3]

अंग्रेजों ने भारतीय जनता को अपने कार्यों से अपमानित,पीड़ित तथा शोषित किया । इसकी प्रतिक्रिया भारतीय मस्तिष्क तथा जीवन में प्रकट हुई । शासन-व्यवस्था में सुधार की कामना समानता के आधार पर की गई । काले-गोरे

१- रिनैसेन्ट इण्डिया—जकारिया, पृ०३७, १९३३ ई०

२- वही, पृ० १५

३- उन्नीसवीं शताब्दी की पृष्ठभूमि — रामकुमार वर्मा

के विभेद से भारतीय जनता बहुत अपमानित हुई । उसके अनेक अधिकार उससे ले लिए गये । इसका परिणाम यह हुआ कि लोगों में प्रतिक्रिया और विरोध प्रकट हुआ । यह विरोध सक्रिय नहीं हो सका । इस कारण क्रान्ति का स्वरूप तथा उसकी क्रियाशीलता दृष्टिगत नहीं होती । केवल सुधारों की प्रार्थना तथा उसके लिए निवेदन करने का माध्यम ही इस काल की जनता को प्राप्त हुआ । इस सुधार में क्रान्ति मूलक विरोध का भाव भी निहित है । प्रत्येक राष्ट्र में क्रान्ति की पृष्ठभूमि ऐसी ही होती है । सुधारों की मांग को यह विरोध-भावना अक्रान्ति कहकर टाली नहीं जा सकेगी । यह क्रान्ति की पृष्ठभूमि है, जिसके आधार पर क्रान्ति के अधिक क्रियाशील तथा सशक्त चरण आगे बढ़ सके ।

प्रार्थना और निवेदन के द्वारा प्रकट की गई मांग के कारण कुछ लोग भारतीय राष्ट्रीय क्रान्ति को राजनीतिक भिक्षा वृत्ति बताते हैं । एम०एन०रायइस काल के राजनीतिज्ञों के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करते हुए कहते हैं --" भारतीय राष्ट्रीयता के जनकों को राष्ट्रवादी की अपेक्षा वैधानिक डेमोक्रेट और सुधारक ही कहा जा सकता है ।[1]" कहा जा चुका है कि भारतीय राष्ट्रीयता का स्वरूप प्रारम्भ में सुधारों की मांग के द्वारा अपना विरोध प्रकट करना था और क्रान्ति तथा राष्ट्रीयता के प्रारम्भिक काल में इस तरह की भावना ही पैदा होती है । सरकार मांगों तथा सुधारों के मार्ग में जितनी ही अधिक बाधा डालती है,राष्ट्रीय क्रान्ति अधिक विकसित और तीव्र होती जाती है । इसलिए यह नहीं सोचना चाहिए कि भारतेन्दु युगीन राष्ट्रीय चेतना में क्रान्ति के तत्व तथा क्रान्तिमूलक भावना नहीं है । सामाजिक,धार्मिक और आर्थिक दिशाओं में भी क्रान्ति के अन्य स्वरूपों का विकास हुआ । राजनीतिक दासता के युग में उत्पन्न होने के कारण विरोधमूलक क्रान्ति का स्वरूप उक्त काल में प्रकट हुआ । राष्ट्रीय क्रान्तिकारियों की दृष्टि ज्यों-ज्यों स्पष्ट और विकसित होती गई, विरोध में शक्ति और क्रियाशीलता बढ़ने लगी ।

कहा जा सकता है कि क्रान्ति का विरोध अधिक उग्र होता है । भारतेन्दु काल की परिस्थितियां इस योग्य न थीं कि उग्र क्रान्ति प्रकट हो,क्योंकि

१- इंडिया इन ट्रांजिशन-- एम०एन० राय, पृ० १९०, सन् १९२२ ई०

५७ की क्रान्ति में बड़ी बेरहमी से क्रान्तिकारियों का दमन किया गया था । क्रान्ति के उपकरणों का भी अभाव था । मानसिक दृष्टि से राष्ट्र तीव्र और उग्र विरोध के लिए प्रस्तुत नहीं था । इसलिए आलोच्य काल के प्रारम्भ में उग्र राष्ट्रीयता की अपेक्षा करना उचित नहीं प्रतीत होता ।

इन निवेदनों और मांगों के माध्यम से भारतीय जनता ने वर्तमान शासन के प्रति अपना असंतोष प्रकट किया । विक्टोरिया के घोषणापत्र के प्रति असंतोष रंग भेद से क्षोभ, सरकारी नौकरियों में भारतीय जनता के लिए न लिए जाने से असंतोष वर्तमान था । आर्थिक क्षेत्र में भी राष्ट्र दुरवस्था ग्रस्त था । इसलिए राष्ट्र के उद्योगधंधों में रुचि रखने वाले मध्यम वर्ग ने उद्योग-धंधों के विकास की मांग की । इस वर्ग ने राष्ट्र के आर्थिक उन्नयन का मूल उद्योग धंधों के विकास में देखा ।

भारतेन्दु युगीन राष्ट्रीय क्रान्ति असंतोष से पैदा हुई । वर्तमान अधोगति की करुणा ने उसे तीव्र किया । दमन, असमानता, अपमान आदि ने उसको अधिक शक्ति दी । इस तरह सुधार की मांगों के द्वारा विरोध प्रकट करते हुए भारत की राष्ट्रीय क्रान्ति रंगमंच पर अवतरित हुई ।

ज्यों-ज्यों भारतवासी अपनी वर्तमान परिस्थितियों और अपने पतन से असंतुष्ट होते गए, त्यों-त्यों राष्ट्रीय चेतना में तीव्रता आती गई । इसलिए भारतेन्दु युग की क्रान्ति-चेतना से द्विवेदी-युग की क्रान्ति-चेतना अधिक तीव्र और शक्तिपूर्ण है । कालक्रमेण स्वतन्त्रता की भावना भारतवासियों में उत्तरोत्तर होती गई जिस कारण उनके आन्दोलनात्मक कार्य अधिक सक्रिय और तेज होने लगे । शासकों ने इसका विरोध दमन से किया, बल्कि यों कहा जाय कि उन्होंने दमन के द्वारा भारत की राष्ट्रीय क्रान्ति को पूर्णतः दबा देने की चेष्टा की । किन्तु असन्तोष और वर्तमान शासन के प्रति विरोध की भावना इतनी शक्तिपूर्ण थी कि दमन की पाशविकता ने उसे अधिक तेज किया ।

निरंकुश शासक क्रान्ति के जनक होते हैं । सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने "ए नेशन इन मेकिंग" में लिखा है कि प्रतिक्रियावादी शासक महान जन-आन्दोलन के निर्माता होते हैं । बंग-भंग, स्वदेशी आन्दोलन आदि क्रान्ति परक आन्दोलनों को सरकार ने दमन करने की चेष्टा की, किन्तु इस चेष्टा के फलस्वरूप राष्ट्रीय भावना में तेजी आती गई । द्विवेदी युग के प्रारम्भ में उदारवादी विचारधारा होने के बावजूद

उपर्युक्त घटनाओं ने भारत की राष्ट्रीय क्रान्ति को अधिक विस्तृत,अधिक शक्तिशाली और अधिक तीव्र किया । बंग-भंग और स्वदेशी आन्दोलन को दबाने के लिए विदेशी शासन ने जो दमन-चक्र चलाया, उससे राष्ट्र में नई जागृति, नया तेज, नये रूप में प्रकट हुआ । सम्भवत: शान्तिप्रिय भारत का ऐसा आन्दोलनकारी रूप ब्रिटिश-शासन ने पहले कभी नहीं देखा होगा ।

ब्रिटिश-शासन की दमनात्मक एवं कांग्रेस की उदारवादी नीति की प्रतिक्रिया से भारत के नवयुवकों में क्रान्तिवाद और आतंकवाद का उदय हुआ । क्रान्तिकारियों और आतंकवादियों ने सरकारी सम्पत्ति नष्ट कर दी तथा लूट ली । अनेक अत्याचारी और निरंकुश शासक मारे गये । इस तरह के आतंकवादी कार्यों के प्रभाव का विश्लेषण करते हुए तिलक ने कहा था --"सरकार की नीति बमों से नहीं टूट सकती, पर बम से सरकार का ध्यान उस अंधेरखाते की तरफ खींचा जा सकता है, जो उसकी सैनिक शक्ति के मद के कारण उपस्थित है ।"[1] स्पष्ट है कि ऐसे आतंकवादी क्रान्तिकारियों के माध्यम से सरकार की दमन नीति का विरोध किया गया और उसकी सैनिक-शक्ति के सामने एक छोटा-सा प्रश्न चिह्न उपस्थित हुआ । राष्ट्रीय क्रान्ति को इन कार्यों ने अधिक तीव्र और शक्तिशाली बनाया ।

द्विवेदी-युग में राष्ट्रीय क्रान्ति के अन्तर्गत पहली बार स्वशासन की मांग की गई । तिलक ने स्वराज्य को जन्मसिद्ध अधिकार घोषित किया । इस काल में अपने राजनीतिक रूप में भारतीय राष्ट्रीयता ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा देश का शासन अस्वीकार करने लगी, उससे मुक्ति की कामना करने लगी[2] । इस काल में सरकार ने क्रान्ति चेतना को मन्द करने के लिए अनेक सुधार किए, किन्तु समस्याओं का सम्पूर्ण निदान उनसे सम्भव नहीं था । इसलिए द्विवेदी-युग की राष्ट्रीय चेतना युगान्तरकारी चेतना हो गई । इस कारण इस राष्ट्रीयता में विद्रोह तथा आन्दोलन का स्वाभिक विशेष रूप से हुआ । द्विवेदी-युग की राष्ट्रीय -क्रान्ति - भावना भारतेन्दु -युग की अपेक्षा अधिक सचेत,अधिक प्रखर और अधिक शक्तिपूर्ण है ।

१- हिन्दी कविता में युगान्तर-- डा० सुधीन्द्र, पृ०१४, सन् १९५७ ई०

२- इंडियन नेशनलिज्म-- एडविन बेविन, पृ०९, सन् १९१३ ई०

छायावाद युग में राष्ट्रीय क्रान्ति में अधिक क्रियाशीलता तथा उग्रता दिखायी पड़ती है । इस काल में महात्मा गांधी भारत की राष्ट्रीय चेतना के सूत्रधार रूप में अवतीर्ण हुए । उन्होंने सत्याग्रह और अहिंसा को अपने अस्त्र रूप में धारण किया । इसी अस्त्र के माध्यम से उन्होंने अंग्रेजी शासन के तोपों तथा मशीनगनों का सामना किया । यह अस्त्र कोई सामान्य अस्त्र न था । अपनी अहिंसा के सम्बन्ध में उन्होंने कहा था," मेरी अहिंसा अत्यन्त क्रियाशील शक्ति है । उसमें कायरता तो क्या दुर्बलता के लिए भी स्थान नहीं है ।" उनकी अहिंसा में अस्त्रहीनों का आत्मबल था, जिसमें पशुबल से अधिक शक्ति थी । सत्य और अहिंसा की ओर से उन्होंने राष्ट्रीय क्रान्ति चेतना को अधिक तेजस्विता दी । छायावाद-युग में सम्पूर्ण जनता ने विदेशी शासन के प्रति विद्रोह किया । देश का प्रत्येक वर्ग इस विद्रोह और क्रान्ति में सहयोगी बना । द्विवेदी युग में तिलक और गोखले को ऐसा सामूहिक सहयोग नहीं मिल सका था, गांधी जी ने त्याग,तेज और सत्य से प्रत्येक वर्ग को प्रभावित किया और राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति अंग्रेजी शासन के विरोध के लिए उनके झंडे के नीचे आया । पूंजीपति, नौकरी करने वाले मध्यमवर्ग, किसान,मजदूर, सब को उन्होंने अपनी प्रेरणा से संयुक्त किया और स्वतन्त्रता के लिए लड़ने वालों की पंक्ति में ला खड़ा किया । राष्ट्रीय क्रान्ति को महात्मा गांधी ने अपूर्व जनबल समन्वित किया ।

छायावाद युग के उत्तरार्द्ध में राजनीतिक चेतना में सामाजिक तत्व उभरने लगे । समाजवादी विचारधारा के प्रभाव से राजनीतिक और आर्थिक समानता की चेतना अधिक तीव्र हुई । उसने पूंजीवाद का घोर विरोध किया । समाजवादी भावना ने राष्ट्रीय आन्दोलनों को अधिक तीव्र,कट्टरता पूर्ण और तलस्पर्शी बनाया ।

छायावाद-युग में सामाजिक और आर्थिक सुविधाओं और अधिकारों की मांगें भी राजनीतिक अधिकारों की मांग के साथ चलती रहीं । इस दिशा में भी राष्ट्रीय क्रान्ति चेतना अधिक सजग और सक्रिय होती गई । इस युग की राष्ट्रीय भावना मध्य वर्ग से प्रभावित थी । आर्थिक और सांस्कृतिक विकास के साथ राजनीतिक विकास की मांग अधिक जोरदार होती गई । समाजवादी भावना ने उसे अधिक यथार्थ और स्थूल स्वरूप दिया ।

प्रगतिवाद-युग में राष्ट्रीय क्रान्ति अधिक शक्तिपूर्ण और प्रखर दिखाई पड़ती है । राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक सभी दिशाओं में राष्ट्रीय क्रान्ति अबाध

रूप से बढ़ती रही । वह इस युग में बहुमुखी और व्यापक हुई । संघर्ष और विरोध की तीव्रता उसमें अधिक प्रकट हुई । ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विरोध इस काल में जन-संघर्ष के रूप में प्रकट हुआ । मजदूर वर्ग की संघर्ष नीति ने क्रान्ति को नयी प्रेरणा दी । इस काल में असंतोष अधिक होने के कारण विरोध में अधिक तीव्रता आयी । इस तीव्रता ने भारत की स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में ब्रिटेन को सोचने को बाध्य किया ।

भारत की राष्ट्रीय क्रान्ति को तोड़ने के उद्देश्य से अंग्रेजों ने साम्प्रदायिकता को प्रश्रय देना प्रारम्भ किया । मुस्लिम लीग की स्थापना तथा मुसलमानों को पृथक निर्वाचन के अधिकार देना, हिन्दुओं के विरोध में मुसलमानों को उत्साहित करना आदि ऐसे कार्य हैं जिनके द्वारा ब्रिटिश शासन के क्रान्ति विरोधी कूटनीतिक कार्य प्रकट हो जाते हैं । साम्प्रदायिक भावना के विकास से हिन्दू और मुसलमानों के बीच का मतभेद बढ़ने लगा । अनेक बार अनेक स्थान पर साम्प्रदायिक दंगे हुए, जिनसे दोनों जातियां क्रान्ति के मार्ग में अलग हटती गयीं और इससे राष्ट्रीय क्रान्ति के विकास में अवरोध आया । महात्मा गांधी तथा अन्य नेताओं ने इस अवरोध तथा मतभेद को दूर करने की चेष्टा की । कुछ सीमा तक यह मत-भेद दूर भी हुआ किन्तु साम्प्रदायिकता का विष मुस्लिम लीग पर इस प्रकार छा गया था कि अन्त में पाकिस्तान की मांग उसने की और १९४७ में भारत दो भागों में बांट दिया गया । परिणामस्वरूप राष्ट्रीय चेतना खंडित हो गई । राष्ट्रीय क्रान्ति इन अवरोधों के बावजूद विकसित हुई और उसने अपने संघर्ष, विरोध, आन्दोलन आदि से विदेशी शासन को भारत की स्वतन्त्रता दे देने को बाध्य किया ।

भारत की राष्ट्रीय क्रान्ति कई मोड़ों से होती हुई अन्त में तीव्र संघर्ष और शक्तिशाली आन्दोलनों के बिन्दु तक पहुंची । ज्यों-ज्यों समय बीतता गया उसमें असंतोष और विरोध बढ़ता गया । महात्मा गांधी ने अहिंसा को शक्ति देकर उसे अधिक शक्तिशाली बनाया और अहिंसक क्रान्ति का आश्चर्यजनक प्रयोग प्रस्तुत किया, जिसकी सफलता १९४७ की स्वतन्त्रता प्राप्ति में प्रकट हुई ।

स्वातन्त्र्योत्तर काल में सामाजिक, आर्थिक दिशाओं में विकास के महत्वपूर्ण कार्य हुए । अनेक योजनाओं के माध्यम से देश को सम्पन्न बनाने का प्रयास हुआ । अनेक विधानों के माध्यम से सामाजिक स्थिति में परिवर्तन लाया गया ।

स्वातन्त्र्योत्तर भारत में पुरानी मान्यताएं टूटीं और नए मूल्य उभरे हैं । इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर भारत में वैचारिक,आर्थिक,धार्मिक तथा सामाजिक क्रान्तियों के स्वरूप प्रकट हुए हैं जिनके माध्यम से इन क्षेत्रों में अपूर्व परिवर्तन हुए हैं ।

अध्याय-- तीन

--0--

राजनीतिक विचारधारायें

अध्याय -- तीन

-0-

राजनीतिक विचारधाराएं

राष्ट्रीय चेतना

भारतेन्दु युगीन काव्य का स्वर अपने पूर्वकाल से भिन्न और नया था । देश-काल की नई परिस्थितियों के सन्दर्भ में नई समस्याएं उत्पन्न हुईं और उनके समाधान भी नए रूप में प्रस्तुत हुए । सामाजिक,राजनीतिक,धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के प्रभाव से काव्य में नए विषय ग्राह्य हुए, जिनमें क्रान्ति की विचारधाराएं स्पष्ट देखी जा सकती हैं । वैसे इस युग का काव्य भी परम्परा से पूरी तरह अलग नहीं हो पाया था, लेकिन राष्ट्रीय चेतना उभरने लगी थी और फलस्वरूप क्रान्ति की विचार-धाराएं प्रकट होने लगी थीं । इस दृष्टि से नवीन मूल्य उभरने लगे । इन परिस्थितियों और नए युगबोध के कारण काव्य के लिए नए विषय ग्रहण किए जाने लगे । परम्परा से पूर्णतः मुक्त न होने के बावजूद इस युग का काव्य नई स्थापनाएं और सम्भावनाएं लिए हुए था । भारतेन्दु युग के काव्य में अदालती मामले, पुरानी लकीर के फकीर, नाम या दाम के भूखे देश-भक्त नए ढंग के गुलाम आदि विषयों पर कविताएं लिखी जाने लगीं । नवयुग और नवजागरण की इस बेला में नयी चेतना से अनुप्राणित नए आदर्श, क्रान्तिमूलक विचारधाराएं उत्पन्न हुईं । इस दृष्टि से काव्य-विषय में परिवर्तन

और नवीनता भारतेन्दु-युग की कविता में दीखती है ।

भारतेन्दु-युग की कविता का आन्तरिक स्वर क्रान्तिकारी है । देश की दुरवस्था का ज्ञान उस काल की रचनाओं में है । देश की दुरवस्था से कवियों के हृदय में पीड़ा उत्पन्न हुई । उस पीड़ा की, वेदना की अभिव्यक्ति उनकी कविताओं में हुई है । यह अभिव्यक्ति अपने-आप में अत्यन्त करुणापूर्ण है ।

कम्पनी का शासन समाप्त हो जाने और इंगलैण्ड की महारानी का शासन प्रारम्भ होने से देश के मध्यमवर्ग के मन में बहुत सी आशाएं उत्पन्न हुई थीं । कंपनी राज्य के अत्याचार की मुक्ति के उपरान्त शान्ति और सुखभोग की अभिलाषाएं उत्पन्न हुईं, किन्तु ऐसे काल्पनिक सुख-भोग के आकांक्षी मध्यमवर्ग को यथार्थ की कठोरता मिली और सुखभोग उनके सपने नष्ट हो गए । इसी पृष्ठभूमि में भारतीय जन-जीवन में असंतोष का उदय हुआ । असंतोष क्रान्ति का मूलाधार है । असंतोष के उपरांत ही परतंत्रता का और अपनी विपन्नता का अनुभव जनता को हुआ । देश की अधोगति से जनता खिन्न हो गई । वह विकास की आकांक्षा करने लगी और इस सन्दर्भ में राष्ट्रीय चेतना की क्रान्तिमूलक विचारधारा का उदय भारतीय जीवन में हुआ, जिसकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति भारतेन्दु युगीन कविता में हुई है ।

क्रान्ति की विचारधाराओं का उदय केवल देश की अधोगति की अनुभूति से ही नहीं हुआ, बल्कि अंग्रेजी राज्य के अत्याचार और अन्याय ने भी इसमें योगदान किया और इस सन्दर्भ में भारतेन्दु-युग की हिन्दी कविता में क्रान्ति की विचारधाराएं उत्पन्न हुई हैं । इन प्रेरक परिस्थितियों और उनकी प्रतिक्रिया में उत्पन्न अभिव्यक्तियों का क्रमिक विश्लेषण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है ।

अतीत गान द्वारा क्रान्ति

वैसे कुछ लोग यह अस्वीकार करें कि अतीत गौरव गान को क्रान्ति की विचारधाराओं की अभिव्यक्ति के अन्तर्गत नहीं लिया जा सकता, किन्तु यह उचित नहीं कहा जा सकता, क्योंकि क्रान्ति की विचारधाराओं की सबसे सशक्त और प्रथम अभिव्यक्ति अतीत गौरव गान के माध्यम से हुई है । देश अधोगति में पड़ा है । वर्तमान कुहासा और धुएं से भर उठा है । विकास के सभी मार्ग अवरुद्ध हो चुके हैं । वर्तमान की यह करुणापूर्ण दशा देश के प्रति चैतन्य कवियों का ध्यान गौरवपूर्ण अतीत की

ओर ले जाती है । वे अतीत गान के माध्यम से वर्तमान की दयनीय दशा को और उजागर कर देते हैं ताकि असंतोष उत्पन्न हो, जिससे क्रान्ति-भावना उत्पन्न हो, क्योंकि असंतोष क्रान्ति का मूलाधार है ।

भारत का अतीत अत्यन्त महिमामण्डित रहा है । इस अतीत-महिमा के गान द्वारा भारतेन्दु ने राष्ट्रीय-क्रान्ति की भावना का प्रसार इन शब्दों में किया कि भारत के भुजबल से सारा जग सुरक्षित रहा । भारत ने ही संसार को विद्या दान दिया--

भारत के भुजबल जग रक्षित । भारत विद्या लहि जग सिच्छित[1]

भारत का तेज, गौरव सम्पूर्ण संसार में ख्यात था । भारत के तेज से यूरोप अमेरिका सभी ईर्ष्या करते थे --

जिनके भय कंपित संसारा, सब जग जिनको तेज पसारा ।
युरुप अमरिका शहिहि सिहाहीं, भारत भाग सरिस कोउ नाहीं ।[2]

भारतवर्ष पर ही सबसे पहले ईश्वर की कृपा हुई थी । इसीलिए उसने सब के पहले ईश्वर से धन, बल दिया, सभ्य किया । रूप, रस और रंग भी भारत को ही पहले मिला । इतना ही नहीं, विद्या का फल भी पहले भारत को ही मिला --

सबके पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनो ।
सबके पहिले जेहि सभ्य विधाता कीनो ।
सबके पहिले जो रूप रंग रस भीनो ।
सबके पहिले विद्याफल जिन गहि लीनो ।[3]

क्रान्ति की भावना उद्दीप्त हो सके, इसके लिए अपने शौर्य का भान होना आवश्यक है । भारत का अतीत शूर-वीरों के अपूर्व साहस का इतिहास है । इसीलिए आज भी कवि उनके स्मरण के द्वारा क्रान्ति-भावना जगाना चाहता है --

धन-धन भारत के सब छत्री, जिनकी सुजस धुजा फहराय ।
मारि मारि के शत्रु दिये हैं, लाखन बेर भगाय ।
महानन्द की फौज सुनत ही डरे सिकन्दर राय ।

१- भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग १, पृ०४६१ सं० २००६
२- वही, भाग २, पृ० ८०६, सं० २०१२
३- वही

राजा चन्द्रगुप्त ले आयें बेटी सिल्यूकस की जाय ।
मारि बहुविन विक्रम रहे शकारी पदवी पाय ।
बापा कासिम तनय मुहम्मद जीत्यौ सिन्धु दियौ उतराय ।[1]

प्रेमघन भी अपने स्वर्णिम अतीत का स्मरण करते हुए वर्तमान दशा पर क्षोभ प्रकट करते हैं --

नहिं अब भारत वह रह्यौ, नहिं यामें वह तत्व ।
हाय विधाता ने हर्यौ, कैसो याको सत्व ।।
नहिं वह काशी रह गई, हतो हेम मय जौन ।
नहिं चौरासी कोस को, रही अयोध्या तौन ।।[2]

माता शारदा की कृपा भारत के ऊपर सबसे अधिक थी । इसीलिए पृथ्वी पर भारत के तुल्य अन्य कोई देश नहीं था । इसका तेज, प्रताप, बुद्धि और गौरव सुनकर शत्रु का हृदय थर-थर कांपा करता था । ऐसा विचार है श्री बालमुकुन्द गुप्त का --

जब मा ! कृपा तुम्हारि रही भारत के ऊपर ।
तब याके सम तुल्य धरनि पर रह्यौ न दूसर ।।
याको तेज प्रताप बुद्धि गौरव अस सुनि कर ।
कांपत हो नित रह्यो हियो शत्रुन को थर थर ।।[3]

इस प्रकार भारतेन्दु-युग के कवियों ने वर्तमान की अधोगति देखकर गौरवमय अतीत का स्मरण किया है । इन गौरवमय आदर्शों द्वारा वे जन-जीवन की राष्ट्रीय-क्रान्ति की प्रेरणा देते रहे ।

वर्तमान चित्रण द्वारा क्रान्ति

इस युग में हिन्दी-कवियों ने मात्र अतीत गौरव-गान के द्वारा ही क्रांति चेतना नहीं जगाई, बल्कि वर्तमान चित्रण के द्वारा भी राष्ट्र-दशा की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया ।

१- भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग२, पृ०५०२, सं०२००६
२- पितृ प्रलाप-- प्रेमघन सर्वस्व--प्रथम भाग, पृ०१५५, सं० १९९६ वि०
३- शारदीय पूजा--बालमुकुन्द गुप्त-निबन्धावली, पृ०५८६ सं०२००७ वि०

वर्तमान अधोगति की भावना वेदना उत्पन्न करती है । यह वेदना केवल असहायता की वेदना नहीं है, बल्कि क्षोभभरी है । हिन्दी-कवि इस माध्यम से विदेशी शासन के प्रति अपना आक्रोश प्रकट करते हैं । वर्तमान की धूमिल पृष्ठभूमि पर अतीत का चमकता हुआ उज्ज्वल चित्र सहज ही प्रकट हो जाता है ।

भारत कभी सर्वपूज्य रहा, किन्तु आज उसकी दशा अत्यन्त शोचनीय है । महिमा मण्डित भारत की दयनीय दशा उनको पीड़ित करती है । भारत की दुर्दशा से व्याकुल भारतेन्दु के कंठ से निकला था --

रोवहु सब मिलि के आवहु भारत भाई ।
हा ! हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।[1]

भारतेन्दु से देश की दुर्दशा सही नहीं गई । इसकी अनुभूति इतनी तीव्र थी कि उन्होंने देशवासियों को भी आमंत्रित किया । उन्हें देश में सब जगह दुःख ही दुःख दिखायी पड़ा और उसके प्रति गहरा असंतोष उनके मन में पैदा हुआ । इस ओर उन्होंने भारतवासियों का ध्यान भी आकृष्ट किया :-

अब जहं देखहुं तहं दुख हो दुख दिखाई,
हा ! हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई ।।[2]

प्रेमघन की वाणी कुछ और तीखी है । उन्होंने पराधीनता को सबसे बड़ा दुःख माना । इस प्रकार प्रकारान्तर से उन्होंने अंग्रेजी शासन के प्रति अपना असंतोष प्रकट किया :--

जदपि जगत में बहु दुख दुसह महान ,
पराधीनता के सम तदपि न आन ।।[3]

पराधीनता के कठिन दुःख की अनुभूति लोकजीवन की सच्ची अनुभूति है । भारतेन्दु-युगीन जनमानस विदेशी दासता से पीड़ित था । उस पीड़ा की अभिव्यक्ति प्रेमघन की पंक्तियों में प्रकट हुई है । स्वराज्य की वर्षा, स्वतंत्रता की ऊष्मा मिलने पर विधा के हल से धरती भर के अंकुर फूटेंगे :--

---

१- भारत दुर्दशा(१८८०)-- भारतेन्दु नाटकावली, पृ०५६७

२- वही, पृ०५६८

३- प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, पृ० ४६ सं० १९९६ वि०

लहि सुराज बरसा सलिल सुतन्त्रता फर पाय । [१]
जीत्यौ मेघा मेदिनी विषम पल मल माय ।।

स्वतंत्रता की इस कामना में अंगरेजी शासन से मुक्ति की कामना है । अंगरेजी शासन से मुक्ति की कामना अकारण नहीं है । राजकोप से लोग दुखी थे । अत्याचार को सहन कर पाना कठिन हो गया । इस परिस्थिति में ही परिवर्तन, अंगरेजी राज्य से मुक्त होकर स्वराज्य और स्वतन्त्रता पाने की आकांक्षा उदित हुई । राज-कोप विनाश करने वाला है । उससे सावधान करते हुए प्रेमघन ने कहा --

राजकोप के उपल सों सावधान अति होय । [२]
रहियें रंजक बीच जो सकल नाश करि सोय ।

राज कर्मचारियों के अत्याचार से जनता को बहुत कष्ट था । वे जनता के साथ मनमानी करते थे । इससे चारों ओर हाहाकार मच गया । प्रजा दुहाई देने लगी, लेकिन उसकी कहीं सुनवाई न थी । इस प्रकार के न्याय और दण्ड से प्रजा विलाप कर रही थी । वह शक्तिहीन होने के कारण इस अत्याचार का प्रकट रूप में विरोध नहीं कर सकती थी । इसलिए वह मन में ही सरापने लगी कि यह राज शीघ्र नष्ट हो । वर्तमान स्थिति से असंतोष की प्रतिध्वनि का यह स्वर तीखा और क्रांति मूलक है :

राज कर्मचारी दल दुलद प्रधान,
जिन अधिकार बढ़्यो अति अत्याचार ।
मच्यो चहुं दिसि चारों हाहाकार ।
प्रजा दुहाई की सुनवाई नाहिं ।
यहि न्याय नाहिं दण्ड रोय बिलखावहिं ।
मन में सबहिं सरापहिं हाथ उठाय । [३]
ईस बेगि अब याको राज नसाय ।

१- प्रेमघन सर्वस्व-- प्रेमघन, पृ० ३४०, सं० १९९६ वि०

२- वही, पृ० ३४८

३- वही, पृ० ७०, सं० १९९६ वि०

अत्याचार की भर्त्सना और ऐसे अत्याचारी शासन के नाश की आकांक्षा निस्सन्देह अत्यन्त साहसिक है । उस समय जब कि अंग्रेजी शासन की शक्ति का लोहा बड़े-बड़े देश मानते थे और अत्याचार अपने पूरे विकास पर था, इस प्रकार के क्रांतिमूलक विचारों की अभिव्यक्ति सरल नहीं थी । ऐसा करने पर अत्याचार और राजकोप का भय था, लेकिन जन-जीवन में व्याप्त क्रांति की उस तीखी विचारधारा की अभिव्यक्ति हिन्दी के इस कवि ने की । ऐसा तीखा और अनुभूतिपूर्ण स्वर भारतेन्दु का नहीं है । उनकी कविता में अंग्रेजी शासन के विनाश की अभिव्यंजना नहीं है । वे अत्याचारों से त्रस्त हैं, उसके प्रति अपना आक्रोश प्रकट करते हैं, किन्तु अंग्रेजी राज्य के विरोध तथा विनाश की भावना उनके काव्य में नहीं उभर सकी । उनकी मुकरियों में अंग्रेजी शासन के प्रति व्यंग्य की तीखी चोट है । उन्होंने मतलबी अमलों पर गहरी चोट की है :-

मतलब ही की बोलै बात,
राखै सदा काम की घात ।
डोलै पहिने सुन्दर समला ।
क्यों सखि सज्जन नहिं सखि अमला ।[1]

पुलिस की अत्याचार से जनता त्रस्त थी । जो पुलिस के चंगुल में फंस गया वह मुक्त नहीं हो सका । वह जनता का सब कुछ लूट लेती है :

रूप दिखावत सरबस लूटै ।
फंदे में जो पड़ै न छूटै ।
कपट कटारी जिय में हुलिस ।
क्यों सखि सज्जन, नहिं सखि पुलिस ।[2]

भारतेन्दु से भिन्न स्वर प्रतापनारायण मिश्र का भी है । 'राजा करै सो न्याव पासा परै सो दाँव' की लोकोक्ति के आधार पर तत्कालीन राजव्यवस्था के न्याय पक्ष पर करारा व्यंग्य करते हुए प्रतापनारायण मिश्र ने अत्याचार का विरोध कर स्वतंत्र होने की प्रेरणा दी :-

---

१- भारतेन्दु ग्रन्थावली— भारतेन्दु , पृ० ८७८, सं० २०१० वि०

२- वही, पृ० ८११

३- लोकोक्ति-शतक— प्रतापनारायण मिश्र , पृ० २

सब तजि गहो स्वतन्त्रता नहिं चुप लातें खाव ।[१]
राजा करै सो न्याव है पासा परै सो दाव ।।

स्वतंत्रता ग्रहण करने की प्रेरणा तत्कालीन सन्दर्भ में अत्यन्त उग्र विचारों को अभिव्यक्त करती है । उस समय उन कवियों ने अत्यन्त साहस के साथ राष्ट्रीय चेतना के मूलभूत तत्त्व स्वतंत्रता को ग्रहण करने की प्रेरणा व्यक्त की ।

स्वतंत्रता मनुष्य का मौलिक अधिकार है और इस स्थिति में ही सुख सुलभ है । परतंत्रता दुखदायक होती है । परतंत्रता और विदेशी शासन के अत्याचार से उत्पन्न दुखों की कवियों ने अनेक बार व्यंजना की है । अत्याचार और अनीति के कारण देश में दुरवस्था व्याप्त थी । उसकी करुणापूर्ण अभिव्यक्ति भारतेन्दु की कविता में हुई है ।

१८६८ ई० में बालमुकुन्द गुप्त ने `आवहु माय' शीर्षक कविता में भारत की दुरवस्था की व्यंजना के लिए उसे मसान कहा । इस दुरवस्था में मातृवन्दना के निमित्त उत्तम पदार्थ दुर्लभ हैं --

भारत घोर मसान है, तू आप मसानी ।
भारतवासी प्रेत से डोलहिं कल्यानी ।
हाड़ मांस नर रक्त है भूतन की सेवा ।
यहां कहां मां पाइये चन्दन क घी मेवा ।[२]

प्रतापनारायण मिश्र ने अंग्रेजों की लूट नीति पर करारी चोट की है । देश की सारी सम्पत्ति जा रही है । देश दरिद्र हो रहा है । हम भारतवासी मात्र बातें बनाने में तेज हैं :

सर्वसु लिये जात अंगरेज,
हम केवल लेक्चर की तेज ।
श्रम बिनु बातें का करती हैं ।
कहुं टेंटन गाथैं टरती है ।

१- लोकोक्तिशतक --प्रतापनारायण मिश्र , पृ० ३
२- आवहु माय -- बालमुकुन्द गुप्त, पृ०३२,४१

विदेशी शासन के विरोध और स्वतन्त्रता प्राप्ति की आकांक्षा का किंचित दबा हुआ स्वर भारत की दुर्दशा से क्षोभ का परिणाम है । दुर्दशा इस सीमा तक है कि उसके निराकरण के उपाय नहीं सूझते । इसी समय भारत के अतीत का ध्यान आता है । कितना उज्ज्वल अतीत था भारत का । उसकी भुजा के बल में विश्व की रक्षा होती थी, किन्तु वही भारत निर्बल हो गया, दुखी हो गया । वर्तमान परिस्थितियों के संदर्भ में अतीत के उज्ज्वल पृष्ठ की स्मृति हृदय पर चोट करती है । इस चोट की अनुगूंज भारतेन्दु के शब्दों में फूटी :--

हाय वहै भारत भुव भारी , सबहीं विधि तें भई दुखारी ।
रोम ग्रीस पुनि निज बल पायो, सब विधि भारत दुखित बनायो ।[1]
अति निर्बली श्याम जापाना, हाय न भारत तिनहु समाना ।।

प्रेमघन ने देश के पतन का वर्णन हार्दिक हर्षादर्श में किया है --

भयो भूमि भारत में महा भयंकर भारत,
भये वीर वर सकल सुभट एकहि सन गारत ।।[2]

'जातीय गीत' में भी उन्होंने देश की दुर्दशा का चित्र प्रस्तुत किया है :

गारत भयो भले भारत यह, आरत रोय रह्यो चिल्लाय[3]
बल को परम पराक्रम खोयो, विद्या गरब न लाय ।।

इन कवियों ने भारत की दुर्दशा की ओर जन समुदाय का ध्यान आकृष्ट किया और अपनी पतितावस्था से उन्हें अवगत कराया । पतितावस्था के कारणों पर भी उन्होंने विचार किया । उनके अनुसार भारत के पतन का एकमात्र कारण है--फूट । जहां फूट ही मेवा हो वहां स्वतन्त्रता की सम्भावना नहीं की जा सकती । इसलिए पराधीनता से मुक्त होने के लिए एकता अनिवार्य है । इस एकता की प्रेरणा इन कवियों की वाणी में स्पष्ट सुनायी पड़ती है --

---

१- भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृ० ८०३, सं० २०१२ वि०

२- हिन्दी साहित्य का इतिहास-- रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ५१५, सं०२००२

३- प्रेमघन सर्वस्व-- प्रेमघन, पृ० ५५६, सं० १९९६ वि०

तहां टिकै क्यों बाहुबल जिन घर मैया फूट
बल बपुरो कैसे रहै जाय बाहु जब टूट ।।
जहां लरैं सुत बाप संग और भ्रात सों भ्रात ,
तिनके मस्तक मों हटै कैसे पर को लात ।।[1]

भारतेन्दु ने भी इसकी पुष्टि की --

बैर फूट ही सों भयौ सब भारत कौ नास ।
तबहुं न छांड़त यदि सब बंधे मोह के फांस ।[2]

भारत में फूट का बीज बोया जयचन्द ने । उसने मुसलमानों को भारत पर आक्रमण के लिए आमंत्रित किया । अपने स्वार्थ के लिए वही विदेशियों को अपने देश में ले आया । इसलिए जयचन्द के प्रति आक्रोश स्वाभाविक है --

काहे तू चौका लगाय जयचन्दवा
अपने स्वारथ भूलि लुभाय,काहे चोटि कटवा बुलाय जयचंदवा ।
अपने हाथ से अपने कुलि के काहें तैं जड़वा कटाय जयचंदवा ।[3]
फूट के फल सब भारत बोए, बैरी के राह खुलाए जयचंदवा ।

मस्तक प्रताप नारायण मिश्र ने भाई-भाई के बैर से पीड़ित होकर कहा :-

भाय भाय आपस में लरैं परदेसिन के पायन परैं
यहै दुबेय भारत ससि राहु, घर का भेदिया लंका दाहु ।[4]

श्रीधर पाठक ने भी जयचन्द के प्रति अपना आक्रोश प्रकट किया, क्योंकि उसी के कारण देश में विद्रोह बढ़ने लगा और प्रजा की बुद्धि नष्ट हो गई है --

पृथ्वीराज जयचन्द जब से गए हैं
उसी काल से इनके दिन फिर गए हैं
परस्पर के विद्वेष की बढ़ ज्वाला
इसी देश में भीम रूपा कराला ।
किया नष्ट उसने प्रजा भारती को
बिगाड़ा सभी की विशुद्धा मति को ।[5]

१- भीराम स्तोत्र-- (१८८६
२- भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग २, पृ०७३८, सं०२०१२
३- वही, पृ० ५०२
४- लोकोक्ति शतक--प्रतापनारायण मिश्र, पृ०२
५- मनोविनोद-- श्रीधर पाठक, पृ०१७७ सं०१६१७ ई०

राष्ट्रीय क्रान्ति-भावना उद्दीप्त करने के लिए तत्कालीन कवियों ने जनता में एकता हो, उसकी कामना भी की है । उन कारणों की ओर उनकी दृष्टि गयी है जिससे जनता में फूट है । जाति-पाँति, अनेकानेक धर्म और छुआछूत ने ही आपस में फूट डाल रक्खा है । उनकी निन्दा भारतेन्दु इन शब्दों में करते हैं --

रचि बहु विधि के वाक्य पुरातन माँहि घुसाए ।
शैव शाक्त वैष्णव अनेक मत प्रगटि चलाए ।
जाति अनेकन करी नीच अरु ऊँच बनायो ।
खान-पान सम्बन्ध सबनि सों बरजि छुड़ायो ।[1]

पर एकता पर इतना बल देने वाला कवि यदि कहीं-कहीं पर मुसलमानों के प्रति घृणा का भाव प्रकट करता है तो आश्चर्य होता है । वह कृष्ण तक से प्रार्थना करता है कि वे कलियुग में अवतार लेकर मलेच्छाचार करें ।

जय सतजुग थापन करन, नासन म्लेच्छ अचार ।
कठिन धार तरवार कर, कृष्ण कल्कि अवतार।[2]

मुसलमानों के हृदय में भारतीयों के प्रति स्नेह नहीं था । वे कभी भी हिन्दुओं को अपना नहीं समझते थे । उनकी यह अभारतीयता उन्हें अखरती थी ।

जदपि जवन गन राज कियो इतहि बसि के सह साज ।
पै तिनको निज करि नहिं जान्यौ हिन्दु समाज ।[3]

यही कारण था कि किसी यवन देश की हार पर वे प्रसन्न हुआ करते थे । जब १८८२ ई० में अंग्रेजों ने मिस्र पर विजय किया तब उन्होंने इसे भारतीयों की विजय मानी और 'आर्य मौंछ के बार' को ऊँचा होते देखा :

फरकि उठी सब की भुजा, खरकि उठी तरवार ।
क्यों आपुहि ऊँचे भये आर्य मौंछ के बार ।[4]

१-भारत दुर्दशा--भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृ०६०४

२- वही

३- वही, पृ० ८८१

४- वही, पृ० ८८८

डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने मुसलमानों के प्रति इस रुख को देखकर कहा है कि 'हिन्दू पुनरुत्थान काल का प्रथम चरण ऐतिहासिक और राजनीतिक दृष्टि से कुछ मुस्लिम विरोधी रुख लिए हुए था।[1] इसीलिए हिन्दुओं का एक विशेष दृष्टिकोण था --अंग्रेजों से राजनीतिक सम्बन्ध रखते हुए मुसलिम विरोधी, और उस समय जब कि अंग्रेज भी मुसलमानों से नाराज थे।[2]

पर फिर उन्होंने कहा है कि 'उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतेन्दु अथवा अन्य किसी कवि ने मुसलमानों के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है, वह राजनीतिक अस्तव्यस्तता और तज्जनित देश की पीड़ित अवस्था और धार्मिक अत्याचार की दृष्टि से कहा है।[3]

सचमुच मुसलमानों के प्रति ऐसी भावना की अभिव्यक्ति का कारण था भारत की दयनीय दशा की ओर ध्यान जाना और तब मुसलमानों के अत्याचार की ओर ध्यान चला जाना, क्योंकि ये ही भारत की वर्तमान दुर्दशा के जड़ में थे। पर उनकी यह भावना मुस्लिम-विरोधी प्रचार की नहीं थी। उनका यह क्रान्ति-गान मात्र मुस्लिम अत्याचारों के विरुद्ध था।

राष्ट्रीय-क्रान्ति का उन्मेष हिन्दू-मुस्लिम द्वेष से सम्भव नहीं था, बल्कि इससे फूट पड़ जाती। और भारतेन्दु राष्ट्रीय क्रान्ति की भावना से भरे हुए थे। उस युग के अन्य कवियों में भी यही भावना थी। इसीलिए उन्होंने साम्प्रदायिकता को नहीं उभारा, बल्कि एकता का आह्वान किया। उन्होंने अनेकता की बुराइयों का उल्लेख किया साथ ही हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए भी आवाजें उठायीं। 'प्रेमघन' ने राष्ट्रीयता के लिए जैन, पारसी, ईसाई सब के एक सूत्र में बंधने की कामना की :

हिन्दू मुसलिम जैन पारसी ईसाई सब जात।
सुखी होंय हिय भरे प्रेमघन सकल भारती भ्रात।

स्वतन्त्रता के लिए सब कुछ कर भी क्रान्ति की आवश्यकता है, चुपचाप बैठ कर लात खाने की नहीं-- इसे लोकोक्ति शतक में प्रतापनारायण मिश्र ने कहा --

---

१- आधुनिक हिन्दी साहित्य-- डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ०२५८, १९५८ ई०

२- वही, पृ० २५८

३- वही, पृ० २५८

सब तजि गहो स्वतंत्रता नहिं चुप लातें खाय ।
राजा करै सो न्याव है पासा परै सो दाव ।।[१]

आर्यों के परतंत्र होने का कारण बताते हुए ये कहते हैं --

मायक तनक परस्पर नहिं जहं
सरल सनेह न हरि चरनन महं ।
जगत दास कस होहिं न आरज,
निबर को बुझ्या सबके नरहज ।[२]

अर्थात् परस्पर प्रीति का अभाव भाई-चारे का अभाव ही परतंत्रता का कारण है ।

केवल आर्यों को ही नहीं, बल्कि राष्ट्रीय क्रान्ति सफल हो सके, इसके लिए सब में एकता आवश्यक है । मैत्री-भाव से ही देश की दशा सुधर सकती है । एकता सबसे बड़ा बल है --

प्रीति परस्पर राखहु मीत ।
जाहैं सब दुख सहजहिं बीत ।
नहिं एकता सरिस बल कोय ।
एक एक मिलि ग्यारह होयँ ।[३]

स्पष्ट है कि तत्कालीन कवियों में मुस्लिम विरोधी भावना नहीं थी । अपनी दीनता के वर्णन-प्रकरण में प्रकारान्तर से भले ही उसका प्रकाशन हुआ हो । धर्म के आधार पर मुसलमानों का विरोध वे नहीं करते । देश-उत्थान उनका सर्वोपरि लक्ष्य था, वह उपर्युक्त वर्णित एकता की बातों से स्पष्ट है । वे राष्ट्रीय क्रान्ति के उन्मेष के लिए तत्पर थे । पर उनकी क्रान्ति का रूप उग्र नहीं था, बल्कि वे दीनावस्था का वर्णन कर वैचारिक क्रान्ति उत्पन्न करने में सचेष्ट थे । और इसके लिए उन्होंने जन समूह को एकता का संदेश दिया था । इसीलिए भारतेन्दु युग के कवियों ने आर्थिक दुर्दशा की चर्चा अधिक की, इसलिए कि देश की दीन-दशा मिटे ।

१- लोकोक्ति शतक--प्रतापनारायण मिश्र, पृ०३

२- वही, पृ०२-३

३- वही

अंग्रेजों की फूट डालने की नीति के कारण ही भारतेन्दु-युग में कहीं-कहीं पर धार्मिक विद्वेष की झलक मिलती है -- हिन्दू-मुस्लिम बैर नहीं है । दोनों जातियां अंग्रेजों द्वारा शोषित थे, पीड़ित थे । दोनों ने एक साथ मिल कर १८५७ के गदर में अंग्रेजों के समक्ष अच्छी तरह अपना बल प्रदर्शित कर दिया था । इसीलिए अंग्रेज दोनों में फूट डालने की कोशिश करते रहते थे जिससे वे बलवान न हो सके । अपने इस उद्देश्य में उन्हें सफलता भी मिली । भारतेन्दु युगीन कवि इस तथ्य को समझ चुके थे । उन्हें यह मर्म भी ज्ञात हो गया था कि राष्ट्रीय क्रान्ति तभी सफल हो सकेगी, जब दोनों जातियां एक होकर विदेशियों के मुकाबिले में खड़ी होंगी ।

एकता की पुकार के अतिरिक्त , अपनी करुण दशा का वर्णन कर, ईश्वर से प्रार्थना करके भी,तत्कालीन कवियों ने राष्ट्रीय क्रान्ति की भावना को उद्बुद्ध करने का प्रयत्न किया है । भारत डूब रहा है --इसलिए भारतेन्दु नाथ से जागने की प्रार्थना करते हैं --

डूबत भारत नाथ बेगि अब जागो अब जागो ।
आलस-दव एहि दहन हेतु चहुं दिसि सौं लागो ।।
महा मूढ़ता वायु बढ़ावत तेहि अनुरागो ।
कृपा-दृष्टि की वृष्टि बुझावहु आलस त्यागो ।।
अपुनो अपनायो जानि कै करहु कृपा गिरिवर-धरन ।
जागो बलि बेगहि नाथ अब देहु दीन हिंदुन सरन ।।१७।।[१]

श्री राधाकृष्णदास भी देश-प्रेम से भर कर ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि आरत भारतवासियों पर दया करें --

"इम आरत भारतवासिन पै अब दीन दयाल दया करिये[२] ।"

भारत दुर्दशा के मंगलाचरण में भारत के उद्धार के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं-कि हुए भारतेन्दु उनसे अवतार धारण करने को कहते हैं :--

जय सतजुग थापन करन, नासन म्लेच्छ अचार ।
कठिन धार तरवार कर, कृष्ण कल्कि अवतार ।[३]

करुणापूर्ण दशा और ईश्वर प्रार्थना के इन चित्रणों द्वारा वैचारिक क्रांति को उग्र करने के साथ ही तत्कालीन कवियों ने कहीं-कहीं उग्र क्रांति का संदेश भी दिया

१- [illegible] भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा भाग, [illegible]
[illegible]
२- [illegible] सं०,१९२०६०

है :--

> जागो जागो रे भाई .....
>
> अबहुं चेति पकरि राखो किन जो कुछ बची बड़ाई ।

होली गाते हुए भी भारतेन्दु कमर बांध कर शस्त्र धारण करते हुए आगे पांव बढ़ाने का संदेश देते हैं --

> उठौ उठौ सब कसहु कमरन बांधौ शस्त्रन सान धरो री ।
>
> विजय-निसान बजाइ बावरे आगेइ पांव धरो री ।।[१]

भारत-पुत्रों को जगाने के लिए वे राम, युधिष्ठिर और विक्रम को याद भी दिलाते हैं --

> उठौ उठौ भैया क्यौं हारो अपुन रूप सुमिरो री ।
>
> राम युधिष्ठिर विक्रम को तुम फटपट सुरत करौरी ।[२]
>
> दीनता दूर धरौरी ।

जागरण की प्रेरणा, वे लोगों के कायरता की भर्त्सना करते हुए भी देते हैं । कायर पुत्र उत्पन्न करने वाले माता-पिता को भी धिक्कार है और वह घड़ी भी धिक्कारपूर्ण है, जब ऐसे कायर पैदा हुए --

> धिक धिक मात पिता जिन तुम सौं कायर पुत्र जन्मो री ।
>
> धिक वह घरी जनम भयौ जह कलंक प्रगटो री ।
>
> जननहि क्यों न मरो री ।[३]

प्रतापनारायण मिश्र ने भी `सब तजि गहौ स्वतंत्रता नहिं चुप लाते खाव` के द्वारा मूलत: अंग्रेजों के अत्याचार को ही दर्शाया है । प्रयास और कार्यों से दयनीय

(पिछले पृष्ठ की टिप्पणी संख्या--३)

३-- भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृ० [illegible]

१-- वही, पृ० [illegible] ४०४ दूसरा भाग, दूसरा संस्करण, सं० २०१०

२-- वही, पृ० ४०४, दूसरा भाग, दूसरा संस्करण, सं० २०१०

३-- वही ,, ,, ,, ,,

दशा को छुटकारा मिल सकता है । राष्ट्रोत्थान हो सके, राष्ट्र गुलामी से छुटकारा पा सके, इसके लिए क्रान्ति आवश्यक है -- यह विभिन्न प्रकार से तत्कालीन कवियों ने प्रकट किया । उन्होंने कर्म के संदेश द्वारा स्वाधीनता की ओर अग्रसर होने का आह्वान किया, जिसके परिणामस्वरूप सारे देश में जागरण की दुंदुभी बजी ।

जन्मभूमि के प्रति मातृत्व की भावना प्रदर्शित करना, अपनी समस्याओं को अंग्रेजों के समक्ष रखना, तत्कालीन दयनीय दशा का करुण चित्रण करना--ये सब वैचारिक क्रान्ति उत्पन्न करने के साधन रहे हैं । इन सारी भावनाओं की अभिव्यक्ति द्वारा तत्कालीन कवियों ने राष्ट्रीय क्रान्ति को उद्बुद्ध किया, उसे व्यापक और विस्तृत बनाया ।

द्विवेदी युग

भारतेन्दु युग की अपेक्षा द्विवेदी-युग में राष्ट्रीय क्रान्ति का स्वर और तीव्र हो उठा । राष्ट्र के प्रति क्रान्तिकारी विचार विभिन्न तरह से प्रदर्शित हुए । हिन्दी काव्य भी इन विभिन्नताओं से स्पन्दित होता रहा और विभिन्न रूपों में दिशाओं में क्रान्ति-भावनाएं प्रस्फुटित होती रहीं ।

अध्याय एक में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि क्रांति वैचारिक चेतना है । साथ ही यह भी कि क्रांति मूलत: राष्ट्रीय चेतना से ही उभरती है । वैसे इसके अनेक अन्य पक्ष भी हैं ।पर राष्ट्रीय चेतना के साथ ही अन्य चेतनाएं भी उभरती हैं ।

अतीत गान द्वारा क्रान्ति

राष्ट्रीय चेतना की भावना इस काल में अति तीव्रता से हुई । अत: क्रान्ति की भावनाएं भी भारतेन्दु-युग की अपेक्षा इस युग में अधिक प्रखर हुईं ।

क्रान्ति की वैचारिक चेतना को उद्दीप्त करने के लिए कवियों ने जन-मानस को भारत के गौरवमय अतीत का स्मरण कराया । भारत का अतीत गरिमामय रहा है । पर वर्तमान स्थिति दयनीय है । वर्तमान की इसी दयनीय दशा की तुलना में [illegible] ने उसी उज्ज्वल अतीत की गरिमा का वर्णन किया ।

अतीत गौरव गान की सर्वोत्कृष्ट तथा प्रसिद्ध रचना 'भारत भारती' है। उसके माध्यम से गुप्त जी ने भारत के अतीत गौरव का दर्शन कराया और हिन्दुओं को उत्थान के लिए क्रान्तिकारी प्रेरणा दी। इनका उद्देश्य था हिन्दुओं में सोई हुई राष्ट्रीय भावना और गौरव भावना को जगाना। इसीलिए उन्होंने लेखनी को संबोधित करते हुए कहा है --

स्वच्छन्दता से कर तुझे करने पड़ें प्रस्ताव जो,
जग जायं तेरी नोंक से सोये हुए हों भाव जो।[1]

वे हिन्दुओं को केवल अतीत दर्शन ही नहीं कराना चाहते थे, बल्कि वर्तमान दशा का बोध और भविष्य की सम्भावनाओं को भी बताना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने सारी समस्याओं पर विचार किया है और पुस्तक को तीन खण्डों में विभाजित किया है -- अतीत खण्ड, वर्तमान खण्ड और भविष्यत खण्ड। अतीत खण्ड भारत के परमोज्ज्वल अतीत का गौरवमय गुणगान है। आज का वृद्ध भारत कभी संसार में अग्रणी था।

हां, वृद्ध भारतवर्ष ही संसार का सिरमौर है,
ऐसा पुरातन देश कोई विश्व में क्या और है?
भगवान की भवभूतियों का यह प्रथम भाण्डार है,
विधि ने किया नर सृष्टि का पहले यहीं विस्तार है।[2]

अनेक प्रकार से भारत वर्ष की श्रेष्ठता का गौरवमय आख्यान कवि ने किया है --

भूलोक का गौरव,प्रकृति का पुण्य लीला-स्थल कहां?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल जहां।
सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है?
उसका कि जो ऋषि भूमि है, वह कौन? भारतवर्ष है।[3]

१- भारत भारती -- मैथिलीशरण गुप्त, पृ० १, सं० २००६
२- वही, पृ० ४
३- वही, पृ० ४ नवम संस्करण, १६५३

इस तरह 'भारत भारती' द्वारा भारत की प्राचीन सुषमा, भारत का प्राचीन गौरव याद दिला कर कवि ने वर्तमान के प्रति असंतोष पैदा करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया और असंतोष की चिनगारियां ही क्रान्ति के सुलगने में सहायक होती रही हैं।

गुप्त जी के अतिरिक्त अन्य कवियों ने भी भारत-भारती का गुनगान करते हुए प्राचीन वैभव को याद दिलाई। गोकुल चन्द्र शर्मा ने जनता को 'आर्य सन्तान' कहते हुए आगे बढ़ने को कहा --

> ह उठो आर्य संतान आगे बढ़ो, पड़ कूप में क्यों न ऊंचे चढ़ो।
> विलोको अवस्था हुई क्या यहां? चला प्रीत देखी तुम्हारा कहां।

इसी प्रकार रामनरेश त्रिपाठी, रामचरित उपाध्याय, सियारामशरण गुप्त, त्रिशूल आदि कवियों ने भी भारत की प्राचीन गरिमा का गान किया और राष्ट्रीय चेतना जगाई।

मातृभूमि के दैवीकरण द्वारा क्रान्ति

जन-मानस में क्रांति की भावना का प्रस्फुटन हो, इसके लिए कवियों ने राष्ट्रीय भावना को उद्बुद्ध करने के लिए मातृभूमि का दैवीकरण किया है। राष्ट्र के प्रति प्रेम हो और उसका उदात्तीकरण हो, इसके लिए उसमें श्रद्धाभाव का समावेश भी आवश्यक है। माता के प्रति मनुष्य को असीम श्रद्धा होती है। इसीलिए मातृभूमि को माता मानकर पूजा जाता रहा है। और जब इसी मातृभावना में उदात्तीकरण के फलस्वरूप दैवीकरण हुआ।

यों तो दैवीकरण की परम्परा का प्रारम्भ भारतेन्दु युग में श्रीधरपाठक की 'भारत वन्दना' शीर्षक कविता से ही हो गया था। पर वह भावना पुष्ट नहीं हो पाई थी। द्विवेदी युग में उसे पुष्टि तब हुई, जब क्रान्तिकारियों के कारण मातृ-भूमि को दुर्गा, काली आदि आराध्य देवियों की गरिमा मिली। कहीं-कहीं पर लक्ष्मी आदि भी कहा गया है।

बाबा सम्प्रदाय के क्रांतिकारी विशेषरूप से मातृभूमि को शक्ति का प्रतीक मानने लगे। बंगला उपन्यासों में विशेषत: बंकिमचन्द्र के उपन्यासों में यह भाव

१- पथ प्रदीप--गोकुलचन्द्र शर्मा, पृ०१८, प्रथमावृत्ति, १९७८वि०

उभरा है । हिन्दी-काव्य में मातृभूमि की शक्ति के अवतार रूप में तो उतना नहीं, पर श्रद्धेय, पूज्या और आराध्या के रूप में अधिक पूजा गया । बंकिम बाबू ने `आनन्द मठ` में `वंदेमातरम` नामक जो गीत लिखा था, वह राष्ट्रीय गीत बना और उसके आधार पर हिन्दी में मातृ वन्दना के अनेक गीत लिखे गए ।

भारत भूमि के देवीकरण के माध्यम से क्रान्ति-भावना जाग्रत करने वालों में मुख्यत: मैथिलीशरण गुप्त, महावीर प्रसाद द्विवेदी, राय देवी प्रसाद पूर्ण, गिरधर शर्मा, गोपाल शरण सिंह, रूपनारायण पाण्डेय आदि हैं । वर्तमान राष्ट्रीय शोषण के प्रति क्रान्तिकारी भावना उत्पन्न हो, इसके लिए राष्ट्र-प्रेम आवश्यक है और राष्ट्र-प्रेम उद्दीप्त हो सके, इसके लिए राष्ट्र के सुरम्य रूप-चित्रण की भी आवश्यकता है । श्री गिरिधर शर्मा ने `भारत माता` शीर्षक में `भारत भू` का एक ऐसा ही सुरम्य चित्र उपस्थित किया है --

`सुजल सुफल है मही यहां की
सस्य श्यामल मही यहां की
मलयज शीतल मही यहां की
विपुल मनोहर मही यहां की

-- सरस्वती, १९०५ ई०

श्रीधर पाठक ने देश को `जगत-मुकुट` बताया है --

जय जय प्यारा भारत-देश
जय जय प्यारा जग से न्यारा
शोभित सारा देश हमारा
जगत-मुकुट जगदीश दुलारा
जय सौभाग्य सुदेश
जय जय प्यारा भारत देश [१]

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी `वन्देमातरम` के आधार पर हिन्दी में `वन्देमातरम` गाया । मैथिलीशरण गुप्त ने भारतमाता के और भी उदात्त रूप

१- भारत गीत-- श्रीधरपाठक, पृ० १६, प्रथम संस्करण-

की कल्पना की है --

> नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है,
> सूर्य-चन्द्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है,
> नदियां प्रेम-प्रवाह फूल तारे मण्डल हैं,
> बन्दी विविध विहंग, शेषफन सिंहासन है ।

माधव शुक्ल ने भी देश के दैवी रूप का विविध वर्णन किया है । 'देश वन्दना' शीर्षक कविता में उन्होंने एक सम्पूर्ण राष्ट्र के प्रत्येक अंग का वन्दना की है --

> जयति जयति हिन्द देश, जय स्वराज जय स्वदेश ।
> जयति महाराष्ट्र अंग, सिंध राजस्थान संग ।
> मद्र पंचनद सुशान्त, पुण्य भूमि युक्त प्रांत ।[1]
> जयति जयति हिन्द देश ।

भूमि के गुणगान के साथ इन कवियों ने भारतभू की समन्वित जनशक्ति को भी उद्बुद्ध किया है --

> जन तीस करोड़ यहां गिन के,
> कर साठ करोड़ हुए जिनके ।
> जग में वह कार्य मिला किसको,[2]
> यह देश न साध सके जिसको ।

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि भारत की जन-चेतना का गौरव गान करते हुए उनकी सहज शक्ति को उद्वेलित करने का प्रयत्न किया करता है । इस प्रकार तत्कालीन कवि जन-भावना से संयुक्त मातृभूमि के रूप की प्रबल महिमा का गुणगान प्रस्तुत करते हैं और एकता का आह्वान करते हुए राष्ट्रीय-क्रान्ति को प्रोत्साहन देते हैं ।

राष्ट्र के भूमि और जन के गुणगान के साथ ही कवियों ने उसके दैवी रूप का वर्णन किया है और उस देवी के चरणों में अपना सर्वस्व न्यौछावर करने की

१- जागृत भारत-- माधव शुक्ल, पृ०२, १९२२ ई०

२- स्वर्ण सहोदर-- मैथिलीशरण गुप्त, सरस्वती, अगस्त, १९०८ई०, पृ० ३६२

कामना की है । भारत धर्मप्राण देश रहा है । इसलिए देश-भक्ति की उमड़ती श्रद्धा को प्रकट करने का एक सशक्त माध्यम था-- देवी रूप का वर्णन । रामनरेश त्रिपाठी ने मातृभूमि के दुर्गा रूप का वर्णन किया है --

अभय दुर्जया शक्ति-धारिणि,
निमिष में अरि उर विदारिणि,
खड्ग हस्ता तेज रूपिणि,
देवि दुर्जन दलनि ।

जन्मभूमि को लक्ष्मी रूप में चित्रित करते हुए श्री सियारामशरण गुप्त ने उसके दैन्य दुख निवारिणी रूप का वर्णन किया है --

जय अनिल कंपित मनोरम श्याम अंचल धारिणी
व्योमचुम्बी भाल हिमगिरि है तुषार किरीट है
जय जयति लक्ष्मी स्वरूपा दैन्य-दु:ख निवारिणी ।

द्विवेदी युग के अन्य कवियों ने भी, जैसे माताप्रसाद गुप्त ने जन्मभूमि, मन्नन द्विवेदी ने `मातृभूमि`, रामनरेश त्रिपाठी ने `जन्मभूमि`, लोचन प्रसाद पाण्डेय ने `हमारा देश`, गोपालशरण सिंह ने `मातृभूमि` शिवनारायण द्विवेदी ने `मातृगान` सियारामशरण गुप्त ने `जननी` शीर्षक कविताओं के माध्यम से जन्मभूमि का गौरवगान किया । इन कवियों के आह्वान के परिणामस्वरूप हिन्दी-भाषी जन-जीवन में क्रांति भावना का व्यापक प्रचार हुआ ।

वर्तमान चित्रण द्वारा क्रान्ति

वर्तमान की करुण दशा ही अतीत का स्मरण दिलाने में सहायक होती है । और अतीत का गौरव ही वर्तमान दुर्दशा से टकराकर क्षोभ एवं आक्रोश जगाती है । अतीत और वर्तमान के असामञ्जस्य से असन्तोष उत्पन्न होता है और यह असन्तोष ही क्रान्ति-चेतना के मूल में है ।

राष्ट्रीय-क्रान्ति-भावना से परिपूर्ण कवियों ने वर्तमान के दयनीय रूप का भी मार्मिक अंकन किया है । `वर्तमान दुरवस्था से उत्पन्न क्षोभ तथा आक्रोश अनेक रूपों में प्रकट हुई है कहीं पर वह तत्कालीन राजनीतिक घटनाओं के

सन्दर्भ में शासन की क्रूरता और अत्याचार पर प्रकाश डालती है तो कहीं जागरण-प्रेरणा तो कहीं उत्साह और उद्बोधन बनकर और कहीं बलि होने की इच्छा बनकर प्रकट हुई। इस प्रकार राष्ट्रीय-क्रान्ति भावना विविध रूपों में फूट पड़ी।

श्री मैथिलीशरण गुप्त ने `भारत भारती` में तत्कालीन करुण दशा का हृदयग्राही मार्मिक चित्रण किया है। एक और वे वर्तमान की दयनीय दशा देखते हैं और दूसरी ओर अतीत का वैभव। तब वे और अधिक दुख और करुणा से भर उठते हैं --

वह बोधि द्रुम कहां गया है ?
महावीर की दया कहां है ?
जो कुछ है सब नया यहां है,
वही पुराना भारत हूं मैं ?
हूं या था, चिन्तारत हूं मैं ?[1]

आगे वे और भी दुख प्रकट करते हैं कि आज भारत में मात्र पंक ही बच रहा है, कमल तो क्या, जल भी नहीं है --

भारत, कहो तो आज तुम क्या हो वही भारत अहो !
हे पुण्यभूमि ! कहां गई है वह तुम्हारी श्री कहो ?
अब कमल क्या, जल तक नहीं, सर-मध्य केवल पंक है,
वह राजराज कुबेर अब हा ! रंक का भी रंक है।

आज भारत की दशा इतनी दयनीय है कि यहां मात्र शूद्रत्व और पशुत्व ही शेष बचा है --

भारत तुम्हारा आज यह कैसा भयंकर वेष है ?
है और सब निःशेष केवल नाम ही अब शेष है।
ब्रह्मत्व,राजन्यत्व युत वैश्यत्व भी सब नष्ट है,
शूद्रत्व और पशुत्व ही अवशिष्ट है, हा ! कष्ट है।[2]

१- भारतभारती--- मैथिलीशरण गुप्त

2- वही, पृ. 122

देश-दशा के ऐसे ही करुण चित्रणों कर से देश-प्रेमियों के हृदय में करुण-भाव जग उठते हैं , क्षोभ जागता है और तब आक्रोश उत्पन्न होता है । यह क्षोभ और आक्रोश दयनीय दशा के कारण तो उत्पन्न होता ही है साथ ही शासन की अनेक क्रूर और अन्यायपूर्ण दमन-प्रक्रियाओं के कारण भी उत्पन्न होता है । अतः तत्कालीन राजनीतिक हलचलों के और हिन्दी काव्य में उनकी प्रतिक्रिया के अध्ययन से भी यह स्पष्ट होगा कि किस प्रकार क्रान्तिकारी भावनाएं प्रकट हो रह रही थीं ।

देश जब जागता है, तब शासन की क्रूरताओं का विरोध होता है । शोषित जब राष्ट्र विरोधी क्रियाओं का विरोध करते हैं और अपने बल,शौर्य द्वारा परतंत्रता को दूर हटा देना चाहते हैं । इसके लिए उनमें क्रान्ति की ज्वाला सुलगने लगती है ।

भारतेन्दु-युग में राष्ट्रीय-क्रान्ति-भावना की जो चिनगारी जली थी, वह अब ज्वाला बनकर भड़कने लगी । द्विवेदी-युग में स्वतन्त्रता के लिए समवेत कंठ से हुंकार निकलने लगा । विद्रोह एवं विध्वंस की वाणी स्पष्ट उभरने लगी ।स्वतंत्रता के लिए बलिदान तक होने की आकांक्षा जग उठी ।

द्विवेदी-युग में बंग-भंग प्रथम व्यापक राजनीतिक घटना हुई । सारा देश इससे क्षुब्ध हुआ, आन्दोलित हुआ । यत्र-तत्र हिन्दी काव्य में भी इस भावना का प्रकटीकरण हुआ है । बंग-भंग जैसे साम्प्रदायिक आन्दोलन से प्रेरित होकर मुसलमानों ने भी मुस्लिम लीग की स्थापना की । राष्ट्रीयता की भावना से भरे कवियों ने देखा कि हिन्दू-मुस्लिम फूट से देश कभी भी स्वतंत्र नहीं हो सकता । इसलिए कवियों ने यह अनुभव किया कि हिन्दू-मुस्लिम एकता की बहुत आवश्यकता है । इसलिए उन्होंने काव्य में भी प्रान्तीयता के मूलोच्छेद की आवाज उठाई । राय देवीप्रसाद पूर्ण ने लिखा --

मुसलमान हिन्दुओ ! यही है कौमी दुश्मन,
जुदा-जुदा जो करे फाड़कर चोली दामन ।

इसी प्रकार श्रीधर पाठक,मैथिलीशरण गुप्त, गिरिधर शर्मा, माधव शुक्ल आदि कवियों ने भी हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए चेतना फैलाई और इसके

माध्यम से राष्ट्रीय-क्रान्ति-भावना को बल प्रदान किया ।

इस समय लोकमान्य तिलक देश के अग्रणी नेताओं में से एक थे । १६१४ई० में ये क्रमा जेल से छूटकर आए और स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है की घोषणा द्वारा देश में नूतन क्रान्ति-भावना को स्थापित किया । इस नवीन क्रान्ति-भावना को हिन्दी -कवियों ने भी स्वर प्रदान किया ।

'भारत संतान' शीर्षक कविता में कवि त्रिशूल अपने जन्मसिद्ध अधिकार को दृढ़ता से मांग करते हैं और स्पष्ट करते हैं कि यदि कोई हमारा जन्मसिद्ध अधिकार छीनेगा तो कब तक मन मार कर बैठा जा सकता है --

हमारे जन्मसिद्ध अधिकार । अगर छीनेगा कोई यार ।
रहेंगे कब तक मन को मार। सहेंगे कब तक अत्याचार ।[1]
कभी तो आवेगा यह ध्यान।सकल मनुजों के स्वत्व समान ।

इस प्रकार तिलक द्वारा उत्प्रेरित होकर भारतीय जनता निर्भीक होकर स्वतंत्रता की मांग करने लगी । उसमें अभिमान जागृत हुआ । वह अपने अधिकारों के लिए तत्पर हो उठी ।

प्रथम विश्वयुद्ध का आरम्भ इन्हीं दिनों हुआ । अन्य देशों के स्वातन्त्र्य की मांग का प्रेरणादायक प्रभाव भारत पर भी पड़ा । इस समय देश में आतंकवादी कार्य भी जोरों पर थे । एक प्रकार की हलचल और उथल-पुथल से भारतीय जनता आक्रांत थी । इसीलिए भारतीय जन-जीवन में क्रान्ति तथा युद्ध-भावना जोरों से स्थान ले रही थी ।

इसी भावना से प्रेरित होकर गयाप्रसाद शुक्ल सनेही कर्म की तलवार उठाकर और उस पर ज्ञान की शान चढ़ाकर स्वाभिमान के साथ युद्ध में कूद पड़े--

लेकर कर्म-कृपाण, ज्ञान की शान चढ़ावो ।
बल-विद्या-विज्ञान निशान उर पर फहरावो ।
स्वाभिमान के साथ समर में सम्मुख आवो ।
वहाँ कला की चाल कला कौशल दिखलावो ।

१- त्रिशूल तरंग--त्रिशूल,पृ०२०,तृतीय संस्करण,दिसम्बर,१६२१--- प्रताप पुस्तक माला कार्यालय, कानपुर ।

श्री हरिराम पुजारी ने 'वन्दे मातरम' में बलिदान होकर भी 'वन्दे मातरम' की हुंकार की इच्छा की है --

टांग दो शूली पै मुझको खाल मेरी खींच लो ।
दम निकलते तक सुनो हुंकार वन्देमातरम ।।
देश से हमको निकालो भेज दो यमलोक को ।
जीत लें संसार को गुंजार वन्देमातरम ।।[१]

होमरुल स्वराज्य आन्दोलन का एक अन्य जबर्दस्त कदम था । १६१६ में श्रीमती एनीबेसेण्ट ने इसका नेतृत्व किया । इससे भी सारा देश आंदोलित हो उठा और स्वराज्य की भावना और बलवती हो गई । 'लेंगे होमरुल अपना' शीर्षक गजल में श्री माधव शुक्ल ने सर्वस्व न्योछावर करके भी होमरुल लेने की आकांक्षा व्यक्त की है --

खुशी से छीन लो घर बार जीवन प्रान धन मेरा ।।
ये आंखें फोड़ कर सारा जला दो तन वतन मेरा।।

\+ \+ \+

न छोड़ेंगे न छोड़ेंगे कभी यह टेक हम अपना ।
निकलती सांस तक बोलेंगे लेंगे होमरुल अपना ।।[२]

स्वराज्य की यह आकांक्षा होमरुल से भी अधिक बलवती होकर क कोटि-कोटि कंठों से फूट पड़ी थी । हरिराम पुजारी ने 'असहयोगी की प्रतिज्ञा' में उद्घोषणा की कि वे नौकरशाही के घमण्ड को चकनाचूर करके अपने 'जन्मसिद्ध अधिकार' को लें --

नौकरशाही के घमण्ड को जब कर देंगे चकनाचूर ।
'जन्मसिद्ध अधिकार' प्राप्त कर हम होंगे सुख से भरपूर ।।
जन्मभूमि जननी के दुस्सह दु:खों को कर देंगे दूर ।
जन्म सफल तब ही समझेंगे असहयोगी सेना के शूर ।।[३]

१-- स्वतन्त्रता की झनकार-- प्रथम भाग--हरिराम पुजारी, १६२२ ई०द्वितीय संस्करण
२-- जागृत भारत-- माधव शुक्ल, प्रथम संस्करण, १६२२, पृ० ३५
३-- स्वतन्त्रता की झनकार--हरिराम पुजारी, द्वितीय संस्करण, १६२२ ई०,प्रथम भाग, पृ० १२ ।

उपर्युक्त पंक्तियों में भारत की राष्ट्रीय क्रान्ति का अभय स्वर गूंज उठा है ।

तिलक की मृत्यु का भी देश पर व्यापक असर हुआ । उनके निधन को राष्ट्रीय क्षति समझा गया और शासकों का अत्याचार समझा गया । माधव शुक्ल ने इस अत्याचार की प्रतिक्रिया स्वरूप कहा --

सारी दुनिया कांप उठेगी दौम्मी दिल हिल जायेगा ।
आज भारती हुंकारों से लन्दन भी थर्रायेगा ।
आज पर्व दिन है स्वराज्य का गांधी युग का मेला है ।[1]
उठो भारती जल्द नहा लो स्वतंत्रता की बेला है ।

शासकों का दमन प्रारम्भ हो चुका था । पर राष्ट्र-भक्त भी बलिदान के माध्यम से क्रान्ति के लिए कटिबद्ध थे । 'उग्र' ने 'दमन नीति का स्वागत' किया - डर कर दबे नहीं --

दमन नीति के भूत भयंकर ।
तू हमको होवेगा- शं- कर ।।
प्रकटित होगा तुझ से ही सत-
स्वागत । स्वागत ।।

\+ \+ \+

कारागार स्वर्ग-सम जाना,
अत्याचार सहेंगे,-- ठाना ।।
इससे दूनी होगी ताकत ।
स्वागत । स्वागत ।।[2]

कविगण स्वयं तो जागे ही । अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा जनता-जनार्दन का आह्वान भी किया । माधव शुक्ल ने 'आह्वान' करते हुए कहा --

---

१- जागृत भारत -- माधव शुक्ल, पृ० २५, सन् १९२२ ई०

२- स्वतन्त्रता की झनकार, प्रथम भाग-- उग्र, द्वितीय संस्करण, १९२२ ई०,पृ०१८

चाहती है माता बलिदान-जवानों, उठो हिन्द सन्तान ।।
हंसते हुए फूल से आकर शीश झुका दो मां के पथ पर ,
कटता हो कट जाने दो सर तनिक न होना म्लान ।।
जवानों, उठो हिन्द सन्तान ।[1]

सम्पूर्ण भारत को जाग उठने का सन्देश देते हुए मैथिलीशरण गुप्त ने कहा —

अरे भारत उठ आंखें खोल ।
उड़कर यंत्रों से, खगोल में घूम रहा भूगोल ।
अवसर तेरे लिए खड़ा है,
फिर भी तू चुपचाप पड़ा है ।
तेरा कर्म क्षेत्र बड़ा है,
पल-पल है अनमोल ।

— चेतना : स्वदेश संगीत

इस प्रकार बलि होकर भी क्रान्ति का शंखनाद फूंकने वाले द्विवेदी युगीन कवियों ने मात्र बलि की ही नहीं बल्कि कर्मयुक्त बलिदान की आकांक्षा की, क्योंकि कर्म से ही क्रान्ति सम्भव है —

कर्म है अपना जीवन-प्राण,
कर्म पर हो वारो बलिदान ।

कर्मवीर बनने की प्रेरणा देते हुए गुप्त जी ने कहा है —

बर वीर बन कर आप अपनी विघ्न बाधाएं हरो ।
मर कर जियो, बन्धन विपद पशु-सम न जीते जी मरो ।

इस प्रकार द्विवेदी युग में बलिदान की चिनगारी क्रान्ति की अदम्य ज्वाला बनकर धधक पड़ी, जिसमें अत्याचार, क्रूरता, परतंत्रता सब के जल जाने की व कामना है । भारतेन्दु-युग की आशंका और दयनीय क्रान्ति-भावना, इस युग तक स्पष्ट और ओजस्वी स्वरों में अभिव्यक्त होने लगी थी ।

१- भारत गीतांजलि — माधव शुक्ल, प्रथम संस्करण, पृ० ३४, १९१७ ई०

छायावाद युग

पिछले पृष्ठों में कहा जा चुका है कि क्रान्ति मूलतः राष्ट्रीय चेतना से उभरती है । राष्ट्रीय-चेतना देशभक्ति से उत्पन्न होती है । प्रारम्भ से ही देशभक्ति की भावना मनुष्य में रहती है और परतंत्रता में यह देशभक्ति और भी मुखर हो उठती है ।

द्विवेदी-युग में जो राष्ट्रीय-क्रान्ति-भावना पैदा हुई थी वह छायावाद युग तक और भी प्रज्वलित हो उठी । भारतेन्दु-युग में जिस वैचारिक क्रान्ति का प्रारम्भ हुआ था, वह द्विवेदी युग में विकसित हुआ और छायावाद युग में उसका उत्कर्ष हुआ ।

अतीत गान द्वारा क्रान्ति

पूर्व दो युगों की भांति इस युग में भी अतीत के गौरवमय वर्णन द्वारा कवियों ने वर्तमान के प्रति चेतना पैदा की । राष्ट्रीय-भावना की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम अतीत गौरव-गान इस युग में भी रहा । जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' , रामचरित उपाध्याय, सुरेन्द्र, हरिकृष्ण प्रेमी, दिनकर, सोहनलाल द्विवेदी आदि कवियों ने वर्तमान की दयनीय दशा की पृष्ठभूमि पर अतीत गरिमा का जीवन्त चित्रण कर राष्ट्रीय-क्रान्ति-भावना का अत्यन्त प्रचार किया ।

प्रसाद में अतीत गौरव-गान की भावना सर्वोच्च रही है । उनके नाटकों में यह भावना विशेषतः मिलती है, पर काव्य में भी कम नहीं । 'कामायनी' महाकाव्य की रचना द्वारा जातीय उत्कर्ष की ओर उन्होंने उन्मुख किया । नाटकों के गीत द्वारा इस भावना को बहुत अधिक पुष्टि दी । 'स्कन्द गुप्त' के एक गीत में उन्होंने कहा है कि हिमालय के आंगन में बसा भारत प्रथम किरणों का उपहार पाकर गौरवान्वित है । भारत ने ही सम्पूर्ण विश्व को जगाया है —

जगे हम लगे जगाने विश्व, विश्व में फैला फिर आलोक ।[1]
व्योमतम पुंज हुआ तब नष्ट, अखिल संसृति हो उठी अशोक ।।

'पेशोला की प्रतिध्वनि' में भी महाराणा प्रताप के त्यागमय चरित्र के माध्यम से अतीत का ही गौरव-गान प्रसाद जी ने किया है ।

निराला ने भी अतीत-गौरव-गान के माध्यम से क्रान्ति-भावना को बल प्रदान किया है । 'जागो फिर एक बार' शीर्षक कविता में उन्होंने सिक्खों को उद्बोधन किया है ।

'छत्रपति शिवाजी का पत्र' शीर्षक कविता उन्होंने १९२२ ई० में लिखी और शिवाजी के शौर्य को भारत-जन-मानस में प्रतिष्ठापित किया —

एकीभूत शक्तियाँ से एक हो परिवार,
फैले समवेदना,
व्यक्ति का विकास यदि बाधित हो जाय,
देखो परिणाम फिर,
स्थिर न रहेंगे पैर,
पस्त हौसला होगा
ध्वस्त होगा साम्राज्य ।[2]

'तुलसीदास' में भी निराला ने राष्ट्र के सांस्कृतिक गौरव का गुणगान किया है ।'तुलसीदास' के रूप में निराला ने आधुनिक कवि के स्वाधीनता सम्बन्धी भावों के उदय और विकास का चित्रण किया है ।

सुभद्रा कुमारी चौहान और दिनकर भी राष्ट्रीय क्रान्ति के उन्मेष के लिए अतीत गरिमा का सफल चित्रण करते हैं । सुभद्रा कुमारी चौहान की 'झाँसी की रानी' शीर्षक कविता युग-युग तक क्रान्तिकारियों को प्रेरणा देती रही —

१- स्कन्द गुप्त—जयशंकर प्रसाद, पृ० १९० सं०२०११

२- अपरा — निराला, द्वितीय संस्करण, पृ० ८०-८२, सं०२००८ वि०

सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,

बूढ़े भारत में भी फिर से आई नई जवानी थी ,

गुमी हुई आज़ादी की कीमत सब ने पहचानी थी,

दूर फिरंगी को करने को सबने मन में ठानी थी,

चमक उठी सन् सत्तावन में

वह तलवार पुरानी थी ।

बुन्देले हरबोलों के मुंह

हमने सुनी कहानी थी ।

खूब लड़ी मरदानी वह तो

झांसी वाली रानी थी ।[१]

सुभद्रा कुमारी चौहान की उपर्युक्त पंक्तियां जन-जन के कंठ से फूट पड़ी थी ।

'हिमालय' हमेशा हमेशा से गर्वोन्नत सिर उठाये अजेय खड़ा है । दिनकर ने इसी 'हिमालय' के माध्यम से क्रान्ति भावना प्रकट की है --

युग-युग अजेय निर्बन्ध, मुक्त

युग-युग गर्वोन्नत, नित महान,

निस्सीम व्योम में तान रहा

युग से किस महिमा का वितान ।[२]

पर देश के स्वातन्त्र्य का यह हिमालय आज मौन है । इसलिए कवि उसे उन राष्ट्र-नायकों को याद करने को कहता है, जिनमें भारतवर्ष की गरिमा सन्निहित है --

तू पूछ अवध से, राम कहां,

वृन्दा ! बोलो, घनश्याम कहां

ओ मगध ! कहां मेरे अशोक,

वह चन्द्रगुप्त बलधाम कहां ।[३]

१- मुकुल-सुभद्राकुमारी चौहान, पृ०[illegible], सन् १९३०

२- रेणुका- रामधारी सिंह दिनकर, पृ०[illegible], सन् १९३५

३- वही, पृ० [illegible]

वर्तमान स्वतन्त्रता के रणमतवालों को उद्बोधन करते हुए मोहनलाल द्विवेदी ने मेवाड़ देश को जगाया है —

> ऐ रण मतवाले जाग-जाग ।
> जौहर व्रत वाले जाग-जाग ।।
> हे स्वतन्त्रता की आग जाग,
> हे देश मुकुट मणि जाग-जाग ।[1]

इसी प्रकार इस युग के अन्य कवियों ने भी अतीत-गौरव-गान और अतीत स्मरण के माध्यम से राष्ट्रीय-क्रान्ति की भावनाओं को स्वर दिया है । रामचरित उपाध्याय ने 'पूर्व रूप' (सरस्वती, जुलाई, १९२५ ई०) और 'दैशिक धर्म' (सरस्वती नवम्बर, १९२५ ई०) शीर्षक कविताओं में, श्री सुरेन्द्र ने 'सारनाथ के खण्डहरों से (विशाल भारत, जनवरी, १९३४ ई०) शीर्षक कविता में अतीत स्तवन किया है ।

मातृभूमि के दैवीकरण द्वारा क्रान्ति

राष्ट्रीय क्रान्ति के उन्मेष के लिए प्रत्येक युग के कवि मातृभूमि का दैवीकरण भी करते रहे हैं । छायावाद युग में भी यह प्रवृत्ति रही है । इस काल में भारत की प्राकृतिक शोभा वर्णन की ओर कवियों का ध्यान अधिक रहा । गिरिधर शर्मा 'राष्ट्रीय गान' शीर्षक कविता में (१९२०) में अपने देश की सुषमा का उल्लेख यों करते हैं —

> जय जय प्यारे देश । रम्य हमारे देश ।
> दृग के तारे, जग उजियारे, प्रिय के प्यारे देश ।[2]

चण्डीप्रसाद 'हृदयेश' ने जन्मभूमि के 'क्लेश-दुख-दंभ-दुरित-दलनी' स्वरूप का अंकन किया है । साथ ही उसके भव्यस्वरूप का अंकन भी प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ किया है —

१- मेवाड़ के प्रति— मोहनलाल द्विवेदी, चांद, नवम्बर १९३१, पृ०९९०
२- राष्ट्रीय गान — गिरिधर शर्मा, सरस्वती, सितम्बर, १९२०, पृ० २७८

तेरे पद-नख-चारु-चन्द्रमणि-मंडित मौलि जलेश्वर का,
तेरे काश्मीर-कुंकुम-कण-अंकित अंग महेश्वर का ।
धन्य -धन-धुरी धर्म-धमनी ।[1]

श्री द्विजेन्द्र ने भी भारत के शौर्य और निर्भय का चित्रण किया है -

पद तल पर विस्तृत है सागर
क्षण-क्षण में भीषण निनाद कर
फैलाता आतंक जगत पर
किसी का सहय नहीं आमर्ष ।[2]

लोचन प्रसाद पाण्डेय ने भारत-जननी से स्वतन्त्रता के लिए हुंकार करने की प्रार्थना की है --

तू स्यात मुक्तिदायिनी अहो त्रिभुवन में,
रखेगा तुमको कौन अंध बन्धन में ?
तू स्वतन्त्रता हुंकार प्रखर हुंकारे ,
तुम सत्य आत्मनिर्णय का नियम सुधारे ।[3]

'भारति जय-विजय करे' शीर्षक कविता में निराला ने मातृभूमि के उदात्त रूप के चित्रण द्वारा क्रान्ति-भावना प्रकट की है --

मुकुट शुभ्र हिम-तुषार,
प्राण प्रणव ओंकार,
ध्वनित दिशाएं उदार,
शतमुख- शतरव मुखरे ।[4]

प्रसाद ने अपने नाटकों में गीतों के माध्यम से मातृभूमि का अत्यन्त रम्य गौरवमय चित्रण किया है । 'चन्द्रगुप्त' में कोर्नेलिया के मुख से मातृभूमि के

१- वन्दना करं-- चण्डीप्रसाद हृदयेश , माधुरी, सितम्बर, १९२२, पृ०१५३
२- भारतवर्ष -- द्विजेन्द्र, सरस्वती, जनवरी १९२१, पृ०२९
३- भारत स्तुति-- लोचन प्रसाद पाण्डेय, माधुरी, दिसम्बर, १९२३, पृ० ५२७
४- गीतिका -- निराला, पृ० ७९, १९६३ वि०

सौष्ठव की व्यंजना हुई है --

अरुण यह मधुमय देश हमारा ।

जहाँ पहुंच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा ।[1]

सुमित्रानन्दन पंत, रामचरित उपाध्याय आदि कवियों ने भी भारत-माता के विराट् रूप का अंकन किया है । इस प्रकार छायावादी कवियों ने अपनी जन्मभूमि के इस विराट् गरिमामय पावन-रूप चित्रण द्वारा राष्ट्रीय-क्रान्ति - भावना की अभिव्यक्ति की है ।

वर्तमान चित्रण द्वारा क्रान्ति

गांधीजी के पदार्पण के साथ ही भारतीय राष्ट्रीयता एक नवीन दिशा की ओर बढ़ी । सत्याग्रह और असहयोग के सहारे उन्होंने राष्ट्रीय-चेतना में कर्मयोग की क्रान्ति का आरम्भ किया । द्विवेदी-युग तक राष्ट्रीय-क्रान्ति-भावना उतनी अधिक सक्रिय नहीं हो सकी थी, जितनी अब हुई । अब उसे जन-जीवन का सम्पर्क मिला, लोक शान्ति मिली और कर्म की गतिमयता प्राप्त हुई । इसलिए इस युग में क्रान्ति-भावना एक नवीन शक्ति के साथ अभिव्यक्त होती रही ।

इस काल के पूर्व तक की राष्ट्रीय-चेतना में ब्रिटिश राज्य के प्रति आस्था के स्वर मिलते रहे हैं । यही कारण है कि लोग औपनिवेशिक स्वराज्य की मांग करते थे । पर ब्रिटिश राज्य के कारनामों ने इस आस्था को तोड़ दिया । इस आस्था के टूटते ही राष्ट्र में ध्वंसात्मक क्रान्ति का आरम्भ हुआ । लोग परिवर्तन की मांग करने लगे । और परिवर्तन की आकांक्षा क्रान्ति को जन्म दिया करती है । दमन और अत्याचार के विरोध की नयी प्रक्रिया आरम्भ हुई । यह थी सत्य और अहिंसा की । इन्हें गांधीजी ने राष्ट्र को प्रदान किया था । पर सत्य का प्रयोग बहुत आसान नहीं था । यही बात अहिंसा के सम्बन्ध में भी है । फिर भी गांधी जी की प्रेरणा इतनी बलवती थी कि सत्य और अहिंसा को

१- चन्द्रगुप्त -- प्रसाद, पृ० १००,सं० २००६

यह विधि जन-जन के मन में स्थान बनाने लगी । रक्तपात की जगह सत्याग्रह ने स्थान बनाया और इस प्रकार बलिदान की क्रान्ति से राष्ट्रीय चेतना को नवीन दिशा मिली । इस नवीन चेतना से अनुप्राणित हिन्दी-कवियों ने क्रान्ति के विविध स्वरों को ग्रहण किया तथा लोक-जीवन में अनुस्यूत स्वतन्त्रता की इच्छा को अधिक विद्रोही और शक्ति सम्पन्न किया ।

वर्तमान की जैसी और जितनी अभिव्यक्ति छायावाद-युग में हुई, उतनी अन्य युगों में नहीं । इस काल में हिन्दी काव्य में विद्रोह की व्यंजना हुई । यह विद्रोह अहिंसक-क्रान्ति के स्वर में फूटा ।

क्रान्ति की यह भावना हिन्दी काव्य में सर्वप्रथम असहयोग के रूप में प्रकट हुई । वर्तमान जनित क्षोभ की प्रतिक्रिया स्वरूप ही असहयोग का आरम्भ हुआ दिनकर ने इस क्षोभ को अभीत होकर प्रकट करते हुए कहा --

'वर्तमान की जय अभीत हो खुल कर मेरी पीर करे
एक राग मेरा भी रण में, बंदी की झंकोर करे ।'[1]

त्रिशूल ने भी 'असहयोग' करने का संदेश देते हुए कहा --

'गुलामी में क्यों वक्त तुम खो रहे हो,
जमाना जगा हाय तुम सो रहे हो ।
कभी क्या थे पर आज क्या हो रहे हो,
यही बैठ हर बार क्यों रो रहे हो,
असहयोग कर दो असहयोग कर दो ।'[2]

असहयोग की यह वाणी निर्बलता के कारण नहीं, बल्कि सबलता के रूप में गुंजित हो रही थी । इसमें अकर्मण्यता भी नहीं थी, बल्कि विद्रोह तथा क्रान्ति भरी हुई थी । असहयोग क्रान्ति ही थी । पर यह क्रान्ति हिंसात्मक नहीं गांधी की प्रेरणा से अहिंसात्मक बन चुकी थी । हिंसा और अहिंसा का यह युद्ध अनोखा था । अत्याचार के प्रति भीषण क्रान्ति हिन्दी काव्य में फूट पड़ी थी

१- हुंकार-- रामधारी सिंह दिनकर, पृ० २, सं० १९५२ ई०
२- राष्ट्रीय मंत्र-- त्रिशूल , पृ० ३०, १९२१ ई०

पर वह बलिदान के रूप में हो । इसीलिए श्री माखनलाल चतुर्वेदी 'पुष्प' के रूप में प्रकट होकर, केवल यही चाहते हैं कि वे उस पथ पर फेंक दिए जाएं, जिस पर मातृभूमि के लाल अपने शीश चढ़ाने जाएं --

चाह नहीं, मैं सुरबाला के गहनों में गूंथा जाऊं
चाह नहीं, प्रेमी माला में बिंध प्यारी को ललचाऊं ।
चाह नहीं, सम्राटों के शव पर हे हरि ! डाला जाऊं
चाह नहीं, देवों के सिर पर चढ़ूं भाग्य पर इठलाऊं ।
मुझे तोड़ लेना वनमाली ।
उस पथ में तुम देना फेंक ।।
मातृ-भूमि पर शीश चढ़ाने ।
जिस पथ जावें वीर अनेक ।।[१]

असहयोग जन्य इस क्रान्ति का चित्रण सुभद्रा कुमारी चौहान ने यों किया है --

पन्द्रह कोटि असहयोगिनियां,
दहला दें ब्रह्माण्ड सखी !
भारत लक्ष्मी लौटाने को
रच दें लंकाकाण्ड सखी ।[२]

सत्याग्रह असहयोग का मूल अंश है । सत्याग्रही अमर-अमर है । अतः वह निर्भीक है । सत्याग्रह रूपी तलवार में चारों ओर तीव्र धार है --

सत्याग्रह प्रेमास्त्र मनों को हरने वाला,
विविध परम विरोध उन्हें वश करने वाला,
क्या मनुष्य, वह नहीं काल से डरने वाला,
अमर-अमर वह, नहीं किसी से मरने वाला ।

१- मरण -ज्वार -- माखनलाल चतुर्वेदी, पृ०१५, प्रथम संस्करण, मार्च १९६३
२- मुकुल -- सुभद्राकुमारी चौहान, पृ० ६४, १९५७ ई०

कहते थे गोखले सत्याग्रह तलवार है ।
जिसमें चारों ही तरफ, धरी तीव्रतर धार है[1]।

और आगे सत्याग्रही के कर्तव्यों को बतलाते हुए वे कहते हैं कि सत्याग्रही वही है, जो 'अन्यायी कानून' और 'असत्यादेश' को नहीं माने । ऐसे सत्याग्रही को 'सत्य के रण' में अवश्य विजय होती है --

'उसका है कर्तव्य जो कि सत्याग्रह ठाने,
अन्यायी कानून असत्यादेश न माने ।
छेड़े हरदम रहे प्रेम, आनन्द तराने,
निश्चित अपनी विजय सत्य के रण में जाने[2]।।

सत्याग्रह को कुचलने के लिए दमन की नीति अपनाई गई । पर सत्याग्रहियों ने दमन का भी स्वागत किया । दमन के विरोध में भी वे चुप रहे । देश-स्वातन्त्र्य उनका लक्ष्य था । उसके लिए वे मर-मिटने को भी तैयार थे । दमन के अत्याचार को सहने के लिए वे कटिबद्ध थे --

दमन-नीति के भूत-भयंकर ।
तू हमको होवेगा - शंकर ।।
प्रकटित होगा तुझसे ही सत--
स्वागत । स्वागत ।।

\+ \+ \+

कारागार स्वर्ग-सम जाना,
अत्याचार सहेंगे- ठाना ।।
इनसे दूनी होगी ताकत ।
स्वागत - स्वागत[3]।

सत्याग्रही-क्रांति की प्रत्येक झलक हिन्दी-कविता में बोली है । शीश कटाकर भी वे अन्याय का प्रतिरोध करेंगे । उन्हें विश्वास है कि वे दमन का

१- राष्ट्रीय मंत्र -- त्रिशूल, पृ० ५, १९२२ ई०

२- वही, पृ० ६

३- स्वतन्त्रता की झंकार -- प्रथम भाग, उग्र, पृ० १८ सन् १९२२ ई०

द्वार भी हिला देंगे --

> नहीं अब सहेंगे हम अन्याय,
> शीश यह रहे चहे कटि जाय ।
> करेंगे असहयोग सरकार,
> हिला देंगे लन्दन का द्वार ।[१]

इतना ही नहीं, वे इससे प्रसन्न भी हैं, क्योंकि हथकड़ियां उनके लिए गहना है । कारावास में कोल्हू का चरमर चूं उनके लिए जीवन का तान है । मोट खींचकर वे ब्रिटिश राज्य को अकड़ का कुंआ खाली करते हैं --

> हथकड़ियां क्यों ? यह ब्रिटिश राज का गहना
> मिट्टी पर ? अंगुलियों ने लिक्खे गाने ।
> कोल्हू का चरमर चूं ? जीवन की तानें ।
> हूं मोट खींचता लगा पेट पर जूआं,
> खाली करता हूं ब्रिटिश अकड़ का कुंआ ।[२]

इस प्रकार आलोच्य-काल की हिन्दी -कविता असहयोग और सत्याग्रह की अहिंसक-क्रांति-भावना से आच्छादित रही । दमन-चक्र की कटुता, भीषणता और अत्याचार ने क्रांति-चेतना को और अधिक गति प्रदान की । और इस राष्ट्रीय क्रान्ति-चेतना की पूर्ण अभिव्यक्ति हिन्दी काव्य में हुई है । इस क्रान्ति का मूलाधार स्वतन्त्रता है । स्वतन्त्रता से तात्पर्य है, सर्वस्व अपना होना । आकाश धरती सब पर जनता का अधिकार हो । 'निशीथ चिन्ता' में रामनरेश त्रिपाठी ने ऐसा ही स्वराज्य चाहा है --

> अपना ही नभ होगा अपने विमान होंगे,
> अपने ही यान जब सिन्धु पार जायेंगे ।
> जन्मभूमि अपनी को अपनी कहेंगे हम,
> अपनी ही सीमा हम अपने रखायेंगे ।[३]

१- जागृत भारत -- माधव शुक्ल, पृ० १३, सन् १९२२

२- हिमकिरीटिनी -- माखनलाल चतुर्वेदी, पृ० १५, सं० १९९८

३- निशीथ चिन्ता -- रामनरेश त्रिपाठी, सरस्वती, अगस्त १९३०, पृ० १२१

क्रान्तिकारी निर्भय होता है । क्रान्ति के लिए निर्भयता आवश्यक है । इसीलिए निराला ने देशवासियों को निर्भय रहने की प्रेरणा दी । निर्भय को स्वाधीनता का पर्यायवाची मानते हुए वे सम्पूर्ण देश को उद्बुद्ध करते हैं --

समझा मैं
भय ही व्यवस्था का जनक है
निर्भय अपने को
और दुर्बल समाज को
करके दिखाना है --
स्वाधीन का ही
एक और अर्थ निर्भय है[1] ।

परतन्त्रता के प्रति यह निर्भयता विद्रोह करती है और यही विद्रोह-भावना क्रान्ति बनकर प्रकट होती है । 'जागो फिर एक बार' में निराला इसी से देश की जनता का आह्वान करते हैं कि तुम पशु नहीं, वीर हो । कालचक्र में पड़कर भले ही दबे हो, पर तुम 'समर सरताज' और हमेशा मुक्त रहे हो --

'आया है आज स्यार-
जागो फिर एक बार

+ + +

पशु नहीं, वीर तुम,
समर-शूर, क्रूर नहीं,
काल चक्र में हो दबे,
आज तुम राजकुंवर,
समर सरताज ।
मुक्त हो सदा ही तुम,
बाधा-विहीन-बन्ध छन्द ज्यों,
डूबे आनन्द में सच्चिदानन्द रूप ।[2]

१- स्वाधीनता पर -- निराला, संख्या १, १९२४ ई०,पृ०४१

२- अपरा-- निराला सं०२००६ वि०, पृ० ९-१०

उपर्युक्त विवेचन से एक बात और स्पष्ट है कि इस युग की क्रांति-भावना के दो रूप हैं -- एक है, विध्वंसात्मक क्रान्ति और दूसरा है, त्याग द्वारा क्रान्ति । उन्हें ही हिंसक क्रान्ति और अहिंसक क्रान्ति कह सकते हैं । इनमें अहिंसक क्रान्ति का स्वर बलवान रहा ।

अहिंसक क्रान्ति रक्त लेना नहीं देना जानती है । स्वतन्त्रता के लिए भारतीय सत्याग्रहियों ने अपने प्राणों का उत्सर्ग किया । वे न केवल अपने प्राणों को, बल्कि समस्त भूमण्डल को मातृभूमि की बलिवेदी पर अर्पित करना चाहते हैं । हिन्दी-काव्य में यह स्वर यों अभिव्यक्त हुआ--

जय स्वतंत्रिणी भारत मां
यों कलकर मुकुट लगाने दो ।
हमें नहीं, इस भूमण्डल को,
मां पर बलि बलि जाने दो ।[1]

ऐसे स्वतन्त्रताकांक्षी रण-क्षेत्र में अपना शीश सहर्ष अर्पित कर देते हैं--

बोते रण-खेत में हैं शीश वे सहर्ष, जिसे
जाति है रखाती जागती, वे पड़ सोते हैं ।
जग में उजाला करने को निज शोणित से
दीपक स्वतंत्रता का सूरमा संजोते हैं[2] ।

बलिदान की महत्ता के प्रमुख गायकों में माखनलाल चतुर्वेदी हैं । इनकी क्रान्तिमय कविताओं ने देश में उत्सर्ग-पर्व का आयोजन की स्वतंत्रता पर मर मिटने वालों की एक सेना ही तैयार कर दी, जिसके समक्ष साम्राज्यवाद के पांव डगमगाने लगे । पुष्प की अभिलाषा प्रत्येक जन-~~जीवन-की~~ मन की अभिलाषा थी । वे मिट जाने में ही हरियाली देखते हैं --

---

१- मुकुल -- सुभद्रा कुमारी चौहान, पृ०२५, सन् १९४० ई०
२- स्वतन्त्रता का दीपक -- रामनरेश त्रिपाठी, सुधा, नवम्बर १९३०, पृ०३४१

मैंने मिट जाने में सीखा
है जग में हरियाना,
मेरी हरियाली दुनिया है
मिट्टी में मिल जाना ।[1]

'मैं हूं एक सिपाही' में भी उन्होंने तत्कालीन स्वातन्त्र्य आन्दोलन के लिए बड़ी ही क्रान्तिकारी प्रेरणा दी है --

श्रम सीकर प्रहार पर जीकर बना लक्ष्य आराध्य,
मैं हूं एक सिपाही, बलि है मेरा अंतिम साध्य ।

इसी प्रकार उत्सर्ग की भावना से उद्दीप्त माखनलाल चतुर्वेदी का काव्य है । उनके ये गीत क्रान्ति-जागरण के मशाल थे । उन्होंने स्वयं देश की लड़ाई में भाग लिया था और अपने गीतों द्वारा जनता को भी उद्बुद्ध किया था ।

इस युग के हिन्दी-काव्य में क्रान्ति के दूसरे सफल गायक दिनकर रहे हैं । पर इनमें क्रान्ति का ध्वंसात्मक रूप अधिक उभरा है । वैसे इन्होंने बलिदानियों की प्रशस्ति भी की । इसीलिए वे जीवनदानियों को मृत्यु से अभीत रहने को कहते हैं --

जो अक्षय जीवन देता है, उसे मरण-संताप नहीं,
जलकर ज्वाला हुआ, उसे लगता ज्वाला का ताप नहीं ।[2]

राष्ट्रीय क्रान्ति के लिए अपने प्राणों को उत्सर्ग करने वाले वीरों की कीर्ति-गाथा दिनकर गाते हैं ।

जग भले ही उन्हें भूल जाए पर वे सेवानिष्ठ हैं । जननी भूमि के लिए मर मिटना उनका लक्ष्य है —

जग भूले, पर मुझे एक बस सेवा-धर्म निभाना है,
जिसकी है यह देह, उसी में इसे मिला मिट जाना है ।[3]

१- हिमकिरीटिनी -- माखनलाल चतुर्वेदी, पृ० २९, सं०१९९८

२- हुंकार -- रामधारी सिंह दिनकर, पृ० ५८, १९५२ ई०

३- वही, पृ० ६०

कवि अपनी कलम को उनका जयगान करने को कहता है, जो पुण्यवेदी पर अपनी गरदन का मोल लिए बिना ही चढ़ गए --

कलम आज उनकी जय बोल ।
जला अस्थियां बारी-बारी
छिटकायी जिनने चिनगारी ,
जो चढ़ गये पुण्य-वेदी पर लिये बिना गरदन का मोल
कलम आज उनकी जय बोल ।[1]

सोहनलाल द्विवेदी में भी क्रांति-स्वर बहुत उभरा है । राष्ट्रीय-क्रान्ति के प्रबल गायकों में वे रहे हैं । स्वतन्त्रता के लिए वे दासत्व से मुक्ति की कामना करते हैं और प्राणों की बाजी लगाने को कहते हैं --

भीम और अर्जुन के पुत्रों,
क्यों हुए हो दास ।
ऐसे पराधीन जीवन से
मधुर मृत्यु का पाश ।[2]

ऐसे वीरों की आहुतियों से यज्ञ-कुंड जलने लगा है, पर कवि को भय है कि कहीं बिना लक्ष्य प्राप्ति के ही यह ज्वाला मंद न पड़ जाए । इसलिए वह नए-नए आहुतियों को आहूत करता है --

धधक रही है यज्ञ कुंड में
आत्माहुति की शीतल ज्वाला,
होता ! मंद न पड़े हुताशन
नव नव अभिनव आहुतियां ला ।[3]

इस प्रकार तत्कालीन युग के अनेक कवियों ने बलिदान के गीत गाकर अहिंसक क्रान्ति की चिनगारी जलाई । यही बलिदान-भावना उग्र होकर हिंसक-क्रान्ति के रूप में भी उभरी है । वस्तुत: इस काल के कई हिन्दी कवि इस ऊहापोह

१- हुंकार-- रामधारी सिंह दिनकर, पृ० ३८, १९५२ ई०

२- भैरवी युवा विहान -- युगाधार-सोहनलाल द्विवेदी, पृ०४२, सं० २००१

३- केसी मेरी -- युगाधार-सोहनलाल द्विवेदी, पृ०९०,सं० २००१

में हैं कि कौन सी राह अपनाएं । कारण, उन्होंने जो कभी बलिदान के गीत गाए तो कभी क्रान्ति के लिए हुंकार भरा । मूक बलिदान धैर्य मांगता है । पर धैर्य की सीमा होती है । इसीलिए वे धैर्य से घबड़ाकर अहिंसक क्रान्ति का आह्वान करते हैं मूक प्राणों को हुंकार कर जागने की प्रेरणा देते हैं । दिनकर युग के मूक शैल को पुकारते हैं --

नए प्रात के अरुण ! तिमिर-उर में मरीचि संधान करो,[1]
युग के मूक शैल ! उठ जागो, हुंकारो कुछ गान करो ।

दिनकर मूलत: हिंसक क्रान्ति के ही गायक रहे हैं । क्रांति कुमारी को वे स्पष्ट जगाते हैं --

उठ वीरों की भाव तरंगिणि
दलितों के दिल की चिनगारी
युगमर्दित यौवन की ज्वाला
जाग-जाग री क्रान्ति कुमारी ।

नए युग की भवानी को प्रलय वेला में पुकारते हैं --

हृदय की वेदना बोली लहू बन लोचनों में,
उठाने मृत्यु का घूंघट हमारा प्यार बोला,
नये युग की भवानी आ गई वेला प्रलय की ।
दिगम्बरि ! बोल, अम्बर में किरण का तार बोला ।[2]

कवि के इस आह्वान पर 'विपथगा' आ पहुंचती है --

जब हुई हुकूमत आंखों पर, जनमी चुपके मैं आहों में,
कोड़ों की खाकर मार पली पीड़ित की दबी कराहों में,
सोने-सी निखर जवान हुई तप कड़ू दमन की दाहों में,
ले जान हथेली पर निकली मैं मर मिटने की चाहों में,
मेरे चरणों में मांग रहे भय-कंपित तीनों लोक शरण[3] ।

१- रेणुका-- रामधारी सिंह दिनकर, पृ० २२, १९३९ ई०
२- हुंकार -- ,, ,, पृ० २४ , १९४२ ई०
३- वही, पृ० ७४

इसी प्रकार दिनकर ने ताण्डव, आलोकधन्वा, स्वर्ग-दहन आदि कई, कविताओं में हिंसक-क्रान्ति की अभिव्यक्ति की है ।

बालकृष्ण शर्मा नवीन भी हिंसक-क्रान्ति के गायक हैं । वे स्पष्ट क्रान्ति का आह्वान करते हुए कहते हैं --

क्रान्ति ? क्रान्ति ? मेरे आंगन में
यह कैसा हुंकार मचा ?
बोलो तो यह किसने अपने--
श्वासों का फुंकार रचा ?

\+ + +

आओ क्रान्ति, बलायें ले लूं,
अनाहूत आ गयी भली,
वास करो मेरे घर आंगन,
बिचरो मेरी गली-गली,

\+ + +

नयी अग्नि ज्वाला भड़का दो तुम मेरे अन्तरतर में
अरी, नये, नक्षत्र जगा दो मेरे धूमिल अम्बर में । [१]

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि स्पष्टत: क्रान्ति से अग्नि-ज्वाला भड़काने की प्रार्थना करता है ।

कवि को धैर्य नहीं है । वह शान्ति से भर चुका है । अब परिवर्तन चाहता है । परिवर्तन की यह भावना ही उसे क्रान्ति की उत्प्रेरणा देती है और वह 'विप्लव गायन' कर उठता है --

कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल पुथल मच जाये,
एक हिलोर इधर से आये एक हिलोर उधर से आये ,
प्राणों के लाले पड़ जाएं, त्राहि-त्राहि स्वर नभ में छाये,
नाश और सत्यानाशों का धुआंधार जग में छा जाये ,

१- हम विषपायी जनम के -- बालकृष्ण शर्मा नवीन, पृ० ४४०-४४१, सन् १९६४

बरसे आग, जलद जल जाये भस्मसात् भूधर हो जायें,
पाप पुण्य सद् सद् भावों की धूल उड़ उठ दायें-बायें,
नभ का वक्षस्थल फट जाय, तारे टूक-टूक हो जायें,
कवि कुछ ... ... [1]

स्पष्ट है कि कवि आकाश, पृथ्वी सब का विध्वंस कर क्रान्ति चाहता है।

माखनलाल चतुर्वेदी में भी क्रान्ति का यह विद्रोही रूप यत्र-तत्र है। वे नित नवीनता चाहते हैं, रूढ़ि नहीं --

हम हैं नहीं रूढ़ि की
पुस्तक के पथरीले भार,
नित नवीनता के हम हैं
जग के मौलिक उपहार। [2]

यही कारण है कि उनकी विद्रोहिणी सिपाहिनी चूड़ियां त्यागकर क्रान्ति के युद्ध में कूदना चाहती है। अब उसका शृंगार तीर कमान और विरह बख्तर होगा --

चूड़ियां बहुत हुई कलाइयों पर
प्यारे, भुजदण्ड सजा दो,
तीर कमानों से सिंगार दो,
पूरा विरह बख्तर पहना दो। [3]

नरेन्द्र शर्मा भी क्रान्ति के लिए शिव का आह्वान करते हैं। वे चाहते हैं कि शिव निर्दय संसार पर ताण्डव नृत्य करें, जिससे धरती मरघट का रूप धारण कर ले --

---

१- हम विषपायी जनम के -- बालकृष्ण शर्मा नवीन, पृ० ४२८, १९६४ई०

२- हिमकिरीटिनी -- माखनलाल चतुर्वेदी, पृ० ५७, सं० १९९८

३- वही, पृ० १३६, सं० १९९८

नाचो शिव, इस निर्दय जग पर,
अन्यायी के आडम्बर पर,
ज्वाला के मुखर मे नाचो
पहन चिता के चपल लपट-पट
निखिल विश्व हो अवघट मरघट ।
नाचो, रुद्र, नृत्य प्रलयंकर ।
नाचो ताण्डव नृत्य भयंकर ।[1]

श्री शंभुनाथ सिंह ने छायावाद-युगीन इस क्रान्ति भावना को 'अराजकतावादी प्रलय आह्वान'[2] कहकर इसे लक्ष्यहीन घोषित किया है । वर्तमान की प्रतिक्रियास्वरूप इन क्रान्तिकारी कवियों ने प्रलयगान किया । तत्कालीन अत्याचार के फलस्वरूप यह विद्रोह प्रकट हुआ । इसलिए यह क्रान्ति उद्देश्यहीन थी, यह नहीं कहा जा सकता । यह क्रान्ति मूलत: क्रूर शासन के उन्मूलन के लिए ही प्रकट हो रही थी । वैसे इस क्रान्ति - भावना पर तत्कालीन आतंकवाद और अराजकतावाद का प्रभाव अप्रत्यक्षरूप से पड़ा पर मूलत: इसमें स्वराज्य प्राप्ति की ही आकांक्षा है । अत: इसे अराजकतावाद और लक्ष्यहीन नहीं कह सकते । क्रांति नाश के बाद निर्माण चाहती है । तत्कालीन क्रान्ति में भी क्रूर शासन के विध्वंस के साथ ही साथ स्वराज्य स्थापना की कामना है, जिसे हिन्दी-काव्य में अभिव्यक्ति मिली ।

प्रगतिवाद युग

राष्ट्रीय क्रान्ति की विचारधाराएं हिन्दी-काव्य में जिस प्रकार छायावाद युग में अभिव्यक्त हो रही थीं, वैसी ही प्रगतिवाद युग में नहीं रहीं ।

१- प्रभात फेरी-- नरेन्द्र शर्मा, पृ० १०३, सन् १९३९ ई०
२- छायावाद युग -- शंभुनाथ सिंह, पृ० ६३, सन् १९५२ ई०

इस युग का परिवेश भिन्न हो गया था और इसी से यह भिन्न आयामों से सम्पन्न होकर अभिव्यक्त होने लगी ।

छायावादी कवि मूलत: अनन्यता की आकांक्षा और असंतोष की भावना से ग्रस्त था । उसकी यही भावना क्रान्ति-भावना के रूप में प्रकट हो रही थी । प्रगतिवाद में यह क्षोभ, यह असंतोष और उत्तेजित हो उठा, जिसे हिन्दी काव्य में वाणी मिली । फलस्वरूप क्रान्ति की विचारधाराएं नई राहों से आगे बढ़ीं, जिनकी विवेचना प्रस्तुत है ।

अतीत गान द्वारा क्रान्ति

अन्य युगों की भांति प्रगतिवाद में अतीत गौरव-गान की परम्परा नहीं रही । यों, ऐसा नहीं कि अतीत का स्मरण किया ही न गया हो, किन्तु पूर्व युगों की तरह अतीत की यश-गाथा न गाकर कुछ भिन्न ही प्रकार से अतीत-स्मरण किया गया । अतीत गौरव-गान वर्तमान की अधोगति के कारण होता रहा है । अतीत के स्मरण द्वारा वर्तमान के प्रति क्षोभ और असंतोष को अभिव्यक्त करना ही कवियों का इष्ट रहा है । छायावाद में अतीत-गान बहुत हुआ, पर प्रगतिवाद में कई कारणों से यह धारा मन्द पड़ गई । इनमें निम्नांकित मुख्य हैं ।

प्रगतिवादी आदर्शवादी न होकर यथार्थवादी हैं । यथार्थ में अतीत की ओर नहीं, वरन् वर्तमान की कठोर भूमि पर रहा जाता है । इसीलिए प्रगतिवादियों को शोषण, अत्याचार, दमन आदि की क्रूर भूमि पर ही इतना टकराना पड़ा कि उन्हें स्वर्णिम अतीत की ओर जाने का अवकाश ही नहीं था । वर्तमान चित्रण के द्वारा ही वे क्रान्ति के उन्मेष में लगे रहे ।

परम्परा से विद्रोह छायावाद युग में ही आरम्भ हो चुका था । प्रगतिवाद में परम्परा को त्याग दिया गया । इसीलिए अतीत गान की परम्परा भी नष्ट हो गई ।

प्रगतिवाद प्रत्येक क्षेत्र में क्रान्ति लेकर आया । पुराने का इसने सर्वथा बहिष्कार किया । इसलिए इसने प्राचीन व्यवस्थाओं में भी विश्वास नहीं किया और इसीलिए प्राचीन गौरव-गाथा की ओर भी ध्यान नहीं दिया ।

इस काल में मुसलमान अपने अलग राष्ट्र की मांग के लिए आन्दोलन कर रहे थे। पर राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य के लिए यह आवश्यक था कि हिन्दू-मुस्लिम एकता हो। इस स्थिति में यदि हिन्दी कवि हिन्दुओं की अतीत महिमा गाते रहते तो स्वभावत: मुसलमानों के मन में पृथकत्व की भावना जागती। इसीलिए हिन्दी काव्य धारा ने अतीत गान के मोह को छोड़ दिया।

इस युग में विद्रोह बहुत अधिक था। सम्पूर्ण परिवेश उबाने वाला था और ऊब के कारण क्रान्ति भावना चरम सीमा पर पहुंच चुकी थी। जवानों ने सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व को पसन्द किया--गांधी के समझौतावाद को नहीं, क्योंकि सुभाष की प्रेरणा विद्रोही थी। इस विद्रोही मन:स्थिति में परम्परा गान का अवकाश नहीं था।

प्रगतिवादियों का यह भी कहना था कि अतीत की ओर लौटना पलायन है। वर्तमान संघर्ष ही उनका प्रधान लक्ष्य रहा। असंगतियों को मिटाना ही उनका ध्येय रहा था। वर्तमान के प्रति वे अत्यधिक जागरूक थे। इसलिए वर्तमान चित्रण ही उनका लक्ष्य रहा और अतीत-गान को वे भूल गए।

उपर्युक्त कारणों से इस युग में अतीत-गान परम्परा का लोप हो गया।

वर्तमान चित्रण द्वारा क्रान्ति

युगीन क्षोभ और आक्रोश को लेकर छायावाद युग में ही राष्ट्रीय क्रान्ति-भावना का प्रस्फुटन हुआ था। पर छायावाद-युगीन क्रान्ति-भावना एक सीमा तक आत्मनिष्ठ थी। प्रगतिवाद में यह भावना समाजनिष्ठ हुई। समाजनिष्ठ होने का एक प्रधान कारण था, इसका न केवल राजनीतिक दासता से मुक्त होने का प्रयत्न, वरन् आर्थिक दासता से भी।

इस युग की क्रान्ति-भावना में प्रलय के आह्वान के साथ ही साथ एक नवीन मानवता के विकास की इच्छा भी प्रकट की गई है। दिनकर, नरेन्द्र शर्मा, नवीन आदि में अहिंसात्मक क्रान्ति है, पर नयी मानवता के लिए उतना आग्रह नहीं। इस नवीन मानवता की आकांक्षा देश में व्याप्त दैन्य भावना के कारण हुई

इसीलिए सुमित्रानन्दन पंत तीस कोटि भारत संतानों को नग्न तन, अर्ध क्षुधित, शोषित, मूढ़, असभ्य, अशिक्षित देखकर व्यथित हो जाते हैं --

तीस कोटि संतान नग्न तन,
अर्ध क्षुधित, शोषित, निरस्त्र जन,
मूढ़, असभ्य, अशिक्षित, निर्धन[1]

यही कारण है कि इस युग में प्राचीन को पूर्णतः नष्ट कर सर्वथा नवीन के स्थापन की बलवती आकांक्षा अभिव्यक्त हुई है --

नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन
ध्वंस भ्रंश जग के जड़ बंधन ।
पावक पग धर आवे नूतन
हो पल्लवित नवल मानवपन ।

मानवता के भीषण शोषण की भयंकरता के अनुभव ने कवियों को प्रेरणा दी कि वे शृंखलाएं तोड़कर मूक मानवता के उत्थान के दर्शन करें --

दमन-शोषण-चक्र में अगणित युगों तक पिस चुकी है,
मूक मानवता न जाने कष्ट कितने सह चुकी है,
मुक्ति का संदेश या यह आज सहसा उठ रहा है-
तोड़ने को शृंखलाएं, बद्ध जिनमें रह चुकी है ।[2]

इस युग तक राजनीतिक परिवेश ऐसा हो गया था कि स्वतन्त्रता की आस बंध गयी थी । वर्ग-चेतना भी बहुत हो चुकी थी । इससे शोषित जन जाग उठे थे । बहुत अधिक असंतोष था । असंतोष से उत्पन्न क्रान्ति का स्वर दिनकर और नवीन में भी है । उसी स्वर को जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द ने भी वाणी दी है --

धीरे-धीरे युग-परिवर्तन की आहट आती जाती है,
गहन घटा-सी क्षितिज-पटल पर घिर-घिर कर छाती जाती है ।
क्या अकेले तूफानों में तू अपना भार संभाल सकेगा ?
एकाकी असहाय नाश की बेला कब तक टाल सकेगा ?[3]

१- आधुनिक कवि--सुमित्रानन्दन पंत, पृ०८५ सं०२०१७वि०
२- नवयुग के गान--जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, पृ०३ सं०१९९९
३- वही, पृ० ६

क्रान्ति के द्वारा कवि को एक नयी आशा है कि सब बन्धन की कड़ियां छिन्न हो रही हैं --

बन्धन की कड़ियां छिन्न हुई जाती हैं,
नूतन कविताएं मुक्ति गीत गाती हैं ,
आडम्बर, शोषण भस्म सभी कर देगी
मानव-उर से ऐसी ज्वाला निकलेगी
कल्याण-क्रान्ति का मन्त्र मिला है प्यारा,
जीवन-नायक वह तेरा एक इशारा ।[१]

पिछले पृष्ठों में कहा जा चुका है कि प्रगतिवाद युग मार्क्सवाद से प्रभावित था । यही कारण था कि उस समय हिन्दी काव्य में यदि राष्ट्रीय स्वातंत्र्य के लिए क्रान्ति के स्वर हैं तो साथ ही पुंजीवादी के उन्मूलन की आकांक्षा भी है । इसलिए इस काल की कविताओं में क्रान्ति की प्रखर भावना है । कवि जानता है कि बेड़ियां अश्रु-धारों से छिन्न नहीं होंगी । दर्द दुलार से दूर नहीं होगा और दासता मात्र पुकार से ही दूर नहीं होगी ।

जंजीर टूटती कभी न अश्रु-धार से
दुख-दर्द भागते नहीं दुलार से
हटती न दासता पुकार से गुहार से
इस गंगा तीर बैठ आज राष्ट्र शक्ति की
तुम कामना करो किशोर कामना करो ।[२]

तत्कालीन क्रान्ति के विचारधाराओं के मूल में दुखी मानवता का क्षोभ भरा हुआ है । इसीलिए कवि कहता है --

जो बने वाणी नये युग की वही मेरी कला है
मनुजता के व्यथित उर के क्षोभ की हुंकार हूं मैं ।
पीड़ितों के उमड़ते विद्रोह की अभिव्यक्ति हूं मैं ,
वंचितों का स्वत्व, दलितों का सखा, आधार हूं मैं ।[३]

१- वही, पृ० ४१
२- नवीन -- गोपाल सिंह नेपाली, पृ०१, सं०२००२
३- नवयुग के गान -- जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, पृ०३, सं० १९९९

रामदयाल पाण्डेय बलिदान के लिए तत्पर हैं, क्योंकि उन्हें अंधकार से उबर कर, नये प्रकाश से संसार भर जाए, इसकी आकांक्षा है --

तिमिर ग्रस्त भव को, ज्योतिर्मय
क्या प्रकाश का दान न दोगे
कोटि कोटि जन्मों के बदले
एक बार बलिदान न दोगे ।[१]

सोहनलाल द्विवेदी भी रक्तदान करने वालों के लिए मतवाले हैं, क्योंकि बलिदान के माध्यम से की गई क्रान्ति उन्हें प्रिय है --

हम तो हैं उनके मतवाले
बलि पथ पर जो रक्त चढ़ाते
विजय मिले या मिले पराजय
अपने शीश अर्घ दे जाते ।[२]

कवि को विश्वास है कि ऐसे ही संघर्षों में राष्ट्र का निर्माण होता है । क्रान्तिकारी विजय और पराजय की परवाह नहीं करते, क्योंकि क्रान्ति धीरे-धीरे राष्ट्र-निर्माण करती है --

आज राष्ट्र निर्माण हो रहा
अपना शत-शत संघर्षों में
धूप-छांह सी विजय-पराजय
राष्ट्र पनपता है वर्षों में ।[३]

इस प्रकार इन कवियों ने बलिदान के माध्यम से अहिंसक क्रान्ति की कामना की है । छायावाद युग में क्रान्ति की व्यक्तिगत चेतना थी और इसीलिए बलिदान का भाव रहा । प्रगतिवाद युग का भी कोई-कोई कवि अहिंसा पर

१- गण देवता -- रामदयाल पाण्डेय, पृ०१३२, सं० २०००
२- उगता राष्ट्र -- सोहनलाल द्विवेदी, विशाल भारत, पृ० ५०६, मई १९३९ ई०
३- वही

विश्वास करके बलिदान द्वारा ही देशोद्धार की आकांक्षी रहा ।

पर अब तक अधिकांश जनता की श्रद्धा गांधीवाद से हटने लगी थी । इसीलिए अहिंसक क्रान्ति पर से भी उनका विश्वास डिग रहा था । परतंत्रता से ऊबकर उकताकर अब वे किसी भी तरह स्वतन्त्रता पाना चाहते थे । साम्राज्यवाद के घोर विरोधी होने के कारण वे उसका विनाश किसी भी मूल्य पर चाहते थे । इसीलिए अब वे हिंसात्मक क्रान्ति की ओर अधिक झुकने लगे ।

इसीलिए आज के कवि फूल से पैदा होकर भी आग से खेलते हैं । वे जहर पी रहे हैं, फिर भी अमृत से घनिष्ठता है --

फूल से उत्पन्न हूं मैं , आग से है खेल मेरा,
जी रहा हूं मैं गरल पी, है अमिय से मेल मेरा ।[१]

अब कवि स्वयं को क्रान्ति की हुंकार मानने लगे , शक्ति, जीवन और जागरण का सबल संहार मानने लगे --

हुंकार हूं, हुंकार हूं, मैं क्रान्ति की हुंकार हूं ।
मैं न्याय की तलवार हूं ।
शक्ति,जीवन, जागरण का मैं सबल संसार हूं ।[२]

इस युग में भी कोई-कोई कवि थोड़ी देर के लिए दुविधाग्रस्त हो जाते हैं कि राष्ट्र के लिए विप्लव अच्छा है या बलिदान । मिलिन्द भी ऐसे ही कवियों में से एक हैं । पर वे दूसरे ही क्षण आश्वस्त हो जाते हैं कि अब 'दान' और 'विधान' से काम नहीं चल सकता । इसीलिए वे क्रान्ति की ज्वाला जलाने का आह्वान करते हैं --

फिर उठो फिर क्रान्ति की ज्वाला जलाओ
छोड़ यह पथ 'दान' और 'विधान' का युग ,
राष्ट्र का इतिहास फिर उज्ज्वल बनाओ
स्वत्व का, संघर्ष का, बलिदान का युग ।[३]

१-अंगार है शृंगार मेरे -- सुधीन्द्र, विशाल भारत, जुलाई १९४३, पृ० ६६६

२-- गीत -- महेन्द्र, विशाल भारत, मार्च, १९४४, पृ० १०८

३-- बलिपथ के गीत -- जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, पृ०९५, सन् १९५० ई०

द्विधा की यह स्थिति १९४६ में रही थी, क्योंकि देश स्वातंत्र्य के क्षण बहुत नजदीक थे और विधान के माध्यम से लक्ष्य प्राप्ति नहीं होते देखकर वे विप्लव की सरल राह अपनाना चाहते थे ।

यही कारण था कि आज का कवि स्पष्ट कहने लगा कि हम वे नहीं हैं, जिन्हें कुचल-कुचल कर दुनिया चलती जाएगी । इसीलिए वह ऐसे प्रलय गीत गाना चाहता है कि सारी दुनिया में आग लग जाए --

हम वे नहीं कि जिनको दुनिया कुचल कुचल कर चली जाये ।
हम वे नहीं कि जिनका मस्तक कभी न ऊपर उठने पाये ।
आंखों में, दिल में, प्राणों में, नस-नस में उन्माद जगा दें ।
ऐसा प्रलय गीत गावें जिससे दुनिया में आग लगा दें ।

छायावाद - युग के बलिदान के समर्थ पदगाती कवि श्री माखनलाल चतुर्वेदी भी अब सुधार और समझौता पसन्द नहीं करते । उन्हें अब लगता है कि यह ठिठौली है । इसीलिए अब वे हिंसक क्रान्ति चाहते हैं --

अमर राष्ट्र उद्दण्ड राष्ट्र,उन्मुक्त राष्ट्र, यह मेरी बोली,
यह सुधार समझौतों वाली, मुझको भाती नहीं ठिठौली ।
यह मैं चला पत्थरों पर चढ़, मेरा दिलवर वहीं मिलेगा ,
फूंक जला दे सोना-चांदी, तभी क्रान्ति का सुमन खिलेगा ।[१]

दिनकर भी अत्याचार से ऊब चुके हैं । इसीलिए वे भी हिंसात्मक क्रान्ति चाहते हैं --

देश की मिट्टी का असि वृक्ष, गान तरु होगा जब तैयार,
खिलेंगे अंगारों के फूल, फलेगी डालों में तलवार ।
चटकती चिनगारी के फूल, सजीले वृंतों के शृंगार ,
विवशता के विषजल में बुझी गीत की, आंसू की तलवार ।[२]

१- गीत-- भारतीय आत्मा, योगी, नवम्बर १९४५ई०, पृ० ६
२- फलेगी डालों में तलवार-- दिनकर योगी, नवम्बर १९४५, पृ० ३

आज के कवि को विश्वास है कि तरुण क्रान्ति में जग जीवन की भ्रान्ति जल जाएगी और संसार की राख पर एक नए संसार की रचना होगी --

तरुण क्रान्ति की अग्नि शिखा में
जग-जीवन की भ्रांति जलेगी
जग की राखों पर झुलेगा एक नया संसार ।[१]

साम्राज्यवाद के मूलोच्छेदन के लिए १९४२ ई० में `भारत छोड़ो` का नारा लगाया गया था । इसी के लिए उस साल अगस्त क्रान्ति हुई थी और फलस्वरूप कई स्थानों से ब्रिटिश शासन को कुछ समय के लिए मिटाकर स्वतन्त्र शासन की स्थापना की गई थी । तबक्रान्ति-गीत के गायक `मिलिन्द` ने गाया --

दृढ़ निश्चय के बाद हमारे हाथों में अब आजादी है ।
टूटे बन्धन, मिटी गुलामी, खत्म समझ लो बरबादी है ।
नयी जिन्दगी, नया वतन अब, नये विचारों को है धारा ।
है स्वतन्त्र सब भारतवासी, भारतवर्ष स्वतंत्र हमारा ।[२]

अगस्त आन्दोलन में माधव शुक्ल ने भी अत्यन्त प्रेरणाप्रद गीतों की रचना की । द्विवेदी युग से लेकर प्रगतिवादी युग तक ये राष्ट्रीय-क्रान्ति के प्रबल गायक रहें । ब्रिटिश -शासन पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने कहा है कि मार्शल ला के बावजूद तरुण अपने रक्त द्वारा देश में क्रान्ति की लहर फैला रहे थे --

भगवान भला करें स्यरी का बने यशस्वी बृटिश निशान,
छोय निहत्थों पर मारशल्ला शहरों गांवों के दम्यान ।
नर नारी बच्चों को गोरे अत्याचारी खूब हनें,
भारत केकोने-कोने में जालियां वाला बाग बने ।
चिन्ता नहीं वह लहराता चहुं दिशि खून जवानों का
बिन स्वराज के नहीं छुटेगे कौल रहे मरदानों का ।[३]

१- नवीन -- गोपाल सिंह नेपाली, पृ० २४, सं० २००२ वि०

२- बलिपथ के गीत -- जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, पृ० ५६,सन् १९५० ई०

३- भारत गीतांजलि-- माधव शुक्ल, पृ० ५६, सन् १९५० ई०

उदयशंकर भट्ट ने भी क्रान्ति के गीत गाए । वे स्वयं को महानाश की मूर्ति मानते हैं, और उन्हें विश्वास है कि उनके संकेत पर सब नष्ट हो जाएगा । उन्हें तत्कालीन शासक लघु लगते हैं और राजतंत्र ब कीट लगता है --

ये और कीट से लघु शासक,
ये और कोट से राज तंत्र,
मेरे आगे कब ठहर सके
मैं महानाश का महामंत्र ।[1]

इस युग में साम्प्रदायिक-मतभेद अत्यन्त उग्र हो गया था । पर राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य के लिए एकता की आवश्यकता थी । इसलिए प्रगतिवादी कवियों ने एकता-प्रेरक कविताएं भी कीं । इसी समय लीग ने अलग राज्य की मांग भी की । इसे कोई भी राष्ट्रवादी मानने को तैयार नहीं था । यद्यपि आगे चलकर पाकिस्तान के रूप में यह मांग प्रतिफलित हुई ही । तो भी हिन्दी-काव्य में राष्ट्रीय क्रान्ति की भावना दृढ़तर हो सके, इसके लिए कवियों ने एकता के गान गाए ।

क्रान्ति की सफलता के लिए सभी जातियों की एकता आवश्यक है । जन-बल में अपूर्व क्षमता है । पर उस बल का उपयोग तभी सम्भव है, जब एकता हो । इसीलिए हरिकृष्ण प्रेमी एकता का आह्वान करते हैं जिससे महाक्रान्ति का घूंघट खुले --

एक-एक ईंधन की लकड़ी
अलग-अलग क्यों सुलगे बोलो ।
जलो साथ मिल लपटें लपकें
महाक्रान्ति का घूंघट खोलो ।[2]

'जिन्ना और जवाहर' शीर्षक कविता में सोहनलाल द्विवेदी ने दोनों नेताओं की तुलना की है । वे स्पष्ट समझते हैं कि दोनों नेताओं का विरोध देश

१- चित्र के दो रूप -- उदयशंकर भट्ट, विशाल भारत, फरवरी, १९३९ ई०, पृ० १४२

२- महाक्रान्ति का घूंघट खोलो -- हरिकृष्ण प्रेमी, विशालभारत, फरवरी, १९४१, पृ० २१२ ।

के लिए बड़ा घातक है । अतः वे वैभिन्न्य मिटा कर बस्स देश के सूत्रधार बनने की अपेक्षा करते हैं --

फिर भी क्या आयेगा वह दिन
गत होगा अंतर - अंधकार ?
ये बैठेंगे मिल एक साथ
बन कर स्वदेश के सूत्रधार ।[१]

इस प्रकार इस युग में राष्ट्रीय क्रान्ति के लिए कवि एकता का गान भी करते रहे । भले ही व्यवहार में यह एकता कायम नहीं हो सकी और देश का विभाजन हो गया ।

मातृभूमि की वन्दना

अन्य युगों की तरह प्रगतिवाद युग में भी भूमि का गौरव-गान हुआ । पर इसकी मात्रा अन्य युगों की अपेक्षा बहुत कम रही । ऐसा नहीं कि मातृभूमि के प्रति प्रेम और श्रद्धा नहीं रह गई थी या भूमिगत एकता का भाव नहीं रह गया था , बल्कि यह भावना ज्यों की त्यों थी । तभी तो बलिदान और क्रान्ति के भाव उत्पन्न हुए थे । पर अत्यधिक बौद्धिकता के कारण इस युग में पूजा और आराधना से लोगों का विश्वास हट रहा था । कारण, बौद्धिक चेतना द्वारा श्रद्धा के बाह्य उपचार कम हो जाते हैं । अतः जन्मभूमि की पूजा और आराधना कम हुई ।

मातृभूमि की वन्दना कम हो जाने का एक कारण यह भी रहा कि कि साम्प्रदायिक विद्वेष के कारण पाकिस्तान के निर्माण ने इस भावना पर ठेस पहुंचाई । भूमि की एकता छिन्न हो गई थी । हिन्दुस्तान मात्र हिन्दुओं का देश लगने लगा और इसीलिए भूमि के प्रति अगाध प्रेम की अभिव्यक्ति भी कम होने लगी ।

१- प्रभाती -- सोहनलाल द्विवेदी, पृ० ८१, सन् १९५६ ई०

इस समय समस्याएं बहुत बढ़ चुकी थीं । अत: भारतीय समस्याओं में ही उलझे हुए थे । यथार्थ से उन्हें जूझना पड़ता था । अत: भावनात्मक कार्यों की ओर वे ध्यान नहीं दे पाते थे । अत: वे जन्मभूमि के दैवी रूप के गीत भी कम गाते थे ।

पर इन सब कारणों के बावजूद मातृभूमि की वंदना द्वारा कवियों ने क्रान्ति के उन्मेष का प्रयत्न किया है ।

सुमित्रानन्दन पन्त भारतमाता के ग्रामवासिनी ममतामयी रूप का चित्रण करते हैं --

भारत माता
ग्रामवासिनी ।
खेतों में फैला है श्यामल
धूल भरा मैला-सा आंचल,
गंगा यमुना में आंसू जल,
मिट्टी की प्रतिमा[1]
उदासिनी

आगे उन्होंने भारतमाता की दीनता का और भी करुण चित्रण किया है । दीनता के कारण वह विषण्ण नीचा सिर किए रहती है और अपने ही घर में प्रवासिनी की तरह है --

दैन्य जड़ित अपलक नत चितवन,
अधरों में चिर नीरव रोदन,
युग-युग के तम से विषण्ण मन
वह अपने घर में प्रवासिनी[2] ।

उपर्युक्त चित्रण बड़ा ही मार्मिक और हृदयग्राही है ।

१- आधुनिक कवि -- सुमित्रानन्दन पंत, पृ० ८७, सं० २०१०
२- वही

इसी प्रकार छिटपुट रूप में यत्र-तत्र बहुत ही अल्प मात्रा में मातृभूमि की वन्दना के स्वर इस युग में भी मिल जाते हैं। पर इस प्रवृत्ति की धारा अत्यन्त क्षीण रही।

१९४७ में देश को स्वतन्त्रता मिली। इसके साथ ही राष्ट्रीय क्रांति की आवश्यकता भी नहीं रही, क्योंकि राष्ट्रीय-क्रान्ति की भावना प्रधानत: विदेशी शोषण के विरुद्ध ही उत्पन्न होती है। इससे ऐसा नहीं समझना चाहिए कि देश-भक्ति के गीत नहीं गाए गए। देशभक्ति पूर्ववत् ही रही। पर स्वतन्त्रता के साथ ही राष्ट्रीय क्रान्ति की आवश्यकता नहीं रहने से हिन्दी-काव्य में भी वृहद क्रान्ति के स्वर नहीं रहे।

अध्याय — चार

-0-

सामाजिक और धार्मिक विचारधाराएं

अध्याय — चार

सामाजिक और धार्मिक विचारधाराएं

भारतेन्दु युग

वर्तमान दशा

भारतेन्दु-युग की क्रान्ति परक राजनीतिक विचारधारा की उत्तेजना सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में भी आयी । बाह्य जगत के सम्पर्क में आने के कारण और अंगरेजी शिक्षा के प्रभाव से उत्पन्न क्रान्ति-चेतना सामाजिक और धार्मिक सुधार की ओर भी उन्मुख हुई । प्रबुद्ध भारतीय जन मानस ने इन क्षेत्रों में व्याप्त कुरीतियों को पहचाना । उनकी जड़ता से सामाजिक और धार्मिक मान्यताएं निर्जीव हो गयी थीं । जीवन जड़ हो गया था और खोखले,अर्थहीन,आरोपित मूल्यों के संदर्भ में वह अधिक निष्क्रिय था । मानसिक दृष्टि से देश अध:पतन के किनारे था और प्रमाद,आलस्य,मिथ्याचार का प्रभाव दिन-ब-दिन बढ़ रहा था । इसके फलस्वरूप सामाजिक जीवन अधिक दुर्बल हो गया था । ऐसी परिस्थिति में कई सामाजिक आन्दोलनों का प्रवर्तन हुआ । राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन,विद्यासागर, दयानन्द, रामकृष्ण परमहंस, तिलक आदि ने सामाजिक और धार्मिक दिशा में क्रान्ति का संदेश दिया । वृद्ध विवाह,बाल विवाह, दहेज, छुआछूत, कर्मकाण्ड आदि की असंगतियों को दूर करना आवश्यक था । इन बहु बन्धनों से मुक्ति पाकर ही

राष्ट्र में नई स्फूर्ति और उत्तेजना का संचार हो सकता था ।

सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में क्रान्तिकारी विचार अंग्रेजी और अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों के माध्यम से विशेषरूप से आए । वे पाश्चात्य आचार-विचारों का अंधानुकरण करने लगे थे । कट्टर हिन्दू भी अपने समाज और धर्म की कुरीतियों से परिचित थे और उनकी बुराइयां दूर कर परिवर्तन और पुनर्जागरण ले आने के पक्षपाती थे, किन्तु वे पश्चिमी आचार विचार का अन्ध अनुकरण नहीं चाहते थे । वे सनातन धर्म की परम्पराओं को आमूल हटाने के पक्ष में नहीं थे । जाहिर है कि इस युग की सामाजिक और धार्मिक विचारधारा में क्रान्तिपरक तत्वों का समावेश था ।

यह क्रान्तिपरक विचारधारा सामाजिक दिशा में सुधार के रूप में प्रकट हुई । सुधार की दिशा में दो प्रकार की स्थितियां इस युग में उभरीं । एक ओर पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित पढ़े-लिखे भारतीय सनातन परम्पराओं में आमूल परिवर्तन करने के पक्ष में थे । उन्हें विदेशी संस्कृति,सामाजिकता,वस्त्रभूषा आदि अधिक आकर्षक लगे और उन्होंने इस दिशा में अन्धानुकरण प्रारम्भ किया । दूसरी ओर ऐसे भारतीय सुधारक भी थे, जो सनातन परम्परा की रूढ़ियों को दूर कर परिवर्तन और सुधार चाहते थे । उन्होंने विदेशी सभ्यता का अनुकरण नहीं किया और न ऐसे लोगों को ही उन्होंने बर्दाश्त किया, जो भारतीयता छोड़कर विदेशी हो रहे थे । ऐसे लोगों की कटु आलोचना हुई । परम्परावादी सनातनधर्मी सुधारकों में अपने सामाजिक और धार्मिक मूल्यों को पुनरुज्जीवित करने का आग्रह दीखता है । इस प्रकार धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में, जिस परिवर्तन की कामना की गई, उसकी परस्पर दो विरोधी धाराएं दिखायी पड़ती हैं । अन्धानुकरण करने वाले लोगों की भावधारा में राष्ट्रीयता का अभाव है, जब कि परम्परावादी धार्मिक सुधारकों में भारतीयता का अतिरिक्त आग्रह है ।

हिन्दी कवियों ने इस परिस्थिति का अनुभव किया । देश में फैले हुए मिथ्याचार, प्रमाद और आलस्य को उन्होंने समाज और धर्म के लिए घातक महसूस किया । अपनी दुर्बलताओं और बुराइयों से वे अनभिज्ञ नहीं थे । भारतेन्दु ने हिन्दुओं

की स्वार्थपरता, वैमनस्य और मूढ़ता के प्रति खेद प्रकट करते हुए और अंगरेजों का सम्पर्क प्राप्त होने पर भी उससे लाभ न उठा सकने के कारण मीठी झिड़की देते हुए कहा --

अंगरेजहुं के राज्य पाई के रहे कूढ़ के कूढ़
स्वारथ पर विभिन्न मान मुले हिन्दू सब ह्वै मूढ़[1] ।।

उन्होंने दुःख प्रकट करते हुए कहा, " लिया भी तो अंगरेजों से तो अवगुन" । भारतवासियों की मूर्खता पर बड़ा करारा व्यंग्य प्रतापनारायण मिश्र ने किया है --

बसी मूरत देवी आर्यों के जी में,
तुम्हारे लिए हैं मकां कैसे-कैसे[2] ।

प्रतापनारायण मिश्र की चुटकियां बड़ी तीखी और सटीक थीं । उन्होंने पढ़े-लिखे लोगों के बाबू बनने की इच्छा विदेशियों की सेवा का साधन बनने की आकांक्षा करने वालों पर तीखी चोट की ।

तन मन सों उद्योग न करहिं,
बाबू बनवेके हित मरहिं ।
पर देसिन सेवत अनुरागे
सब फल खाय धतूरन लागे ।

अंगरेजी वस्त्रभूषा का अनुकरण करने वाले पढ़े-लिखे भारतियों पर चोट करते हुए बालमुकुन्द ने कहा --

खेल गई बरछि गई गयो तीर तलवार ।[3]
घड़ी,छड़ी चश्मा भयो क्षत्रिन के हथियार ।

१- भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग १

२- ब्राह्मण, खंड दो, सं०४, जून १८८५, पृ० ६

३- श्री राम स्तोत्र--बालमुकुन्द गुप्त, पृ० ५८२ सं० २००७ वि०

सभी वर्गों ने अपना-अपना कर्म छोड़ दिया । ब्राह्मणों ने होम, क्षत्रियों ने तलवार और वैश्यों ने अपना सद्व्यवहार त्याग दिया । भारतभूमि के सभी वर्ण दास हो गए । बालमुकुन्द गुप्त ने इस विघटन के प्रति दुःख प्रकट किया है--

विप्रन छोड्यो होम जप- तप अरु क्षत्रिन तलवार ।
बनिकन के पुत्रन तज्यो अपनो सदव्यवहार ।।
अपनो कछु उद्यम नहिं तकत पराई आस ।
अब या भारतभूमि में सबै बरन हैं दास ।।[1]

देशवासियों की अन्धपरम्परा का प्रतिवाद प्रेमघन ने भी किया । इस प्रकार भारतीय आर्यों को लज्जित ही किया --

प्रचलित हाय अन्ध परिपाटी पर तुम चलते जाते ,
आर्य वंश को लज्जित करते कुछ भी नहीं लजाते ।।[2]

इसी प्रकार अन्य कवियों ने भी सामाजिक मिथ्याडम्बर तथा दुर्बलताओं की ओर जन-मानस को आकृष्ट किया और सामाजिक क्रान्ति के विचारों की लहर देश में फैला दी ।

नारी

नारी जाति की पतितावस्था भी सामाजिक बुराइयों की जड़ में था । अतः कवियों ने नारी के अहित के विरुद्ध भी क्रांति का स्वर उठाया । इसलिए उन्होंने अनमेल विवाह, बाल विवाह तथा विधवा विवाह जैसे अनाचारों पर भी चोट की । ठीक तुम कजरी में अनमेल विवाह की भर्त्सना करते हुए प्रेमघन ने कहा --

नैहर में देबै कित्ताय बरु बिरवा बेस जवानी रामा ।[3]
हरि हरि का करबै लैई छोटा सवर्वा रे हरी ।

१-श्रीराम स्तोत्र, बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली, पृ० ५६०, सं० २००७ वि०
२- प्रेमघन सर्वस्व, पृ० ५४४, सं० १९९६ वि०
३- वही

छोटा वर और जवान दुलहिन । कितनी विडम्बना है इस गठबन्धन में । बेचारी दुलहिन इसीलिए निश्चय करती है कि मैं नैहर में ही अपनी जवानी बिता दूंगी । भला, छोटा पति किस काम का । और जब बारात दरवाजे पर आती है तो दुलहिन के प्राण दुलहा को देखकर सूख जाते हैं । रसपूर्ण किन्तु मार्मिक भाषा में प्रेमघन ने आगे कहा है --

आय बरात दुआरे लागी बाली चढ़ी अटारी रामा ।
हरि हरि । देखि दुलहा सूखल मोरा परनवां है हरी।।[1]

दुलहिन इस स्थिति की तुलना कसाई के हाथ गाय बेचने से करती है । यदि इस तरह के असामान्य सम्बन्ध को रोका नहीं गया तो वह जहर खाकर मर जायगी अथवा कहीं निकल जायगी --

बरु बिष खाय मरब । सूतब हति कारी करव करेजवा रामा
हरि हरि निकरि जाब काहू के गोहनवा रे हरि ।।[2]

इसी तरह का असामान्य विवाह बालावृद्ध विवाह है, जिसमें वर-अस्सी वर्षों का है और कन्या बारह की --

असी बरिस के भय: बुढ्ढ तू बेस हमार परपाजा रामा ।
हरि हरि हम बारि है बरिस के अबही बाला रे हरि।।

+ + + +

हरि जब लगि चढ़े जवानी हम पर तब तक तूं मरिजाव्यह रामा ।
हरि हरि तब हमार फिर कौन होय रखवाला रे हरि ।।
बूढ़े प्रेमी सुजन प्रेमघन, की सुनि सीख बिचारो रामा ।
हरि हरि तबौ बुढ़ाई में तौ गड़बड़ भाला रे हरि ।।[3]

बालकृष्ण भट्ट ने भी बाल्य विवाह को सभी दोषों की खान बताया है । और इसे त्यागने का आग्रह किया है --

---

१- प्रेमघन सर्वस्व, पृ० ५५५, सं० १९९६ वि०

२- वही, पृ० ५५७

३- वही, पृ० ५५८

सकल दोष की खानि वीर्य हरन दारिद करन
आलस की जड़ खानि, त्यागहु बाल्य विवाह को ।[1]

विधवा-विवाह के समर्थन में हिन्दी कवियों ने अपना स्वर ऊंचा किया । उन्होंने विधवाओं की वेदना का उद्घोष कर इस ओर जन-जीवन को आकृष्ट किया और विधवा विवाह की प्रेरणा दी । इस दृष्टि से सामाजिक क्रान्ति की विचार-धारा हिन्दी कवियों के माध्यम से प्रकट हुई है --

हम विधवा दुखियारी सुनो कोउ टेर हमारी
+ + +
आप तो ब्याह करो दस चाहो, ताहू पै हो व्यभिचारी
करो अन्याय बाल विधवा पर, अपनी हो अरथ निहारी
वाह क्या नींद प्रचारी ।।[2]

सबसे अधिक विरोध भ्रष्टाचारियों का हुआ और उनके आचार-विचार पर चोट की गई । खान पान का निषेध न करने वाले तथा म्लेच्छों के जूठन प्रशंसापूर्वक खाने वालों के व्यवहार से क्षुब्ध बालमुकुन्द गुप्त ने कहा --

जूठी म्लेच्छन की कहा, खात सराहि सराहि
और कहा चाहो सुन्यो त्राहि त्राहि प्रभु त्राहि ।।[3]

देश में कुछ लोग ऐसे भी थे जो देशोद्धार का स्वांग रचते थे । ऐसे लोगों पर भी गुप्त जी ने व्यंग्य किया --

खड़ा खड़ा जो मारे धार सोई करे देशोद्धार
यह देखो कलजुग का खेल तागड़ धिन्ना नागर बेल ।[4]

१- हिन्दी प्रदीप, सं० बालकृष्ण भट्ट, पृ० १ दिसम्बर १८८०
२- वही, पृ० २८, अक्टूबर,नवम्बर,दिसम्बर, १८८६
३- बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली, पृ० ५८३,सं० २००७
४- देशोद्धार की तान

शराबखोरी के विरोध में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने एक मुकरी कही है और शराब पीने के दोषों का उल्लेख किया है --

मुंह जब लागै तब नहिं छूटै
जाति मान धन सब कुछ लेटै ।
पागल करि मोहि करे खराब
क्यों सखि सज्जन नहिं सराब[१] ।

गोरी मेम रखने वाले और भारतीय संस्कृति छोड़कर विदेशी वेशभूषा अपनाने वालों, शराब पीने वालों को प्रेमघन ने लंगूर की संज्ञा दी है । `गोरी गोरिया` शीर्षक कविता में उन्होंने ऐसे लोगों का पर्दाफाश किया है --

जूठे निवाले खांय पियाले मद के पियहीं
पियाए गोरी गरवा ।
लोक लाज कुल कानि धाम धन सब सुख हि सार नसाय गोरो गोरवा
बनी लंगूर बंदरिया के संग,
नाचहिं नाच रिझाय गोरी गोरवा[२] ।

बाल विवाह, वृद्ध विवाह, बहु विवाह, व्यभिचार, अशिक्षा, रूढ़िप्रियता, कूपमण्डूकता, विलायतीपन आदि के खण्डन और विरोध के से भारतीय कवियों ने सामाजिक क्रान्ति की विचारधारा प्रस्तुत की और जीवन को नयी स्फूर्ति और शक्ति देने की चेष्टा की ।

धर्म

धार्मिक रूढ़ियों का खण्डन भी इस काल में हुआ । बहुत अंशों में धार्मिक मतभेद और कट्टरता के कारण देश का पतन हुआ । कट्टरता और मतभेद

१- भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृ० ८१२, सं० २०१०
२- प्रेमघन सर्वस्व, पृ० ५५३, सं० १९९६ वि०

बाहरी होते हैं । ये धर्म के मूल तत्व नहीं होते, बल्कि आचार के बाह्य आधार होते हैं । हिन्दी कवि धार्मिक क्षेत्र में भी क्रान्ति चाहते थे, क्योंकि धर्म हमारे जीवन का एक अंग था ।

हिन्दी कवियों को धार्मिक कट्टरता पसन्द नहीं थी । वे विविध मत-मतान्तरों का उलझाव पसन्द नहीं करते थे । अनेक मतों की तथा ऊंच-नीच के आधार पर जाति-विधान की निन्दा करते हुए भारतेन्दु ने लिखा था --

रचि बहु विधि के वाक्य पुरातन माहि घुसाए ।
शैव शाक्त वैष्णव अनेक मत प्रकट चलाए ।
जाति अनेकन करि ऊंच अरु नीच बनायौ ।[1]
खान-पान सम्बन्ध सबनि सों बरज छुड़ायौ ।।

विभिन्न प्रकार के मत वाले को भारतेन्दु ने मतवाले कहा, क्योंकि ये अपने-अपने मत की बाह्यता पर लड़ते थे और खूब जमकर लड़ते थे । ऐसे साम्प्रदायिक लड़ाकों को भारतेन्दु ने भठियारे कहा --

भये सब मतवारे मतवारे ।
अपनो अपनो मत लै लै सब
भगरत ज्यों भठिहारे ।
कोउ कछु बकत तरहि कोउ दूजौ
संभत निज हठ धारे ।।[2]

धार्मिक मतभेद की निन्दा करते हुए भारतेन्दु ने कहा --

नाहिं ईश्वरता अटकी बेद में ।
तुम तो अगम अनादि अगोचर[3]
सो कैसे मतभेद में ।

१- भारतेन्दु नाटकावली, पृ० ६०४

२- भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग २, पृ० ११६, सं० २०१०

३- वही, पृ० ११४

भारतेन्दु ने प्रचलित और परम्परित मान्यता का खण्डन उपर्युक्त पंक्तियों के माध्यम से किया है । यह निश्चित रूप से धार्मिक क्रान्ति की विचारधारा है, जो भारतेन्दु युगीन कवियों के काव्य में प्रकट हुई ।

प्रेमघन ने पुरोहितों के मिथ्याचार और उनकी मूर्खता काउपहास किया है । यजमान को मूड़ने वाले पुरोहित की निन्दा कर उन्होंने उसे बूढ़े बैल की उपाधि भोजन के उपरान्त डकारने के सन्दर्भ में दी है --

केवल उपरोहित नहिं सांचे अरथ समान ।
खान-पान अरु दान मिसि मूड़त सिर यजमान ।।
भोजन के डँकारत चलैं बूढ़े बैल समान ।
पाय दच्छिना टेट में खोंसत कचरत पान ।।[1]

राधाकृष्ण दास ने मूत प्रेत आदि के वितण्डावाद में उलझने के कारण अपने को 'बैशाखनन्दन' कहा है । धर्म छोड़कर झूठा विश्वास करने वालों की दशा पर दुःख प्रकट करते हुए उन्होंने शंकर की तरह अवतरित होकर उपधर्मों के भ्रम को मिटाने का निवेदन करते हुए कहा है --

करुणामय शंकर स्वामी अब पुनि भूतल वपु धारौ ।
मेटि सकल उपधर्म भ्रमित विश्वासहिं जड़ सों टारौ ।।[2]

भारतेन्दु युग के कवियों की दृष्टि सामाजिक और धार्मिक क्रान्ति की दिशा में पुरातनवादी थी । पुरातनवादी का तात्पर्य कि वे धर्म का परिष्कार कर उसकी पुनर्स्थापना चाहते थे । और इसी दिशा में उनकी धार्मिक विचारों की क्रान्ति प्रकट हुई है । वे हिन्दू पद की मर्यादा को मिटाना नहीं चाहते थे, बल्कि उसके निर्वाह की आकांक्षा उनमें थी --

हिय से नाथ न बीसरै कबहुं राम को राज ।
हिन्दू पदवी दृढ़ रहे, नितदिन हिन्दू समाज।।[3]

१-प्रेमघन सर्वस्व, पृ० १५२, सं० १९९६ वि०

२-राधाकृष्ण ग्रन्थावली, पृ० ४२, सं० १९३०

३-श्रीरामस्तोत्र--बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली, सं० २००७

हिन्दू कुल की मर्यादा मिटाने वालों पर चोट करते हुए उन्होंने लिखा --

हिन्दू कुल मरजाद आज हम सबहि डुबोई
पेट भरन हित फिरै श्वान कुकुर से दर दर ।।[1]

जैसा ऊपर कहा गया है, इस काल के कुछ धार्मिक सुधारकों ने धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में विदेशियों का अन्धानुकरण किया । वे इस दिशा में आमूल परिवर्तन के आकांक्षी थे, किन्तु उनका यह दृष्टिकोण भारतीय नहीं था । इसलिए सनातनवादियों ने उनका विरोध किया । सनातनवादी धार्मिक दोषों को मिटाकर नवीन मूल्यों के आधार पर धर्म की स्थापना करना चाहते थे । तीसरी ओर कुछ कट्टर सनातन सनातनधर्मी भी थे जो धर्म और समाज के मूल्यों में कोई परिवर्तन अथवा सुधार पसन्द नहीं करते थे । भारतेन्दु और उनके सहयोगी कवियों की दृष्टि मध्यम-मार्गी थी । उनकी वैचारिक क्रान्ति सुधार की ओर झुकी हुई दीखती है । वे न तो विदेशीपन चाहते थे और न सामाजिक और धार्मिक कट्टरता । दोनों अतिवादों की निन्दा करते हुए भारतेन्दु ने लिखा --

भारत में एहि समय भई है सब कुछ बिनहिं प्रमान ।
होय दुरंगी ।
आधे पुराने पुरानहि मानें आधे भए क्रिस्तान
होय दुरंगी ।
क्या तो गदहा को क्या चढ़ावें कि होइ दयानन्द दौड़ जाय
होय दुरंगी ।
क्या तो पढ़े कैथी कोतवालिए कि तो बैरिस्टर धाई
होय दुरंगी ।
एहि से भारत नास भया सब, जहां तहां यही हाल
होय दुरंगी ।।[2]

भारतेन्दु युगीन वैचारिक क्रान्ति धारा उग्रवादी नहीं थी । राजनीति की तरह ही सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में भी वे सुधार चाहते थे । और यही उनकी इस दिशा में वैचारिक क्रान्ति थी । उन्होंने न तो पुरातनवाद का

१- श्रीराम स्तोत्र-- बालकृष्ण गुप्त निबन्धावली, सं० २००७, पृ० ५२६

२- भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग २, पृष्ठ [illegible], सं० २०१०

समर्थन किया और न सर्वथा नवीन का । उनकी विचारधारा में समन्वयवाद दिखाई पड़ता है ।

द्विवेदी युग

इस युग में भी अनेक प्रकार के सामाजिक और धार्मिक दोषों ने भारत को ग्रस्त कर रखा था । क्रांतदर्शी कवियों को यह कब सह्य हो सकता था । इसलिए उन्होंने समाज में व्याप्त सामाजिक और धार्मिक कुरीतियों के विरुद्ध क्रान्ति के गान गाए । देश की पराधीनावस्था का एक कारण सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में व्याप्त मूढ़ताएं भी रहती हैं । अतः जब परतंत्रता को दूर करने के प्रयत्न आरम्भ होते हैं । तब स्वभावतः सामाजिक और धार्मिक कुरीतियों को भी दूर करने के प्रयत्न कर होते हैं । मोह,आलस्य,अशिक्षा आदि में जकड़ी जाति का उत्थान सम्भव नहीं । अतः इनको दूर करने के लिए क्रान्ति की आवश्यकता होती है । इसीलिए सामाजिक जन-जीवन की विकृतियां दूर करने के लिए तत्सम्बन्धी क्रान्तिपरक विचारधाराओं की अभिव्यक्ति हुई ।

वर्तमान दशा

द्विवेदी-युगीन सामाजिक क्रान्ति को आर्य समाज और राष्ट्रीय कांग्रेस से प्रेरणा मिलती रही थी । इनसे प्रभावित होकर हिन्दी कवियों ने भी सामाजिक क्रान्ति को स्वर दिया । ये स्वर दो रूपों में अभिव्यक्त हुए हैं । पहला, व्यंग्य रूप में सामाजिक कुरीतियों की आलोचना और दूसरा, कुरीतियां जन्य करुणामय स्थिति का चित्रण और उनको दूर कर,आदर्श ग्रहण की प्रेरणा ।

'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त, नाथूराम शर्मा 'शंकर' रामचरित उपाध्यायादि द्विवेदी युगी न कवियों के नाम इस क्षेत्र में विशेष उल्लेखनीय हैं ।

नाथूराम शर्मा 'शंकर' ने आर्यसमाजी दृष्टि से प्रभावित होकर क्रान्ति-परक विचारधाराओं को अभिव्यक्ति की है । उन्होंने लोभ,लालच,दंभ,पाखंड, छुआछूत,व्यभिचार, अनमेल विवाह आदि सामाजिक दोषों पर तीखा व्यंग्य किया है । उनकी दृष्टि में अविद्या, फूट तथा परतंत्रता में जकड़ा भारत एक ऐसा भाट है, जिसका गठबंधन दरिद्रता रूपी दुलहिन से हुआ है --

अंत लौं स्वतन्त्रता को सूरत न देख पावे,
बेड़ी परतंत्रता की पैरों में पड़ी रहे ।
विद्या की सहेली सीधी सभ्यता के मारे मान,
साथ ले अविद्या को असभ्यता अड़ी रहे ।
भेद के भभूके उठें व बैर की झूके न आग,
आपस की फूट सदा सामने खड़ी रहे ।
संकट की मूलाधार दुलही दरिद्रता से
आंख भट्ट भारत भिखारी की लड़ी रहे ।[1]

समाज में रिश्वतखोर, पुलिस, पटवारी, प्लीडर आदि मनमानी करते रहते थे । कवि शंकर का ध्यान इस ओर भी गया । उन पर भी करारा व्यंग्य करते हुए उन्होंने कहा --

मौज उड़ाते रिश्वत खोआ, उमगे प्लीडर माल कमोआ ।
खलें पुलिसमैन पटवारी, बिचरे बरुआ चक्र मुरारी ।।
सब ने मल मही गुमराही ।[2]

मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत भारती' में सामाजिक दशाओं का चित्रण किया है । समाज के अनेकानेक दोषों पर उनका ध्यान गया है और उसके यथार्थ चित्रण के माध्यम से उन्होंने क्रान्ति की वैचारिक चेतना उत्पन्न की है । इस सन्दर्भ में वह प्राचीन भारत को याद करते हैं और तब वर्तमान भारत से पूछते हैं कि तुम्हारी वह श्री कहां चली गई ? अब कमल तो क्या जल भी नहीं रह गया ,

---

१- शंकर सर्वस्व-- नाथूराम शंकर शर्मा, पृ० २२८, सं० २००८

वही, पृ० २०६

केवल पंक ही पंक बच रहा है । जो भारत कभी राज राज कुबेर था, अब वह रंक का भी रंक हो गया है --

> भारत कहो तो आज तुम क्या हो वही भारत अहो ।
> हे पुण्यभूमि ! कहां गई है वह तुम्हारी श्री कहो ?
> अब कमल क्या, जल तक नहीं, सर-मध्य केवल पंक है,
> वह राज राज कुबेर अब हो ! रंग का भी रंक है ।[1]

समाज की यह दयनीय दशा शिक्षा की दुर्व्यवस्था से उत्पन्न हुई है । अब शिक्षा संकीर्ण हो गई है । वह खर्चीली है । इसीलिए सब उसे ग्रहण करने में असमर्थ हैं --

> हा ! आज शिक्षा-मार्ग भी संकीर्ण होकर क्लिष्ट है,
> कुलपति-सहित उन गुरुकुलों का ध्यान ही अवशिष्ट है ।
> बिकने लगी विद्या यहां अब, शक्ति हो तो क्रय करो,
> यदि शुल्क आदि न दे सको तो मूर्ख रह कर ही मरो ।[2]

'हरिऔध' ने भी तत्कालीन भारत के सामाजिक पतन का चित्रण यत्र-तत्र किया है । समाज की दशा देखकर वे दग्ध हैं । मतलब की दुनिया का एक चित्र उन्होंने इस प्रकार चित्रित किया --

> जाति के हित की सभी तानें सुनीं
> देश - हित के भी लिए सब राग सुन
> लोक-हित की भिटकिरी कानों पड़ी
> पर हमें सब में मिली मतलब की धुन ।

इस प्रकार द्विवेदी-युगीन कवियों ने समाज की दयनीय दशा का चित्रण कर प्रबुद्ध जन-मानस में क्रान्ति की विचारधाराओं का उन्मेष किया ।

१- भारत-भारती -- मैथिलीशरण गुप्त, पृ० ८५, सं० १९८२

२- वही, पृ० ११६

नारी

समाज की दयनीय दशा का एक कारण स्त्री-जाति की हीन दशा भी है । तत्कालीन समाज में नारी जाति की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी । भारतेंदु युग से ही इस ओर लोगों का ध्यान जाने लगा था । नारी -उत्थान के लिए कवि-गण क्रान्ति के गीत गा रहे थे । इस युग में भी दशा में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ । इसीलिए द्विवेदी युगीन कवि भी नारी-जाति के उद्धार के लिए क्रान्ति के गान गाते रहे । नारी-जाति की दुर्दशा के कई-कई कारण थे । बाल-विवाह वृद्ध विवाह, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा, परदा, आदि मुख्य कारण थे । अत: इन्हीं दोषों के वर्णन द्वारा हिन्दी कवियों ने नारी उत्थान के लिए अपनी क्रान्तिकारी विचारधाराएं भी प्रकट की हैं ।

पाण्डेय लोचन प्रसाद शर्मा नारी जाति की करुण दशा से इतने दुःखी हैं कि वे नहीं चाहते कि अब भारत में कन्याओं का जन्म हो । कन्या जन्म से माता-पिता भी विविध दु:ख पाते हैं । इसलिए वे विधाता से प्रार्थना करते हैं कि अब भारत में कन्याओं का जन्म हो न हो :-

कन्या हित सहते विविध दु:ख पितु माता ।[1]
दे कन्या जन्म न भारत में हु धाता ।

श्यामविहारी मिश्र, शुकदेव विहारी मिश्र ने भी 'भारत विनय' में भारत के मुंह से कहवाया है कि जब तक मेरी दुहिताएं पुरुषों की तरह शिक्षा नहीं पायेंगी, मेरी उन्नति असम्भव है :--

जब तक विद्या पुरुषों सरिस पावेंगी दुहिता न मम ।[2]
तब तक मेरी उन्नति अलभ है अकास के कुसुम सम ।।

आगे वे परदा-प्रथा की निन्दा करते हुए कहते हैं कि स्त्री-जाति की यह दशा इसी प्रथा के कारण है । यदि परदा उठ जाता तो आज स्त्री-जाति की यह दशा एक दिन भी नहीं रहती :-

---

१- पद्य पुष्पांजलि -- पाण्डेय लोचन प्रसाद शर्मा, पृ० १०५, सं० १९७२ वि०
२- भारत विनय-- श्यामविहारी मिश्र शुकदेव बिहारी मिश्र, पृ०५५, सं० १९६९

उठ जाती परदे की दुखद निंद्य चाल भी आज दिन ।
तौ प्रमदा गन की दुर्दसा सेष न रहती एक छिन ।।[१]

नारी जाति की इस पतितावस्था का एक कारण समाज में प्रचलित विवाह-परम्परा थी । बाल-विवाह , वृद्ध विवाह, अनमेल विवाह आदि के कारण स्त्रियों की और भी दयनीय दशा थी । इसीलिए इन कवियों का ध्यान इस दुखद स्थिति की ओर भी गया और तद् सम्बन्धी अपने क्रान्तिकारी विचारों के द्वारा उन्होंने जन-जीवन को सचेत करने का प्रयत्न किया ।

पाण्डेय लोचन प्रसाद शर्मा ने अध:पतन के कारणों को बताते हुए कहा कि बाल-विवाह के कारण ही रोगों का राज्य रहता है । इसने सारे आर्य गर्व को तोड़ कर गुणों को खा डाला है :--

कैसी नि:सत्वकारी प्रचलित हममें, बाल-व्याह प्रथा है ।
हा ! हा ! सर्वस्व हारी प्रतिफल, जिसको देख होती व्यथा है
क्षीणायु प्राण रंक व्यथित कर हमें रोग से फांस सर्व
खाया सारे गुणों को गिन-गिन इसने तोड़ के आर्य गर्व ।[२]

बाल विवाह और ठहरौनी से उत्पन्न दोषों को बताते हुए श्याम बिहारी मिश्र,शुकदेव बिहारी मिश्र ने कहा कि बाल विवाह के कारण ही स्त्रियां वैधव्य का दुख सहती हैं । पर किसी को इसकी चिन्ता नहीं :--

यदपि होय दुर्दसा तरुनि विधवा की भारी ।
नहिं विवाह के काल आय वह कभी विचारी ।।
बाल बैस में ही विवाह तनया का करते ।
विधवा होने का न जरा चित में डर धरते ।।[३]

'भारत भारती' में मैथिलीशरण गुप्त ने भी बेजोड़ विवाह पर अत्यन्त क्षोभ प्रकट किया है । बाल्य-वृद्ध विवाह के कारण ही प्रति वर्ष विधवाओं की संख्या बढ़ती जा रही है । उनके रुदन से इतना दाह उत्पन्न है कि आकाश

१-भारत विनय-- श्यामबिहारी मिश्र, शुकदेवबिहारी मिश्र, पृ०७६ १६१६
२-पद्य पुष्पांजलि--पाण्डेय लोचनप्रसाद शर्मा, पृ० १६, १६०२
३- भारत विनय -- श्यामबिहारी मिश्र,शुकदेव बिहारी मिश्र, पृ०६२, १६१६

रोता है, पृथ्वी फट पड़ती है। ऐसा दग्धकारी दाह सहा नहीं जाता। फिर भी हम बाल और वृद्ध विवाह को नहीं छोड़ते :--

प्रतिवर्ष विधवावृन्द की संख्या निरन्तर बढ़ रही,
रोता कभी आकाश फटती कभी हिलकर मही।
हा! देख सकता कौन ऐसे दग्ध कारी दाह को ?
फिर भी नहीं हम छोड़ते हैं बाल्य-वृद्ध विवाह को[1]।

तत्कालीन समाज में विधवाओं की दशा अत्यन्त दयनीय थी। इसलिए उनका पुनर्विवाह ही यह प्रबुद्ध व्यक्ति चाहते थे। यह विचार तत्कालीन समाज के सन्दर्भ में अत्यन्त क्रान्तिकारी था। हिन्दी-कवियों ने भी इस संबंध में अपने क्रान्तिकारी विचार प्रस्तुत किए। मैथिलीशरण गुप्त ने हिन्दू-विधवा को पवित्रता की करुण मूर्ति की संज्ञा दी। ऐसी करुण मूर्ति का शील यदि खल छल-बल से दुष्ट भंग कर देते हैं तो इसमें मरने की क्या बात है ? फिर इसका दायित्व तो उन्हीं लोगों पर है जो खुद एक के बाद एक, अनेक ब्याह कर डालते हैं। पर विधवाएँ क्या आह भी नहीं भर सकतीं :--

हिन्दू विधवा की शुचि मूर्ति,
पवित्रता की सकरुण मूर्ति।
कर दें खल छल-बल से भंग,
तो मरने का कौन प्रसंग ?
किस पर है इसका दायित्व ?
यही तुम्हारा है न्यायित्व
कि तुम करो ब्याहों पर ब्याह,
पर विधवाएं भरें न आह[2]।

कामताप्रसाद जी गौर ने कहा कि यदि वृद्ध-विवाह नहीं रोका गया तो ऐसे पाप को कभी भी ईश्वर तक क्षमा नहीं करेगा। उस देश के वासी कभी भी सुख

१- भारत भारती— मैथिलीशरण गुप्त, पृ० १५०, सं० २००६

२- हिन्दू — मैथिलीशरण गुप्त, पृ० ११७, सं० १९८४

की नींद नहीं सो सकेंगे :--

न रोकी जायगी धारा, अगर बूढ़े विवाहों की ।
न ईश्वर भी क्षमा देगा, उन्हें ऐसे गुनाहों की ।
कभी उस देश के वासी, न सुख की नींद सोवेंगे ।
खुली हैं खिड़कियां जिसमें, भयंकर पाप राहों की ।[1]

इस प्रकार द्विवेदी-युगीन कवियों ने नारी-जाति के उत्थान के लिए बाल-विवाह, वृद्ध विवाह का विरोध किया, साथ ही विधवा-विवाह का समर्थन भी किया । अपनी ऐसी क्रान्तिपरक विचारधाराओं के माध्यम से हिन्दी-कवियों ने समाज के दोषों को दूर करने में एक हद तक अत्यन्त क्रान्तिकारी सहयोग दिया ।

जाति-पांति

तत्कालीन समाज जाति-पांति और छुआछूत से भी बुरी तरह ग्रस्त था । इससे समाज का एक अंग ही विकृत बना हुआ था । सामाजिक उन्नयन के लिए उनका उद्धार भी आवश्यक था और इसके लिए क्रान्ति की आवश्यकता थी । प्रबुद्ध हिन्दी-कवियों ने भी परिवर्तन की इस आवश्यकता का अनुभव किया और तब क्रांति-परक विचारों का प्रतिपादन अपने काव्य में किया ।

मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत-भारती' में, 'हिन्दू' में अछूतों की दयनीय दशा और फिर उनके उद्धार की कामना व्यक्त की है । 'जाति बहिष्कार' की अपेक्षा भी उन्हें है । उनका कहना है कि सभी जातियां एक ही परमपिता की सन्तान हैं । अत: सबको एक समझना चाहिए । सभी से श्रेष्ठमनुष्यत्व है । अत: गुण और कर्मों के आधार पर ही जाति माननी चाहिए, जन्म से नहीं ।

विजातीय भी विज्ञ वदान्य
समझो सजातीय सम मान्य ।
हिन्दू मुसलमान क्रिस्तान
परम पिता की सब सन्तान ।

1- जवानी की आह -- बलदेवप्रसाद जी खरे, चांद, अप्रैल १९२७, पृ०६०५

सभी बन्धु हैं लघु या ज्येष्ठ,
मत से मनुष्यत्व है श्रेष्ठ ।
लिखी नहीं माथे पर जाति
गुण-कर्मों से उसकी ज्ञाति ।[१]

आगे वे हिन्दुओं को उद्बोधन करते हैं कि संकीर्णता छोड़कर उन्हें उदार होना चाहिए । अन्यथा वे स्वयं ही जर्जर-जीर्ण रहेंगे । अछूत समाज के सपूत हैं । सब को पवित्र करते हैं । तब वे स्वयं ही क्यों अछूत हैं ?

रहो न हे हिन्दु, संकीर्ण,
न हो स्वयं ही जर्जर-जीर्ण ।
बढ़ो, बढ़ाओ अपनी बांह,
करो अछूत जनों पर छांह ।
हैं समाज के वही सपूत
रखते हैं जो सब को पूत ।
क्यों अछूत जन हुए अछूत ?
उनको लगी हमारी छूत ।[२]

इस प्रकार वे भारतीय जन-मानस को जाति-पांति -विरोध के लिए क्रान्ति-सम्बन्धी प्रेरक विचारधाराओं से अभिभूत करते रहे । श्यामबिहारी मिश्र, शुकदेवबिहारी मिश्र ने भी इस सम्बन्ध में अपने क्रान्तिकारी विचार प्रकट किए हैं । भारतमाता कहती हैं कि क्या डोम,चमार, आदि मेरे पुत्र नहीं ? मैंने क्या सिर्फ ब्राह्मणों को ही बसेरा दिया है ? मेरे ही अन्न जल से क्या चमार आदि अछूत जातियां नहीं पलतीं ? तब यह दुराव कैसा ?

क्या है चमार या डोम नहीं सुत मेरा ?
क्या ब्राह्मन ही को मैंने दिया बसेरा ?
क्या अन्न वायु जल से चमार की काया ।
नहिं पाली मैंने यथा देह दुलराया ?[३]

१- हिन्दू-- मैथिलीशरण गुप्त, पृ० १९३-१९४, सं० १९८४
२- वही, पृ० १९५-१९६
३- भारत विनय-- श्यामबिहारी मिश्र,शुकदेवबिहारी मिश्र, पृ०१५ १९१६ ई०

गिरिधर शर्मा ने शूद्रों को गंगा के सदृश पवित्र कहा । और उन्हें आहूत किया कि तुम किसी से पीछे क्यों पड़ हो, अपना कर्तव्य पालन करो :

उत्पत्ति शूद्रो । प्रभु के पदों से
पवित्र गंगा - सम है तुम्हारी,
कर्तव्य पालो अपना, खड़े हो,
पीछे किसी से तुम क्यों पड़े हो[1] ?

इस प्रकार द्विवेदी-युगीन कवियों ने जाति-पांति और छुआछूत के सम्बन्ध में भी अपनी क्रांति-परक विचारधाराएं व्यक्त कीं । समाज को उद्वेलित किया और जातीय-उत्थान की प्रेरणा दी ।

धर्म

उस समय समाज में अनेक धार्मिक रूढ़ियां भी एकत्र हो गईं थीं । प्रबुद्ध व्यक्ति देख रहे थे कि इनके कारण समाज कितनी हानियां उठा रहा है । धर्म के नाम पर पाखण्ड,कर्मकाण्ड, आदि का बोलबाला था । अत: इनके विरोध में भी कवियों ने क्रान्तिकारी विचारधाराएं अभिव्यक्त कीं । धार्मिक अन्धानुकरण के विरोध के लिए उन्होंने व्यंग्य का सहारा भी लिया । कवि शंकर ने देवों का आलस्य और पृथ्वी के जनदेवता की दयनीय स्थिति की विषमता को देखकर कहा —

महीनों पड़े देव सोते रहें ?
महीदेव डूबे डुबोते रहें ।

मैथिलीशरण गुप्त ने भी धार्मिक विषमताओं की भीषणताओं का अनुभव किया और उनके दूर होने की कामना की । `मन्दिर और महन्त` में इनमें व्याप्त दोषों की चर्चा वे करते हैं । वे देखते हैं कि जो मन्दिर कभी पुण्य का भण्डार था, आज वही पाप की राशि बन गयी है । वहां के देवता आज महन्तगण ही हो रहे हैं और देवियां दासी हैं । ऐसी जगह जाकर हो भक्तजन

१- उद्बोधन--- गिरिधर शर्मा, सरस्वती, मई १९०६ ई०, पृ०४२२

तन,मन तथा धन अर्पण किया करते हैं :--

हा ! पुण्य के भाण्डार में हैं भर रहीं अब राशियां
हे देव आप महन्त जी हों, देवियां हैं दासियां ।
तन,मन तथा धन भक्त जन अर्पण किया करते जहां--[1]
वे मण्ड साधु सु-कर्म का तर्पण किया करते वहां ।

गुप्त जी ने धार्मिक विकृतियों का चित्रण और भी किया है :--

अब मन्दिरों में रामजनियों के बिना चलता नहीं
अश्लील गीतों के बिना वह भक्ति फल फलता नहीं ।

ब्राह्मण जो इस युग में धर्म के ठीकेदार बने हुए थे, वे भी हीन-दीन हो गए हैं । वे आज जड़ता पर मुग्ध हैं । अतः कवि का कहना है कि जो एक समय के पीर थे, आज वही भिश्ती,बावर्ची, खर हो गए हैं --

उन अग्रजन्मा ब्राह्मणों की हीनता तो देख लो
भू-देव थे जो आज उनकी दीनता तो देख लो ।
थे ब्रह्म-मूर्ति यथार्थ जो अब मुग्ध जड़ता पर हुए ,[2]
जो पीर थे देखो, वही भिश्ती, बावर्ची खर हुए ।

इसी तरह अन्य कवियों ने भी धार्मिक रूढ़ियों के विरुद्ध जेहाद किया । मई,१९०८ ई० को सरस्वती में 'पंच पुकार' नामक व्यंग कविताओं में कवि ने धर्म-जाल पर चुभता हुआ व्यंग्य किया --

बैतरणी का ठेका लूंगा देकर दाढ़ी मूंछ
घर घर वाटर बाइसिकिल पर बिना गाय की पूंछ
मरों को पार उतारूंगा । किसी से कभी न हारूंगा ।

धर्मों के अपार्थक्य के सम्बन्ध में श्यामबिहारी मिश्र,शुकदेव बिहारी मिश्र ने भारतमाता के माध्यम से कहा कि मेरे लिए सभी गुरु एक समान हैं ।

१- भारत भारती-- मैथिलीशरण गुप्त, पृ० १२८, सं० १९८३
२- वही

न कोई तिल भर घट कर है , न बढ़कर है :--

मैंने सब गुरुवों को समान ही माना ।

तिल भर न किसी को घट बढ़ कभी बताना[1] ।।

इस प्रकार द्विवेदी-युगीन कवि समाज के साथ ही साथ धार्मिक रूढ़ियों पर भी आघात करते रहे । पर धर्म भी समाज का एक अंग है । धार्मिक प्रथाओं के कारण समाज में भी अनेक प्रकार के दोष आ जाते हैं । अतः तत्कालीन कवियों ने धर्म की आलोचना तो की ही, पर समाज की उससे ज्यादा । कारण, सामाजिक दोषों के अन्तर्गत ही धर्म में व्याप्त रूढ़ियों का विरोध भी समाहित हो जाता है । जैसे जाति-पांति, छुआछूत आदि कुरीतियों की व्याप्ति धार्मिक रूढ़ियों के कारण ही रहती है । इन कुरीतियों की चर्चा पहले ही सामाजिक दोषों के सन्दर्भ में हो चुकी है । तात्पर्य यह कि द्विवेदी युगीन कवियों ने धार्मिक रूढ़ियों, पाखण्डताओं और विकृतियों के विरोध में क्रान्ति-पूरक विचारों की अभिव्यक्ति की और जन-मानस को उद्बुद्ध किया ।

छायावाद युग

छायावाद युग में भी कवियों ने सामाजिक और धार्मिक विकृतियों के विरोध में क्रांतिपरक विचारों की अभिव्यक्ति की । अमूल्यों को त्याग कर नवीन युगानुकूल सामाजिक मूल्यों की स्थापना पर जोर दिया । और कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रचलित परम्परा को मिटाकर नवीन को अपनाना क्रांति है । इस युग में वैज्ञानिक यथार्थवाद का आलोक फैला और पुरानी मान्यताओं का खंडन हुआ । पर इस समय राष्ट्रीय भावना अत्यन्त तीव्र थी । अतः स्थूल परिवर्तन पर बहुत अधिक बल नहीं । फिर भी, जड़ता और रूढ़ियों के त्याग पर बल रहा ।

१- भारत विनय--श्यामबिहारी मिश्र, शुकदेवबिहारी मिश्र, पृ०१६, १९१६ ई०

वर्तमान दशा

पूर्व-युग की भांति इस युग में भी अंग्रेजियत के भक्त, अंग्रेजों के मूल गुणों को नहीं पहचान कर, नकलची बन बैठे। ऐसे व्यक्तियों से समाज सस्ते स्तर की ओर उन्मुख होता है। उसके सुदृढ़ संस्कार हिलने लगते हैं और वह छिन्न होने लगता है। अत: श्री रामचरित उपाध्याय व्यंग्य द्वारा उन्हें चेतावनी देते हैं :--

हैट पैंट के होकर भक्त
पगड़ी धोती कर दें त्यक्त
चन्दन न दें मलें बस सोप।
तब भारत का हो दुख लोप[1]।

समाज बाह्य प्रदर्शन की ओर अग्रसर था। इसलिए वह सादगी को त्यागकर फैशन की ओर आकृष्ट था। इससे समाज अन्दर से खोखला हो रहा था। सामाजिक उन्नयन के लिए इसमें भी परिवर्तन आवश्यक था। अत: 'फैशन' के विरुद्ध सादगी का गान रामचरित उपाध्याय करते हैं :--

पर सादगी को छोड़ हम जब फैशनेबुल हो गये
धन-धान्य हम से खो गये, अविवेक-निशि हम सो गये[2]।

विदेशी शिक्षा का विरोध भी कवियों ने किया --

लेते रहो विदेशी शिक्षा।
करते नौकरी, मांगो भिक्षा[3]।

नाथूराम शंकर शर्मा ने भी अपनी संस्कृति का त्याग करने वालों पर करारा व्यंग्य किया है --

देश-वेश-भाषा तजी, कुल की चाल बिसार,
मौची मिस्टर हो गये, बन विलायती यार[4]।

१- बेड़ा पार --रामचरित उपाध्याय, सरस्वती, दिसम्बर १६२६, पृ० ६४८
२- फैशन को फांसी -- ,, ,, फरवरी १६२२, पृ० १५०
३- बेड़ा पार -- ,, ,, दिसम्बर १६२६, पृ० ६४६
४- मिस्टर -- नाथूराम शंकर शर्मा, माधुरी, नवम्बर १६२८, पृ० ५५२

इस प्रकार तत्कालीन कवियों ने एक ओर समाज के नकलचियों पर करारा व्यंग्य किया । विदेशी वेश-भूषा का विरोध कर इस क्षेत्र में परिवर्तन चाहा । पर दूसरी ओर वैयक्तिक स्वच्छन्दतावाद से अभिप्रेरित छायावादी कवियों ने प्रचलित रूढ़ियों का भी खण्डन किया और नवीन को अपनाने का आग्रह किया ।

सुमित्रानन्दन पन्त ने जन-जीवन का उद्बोधन करते हुए जीर्ण विश्वासों संस्कारों, रूढ़ियों , रीतियों को दूर करने को कहा । उनकी आकांक्षा है कि जाति वर्ण, श्रेणि, वर्ग से मुक्त एक विश्व सभ्यता का शिलान्यास हो --

> खोलो जीर्ण विश्वासों, संस्कारों के क्षीर्ण वसन,
> रूढ़ियों,रीतियों, आचारों के अवगुंठन,
> छिन्न करो पुराचीन संस्कृतियों के जड़ बंधन--
> जाति वर्ण, श्रेणि वर्ग से मुक्त जन नूतन
> विश्व सभ्यता का शिलान्यास करें नव शोभन,
> देश राष्ट्र मुक्त धरणि पुण्य तीर्थ हो पावन [१] ।

इसी प्रकार 'ग्राम देवता' में भी वे प्राचीन रीतियों-नीतियों को मृत बताते हैं --

> उच्छिष्ट युगों का आज सनातनवत् प्रचलित
> बन गई चिरंतन रीति नीतियां, स्थितियां मृत ।
> गत संस्कृतियां थीं विकसित वर्ग व्यक्ति आश्रित,
> तब वर्ग व्यक्ति गुण, जन समूह गुण अब विकसित [२] ।

इस प्रकार इस युग में प्राचीन रूढ़ियों का खण्डन कर नवीन मूल्यों को अपनाने के लिए क्रांतिकारी विचारों की अभिव्यक्ति हिन्दी कवियों ने की ।

नारी

सामाजिक संस्कारों के परिवर्तन के सन्दर्भ में नारी-जाति पर इस युग में भी कवियों ने विशेष ध्यान दिया । समाज का आधा अंग यदि

१- उद्बोधन--- सुमित्रानन्दन पंत, ग्राम्या, पृ० ९९ सं० २००८ वि०

२- ग्राम देवता--- वही, पृ० ५५

विकृत रहेगा, बंधन ग्रस्त रहेगा तो कदापि समाज की उन्नति सम्भव नहीं । इसलिए कवियों ने उसके मुक्ति की कामना की ।

सुमित्रानन्दन पन्त ने उसे पूर्ण स्वाधीन करने की उद्घोषणा की --

योनि नहीं है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित
उसे पूर्ण स्वाधीन करो, वह रहे न नर पर अवसित ।
द्वन्द्व क्षुधित मानव समाज पशु जग से भी है गर्हित,
नर नारी के सहज स्नेह से सूक्ष्म वृत्ति हों विकसित ।[1]

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने भी विधवा को सर्वोच्च आसन पर प्रतिष्ठित किया । भारत की विधवा पूजा सी पवित्र, दीप-शिखा सी शान्त, करुण दीन है --

वह इष्ट देव के मन्दिर की पूजा-सी
वह दीप-शिखा सी शान्त,भाव में लीन,
वह क्रूर काल-ताण्डव की स्मृति रेखा-सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन-
दलित भारत की ही विधवा है ।[2]

वैधव्य उत्पीड़न का चित्रण करते हुए कामताप्रसाद गुप्त 'रसिक' ने एक विधवा की दशा के माध्यम से सहृदयों का ध्यान इस ओर खींचा और इस क्रान्ति-परक विचारधारा को प्रतिपादित किया कि यदि पत्नी के मृत्यु के बाद पति विवाह के अधिकारी हैं तो पति के स्वर्गारोहण पर नारी क्यों दुख सहती रहे ? --

मुझे देख सधवाओं को है जाने क्यों फटती छाती ?
जाती हूं जिस ओर उधर से ही हूं दुत्कारी जाती ।
हाय कुटुम्बी भी मुझको अपशकुन चिह्न बतलाते हैं ।
वचन धनुष को दारुक शर वे मुझ पर नित बरसाते हैं ।

+ + +

१- ग्राम्या-- सुमित्रानन्दन पंत, पृ० ८४, सं० २००८ वि०

२- विधवा-- सूर्यकान्त त्रिपाठी'निराला' , परिमल, पृ० १२६, सं० २००७ वि०

पत्नी के मरने पर यदि, पति हैं विवाह के अधिकारी ।
तो पति स्वर्गारोहण पर क्यों रहें दुख सहती नारी ?
वे भी पुन: व्याह करने का स्वत्व नहीं क्यों पाती हैं ?
क्यों जीवन भर वे जग-सुख से वंचित रखी जाती हैं ।[1]

द्विवेदी-युग तक नारी के आदर्शरूप का वर्णन ही अधिक होता आया था । लोग उसे देवित्व का गौरव प्रदान करने को उत्सुक थे । उनमें इतना साहस नहीं हो सका था कि उसे सखी का पद भी दे सकें । पर छायावादी कवि स्वच्छन्दता के पक्षपाती थे । अत: उनमें यह साहस भी था कि वे अपने वैयक्तिक आन्तरिक विचारों की अभिव्यक्ति निर्बाधरूप में कर सकें । इसलिए छायावादी कवियों ने नारी को "सखी" रूप में भी अपनाना चाहा । तत्कालीन वातावरण में यह अभिव्यक्ति तीखी क्रान्तिकारी मानी जाएगी । श्री सुमित्रानन्दन पन्त ने स्पष्ट कहा कि नारी को मुक्त करो, जो जननि, सखी और प्रिया है --

मुक्त करो नारी को मानव
चिर वंदिनि नारी को,
युग युग की बर्बर कारा से,
जननि, सखी, प्यारी को ।[2]

इस प्रकार छायावादी कवियों ने नारी-जाति की मुक्ति के माध्यम से सामाजिक उत्थान के लिए क्रान्तिकारी कदम उठाया ।

जाति पांति

सामाजिक क्रान्ति के सन्दर्भ में इस युग में जाति-पांति और अछूतोद्धार सम्बन्धी विचारधाराएं भी अभिव्यक्त हुईं । आर्य समाज की तथा गांधी जी की

१- वैधव्य-- उत्पीड़िता-- कमलाप्रसाद गुप्त, 'रसिक' ,चांद, अगस्त १९२६, पृ०३४४-४५
२- नारी -- सुमित्रानन्दन पंत, युगपथ, पृ० ४६, सं० २००६ वि०

प्रेरणा के परिणामस्वरूप इस युग में अछूतों में अभूतपूर्व जागरण हुआ । वे अभिजात्यवर्ग से अलग अपने अस्तित्व की कामना करने लगे । पर ऐसी भावना राष्ट्रीय एकता के लिए घातक थी, जो उस युग के लिए आवश्यक थी । अत: हिन्दू जाति की एकता को सुदृढ़ बनाने के विचार से भी कवियों ने अछूतोद्धार चाहा --

समझ अछूतों को अछूतों के समान रहे,
आपके ललाट पै कलंक ही का टीका है[1] ।

'हरिऔध' जी ने भी हिन्दुओं के माथे पर इस छुआछूत को कलंक का टीका बताया --

छाये रहे उर में अवनि के अछूते भाव,
बनत अपूत ना अछूत जन छुए ते[2] ।

शोभाराम धेनु सेवक भी हिन्दुओं को समय रहते चेत जाने को कहते हुए अछूतों को अपना बनाने को कहते हैं --

समय है हिन्दुओं अब भी
तुम्हारे चेत जाने का ।
हृदय विस्तीर्ण कर--
संकीर्णता को अब नशाने का ।
अछूतों को उठाकर प्रेम--
से अपना बनाने का ।
अछूतों को उठाने के लिए[3]
तय्यार हो जाओ ।

१- अछूत-- अनूपशर्मा, चांद, मई, १९२७ ई०, पृ० ५७

२- अछूत --'हरिऔध' ,, ,, ,, पृ० ६९

३- अछूत -- आवेदन- शोभाराम धेनु सेवक, चांद, मई १९२७, पृ० ११

१६२३ ई० में ही माधुरी के संपादक ने भी अछूतों को अपनाने को कहा । उन्होंने अछूतों को समाज का एक अंग बताते हुए, उसे अपना बना लेने को कहा । साथ ही यह भी कहा यदि उन्हें अपना नहीं बनाया गया, तो जाति खंड-खंड हो मृत्यु-ग्रस्त हो जायगी --

अपना ही अंग हैं ये अंत्यज असंख्य, इन्हें
गले न लगाया तो अवश्य पछताओगे ।
ममता के मंत्र से विषमता का विष जो
उतारा नहीं, जाति को तो जीवित न पाओगे ।
पक्षाघात पीड़ित समाज जो रहेगा पंगु,
उन्नति की दौड़ में कहां से जीत जाओगे ।
साधना स्वराज की सफल क्यों होगी नहीं,
अगर अछूतों को न आप अपनाओगे ।[1]

पंत ने जाति-पांत की कड़ियां टूटने की कामना व्यक्त करते हुए कहा --

जाति-पांत की कड़ियां टूटें,
मोह द्रोह मद मत्सर छूटें ,
जीवन के नव निर्झर फूटें,
वैभव बने, पराभव
युग प्रभात हो अभिनव ।[2]

इस प्रकार अछूतों को अपनाने की क्रान्तिकारी प्रेरणा देते हुए छायावादी कवियों ने समाज और राष्ट्र में प्रचलित सामाजिक परम्पराओं का विरोध किया ।

धर्म

धार्मिक रूढ़ियों के विरोध में भी, कवियों ने क्रांतिपरक विचारों को अभिव्यक्त किया । समाज की तरह धर्म भी रूढ़िग्रस्त हो गया था । अतः उसमें

१-अपनाओगे -- माधुरी-संपादक-माधुरी, अप्रैल, १६२३,पृ०४०८
२-ग्राम्या में पंत--[illegible] पंत, [illegible],पृ०६१ सं०२००४वि०

क्रान्तिकारी परिवर्तन की उपेक्षा थी ।

सुमित्रानन्दन पंत ने ईश्वर का ~~अवतार~~ 'आवाहन' किया, क्योंकि संसार फिर धर्म ग्लानि से पीड़ित हो रहा था --

आओ हे, पावन हो भूतल ।
फिर धर्म ग्लानि से पीड़ित जग,
फिर नग्न वासना उच्छृंखल,
  जन परित्राण करने उतरो
  हे राम, परम निर्बल के बल ।[1]

धार्मिक मत-वैभिन्य को भूलकर मानव-धर्म अपनाने की सलाह भी पंत जी ने दी । मनुष्यत्व या मानव-धर्म सबसे महान् है । अतः धर्म के नाम पर रक्त बहाना अत्यन्त निंद्य है । इससे अच्छा तो यही है कि हिन्दू,मुस्लिम और ईसाई कहलाना छोड़कर सिर्फ मानव बनकर रहें --

छोड़ नहीं सकते रे यदि जन
जाति वर्ग औ धर्म के लिए रक्त बहाना,
बर्बरता को संस्कृति का बाना पहनाना--
  तो अच्छा हो छोड़ दें अगर
  हम हिन्दू मुस्लिम औ ईसाई कहलाना ।
  मानव होकर रहें धरा पर,
  जाति वर्ण धर्मों से ऊपर,
  व्यापक मनुष्यत्व में बंधकर ।[2]

इस प्रकार इस युग में धार्मिक रूढ़ियों और मान्यताओं को दूर करने के लिए विचार प्रकट किए गए । पर धार्मिक सुधार की चर्चा, इस काल में उतनी नहीं मिलती । कारण, इस युग में हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य तथा हिन्दुओं की उपजातियों

१- आवाहन- सुमित्रानन्दन पंत, युगपथ, पृ०१२८, २००६ वि०

२- मनुष्यत्व- सुमित्रानन्दन पंत,स्वर्णधूलि, पृ०३१, २००४ वि०

में ऐक्य आदि पर राष्ट्रीय-हित के लिए बहुत अधिक ध्यान दिया जा रहा था। अत: यदि धार्मिक चर्चा बहुत होती तो उससे मानसिक पार्थक्य की आशंका रहती। एकता की स्थापना के लिए वांछित था कि धार्मिकता पर बल न दिया जाय। युग की इस आवश्यकता से कवि परिचित थे। अत: धार्मिक सुधारों की विशेष चर्चा उन्होंने नहीं की। एकाध अपवाद अवश्य हैं। जैसे श्यामनारायण पाण्डेय ने हल्दी घाटी में साम्प्रदायिकता पर जोर दिया। पर ऐसे उदाहरण बहुत कम हैं।

प्रगतिवाद-युग

यों तो उपदेश द्वारा क्रान्ति उत्पन्न करने की भावना छायावाद युग से ही समाप्त हो चली थी, पर इस युग तक यह प्रवृत्ति विराम पर आ गई। सामाजिक उन्नयन के लिए उपदेशात्मक प्रवृत्ति नहीं रह गई थी। इस प्रवृत्ति के मुख्यत: दो कारण थे। एक तो इस समय विदेशी परतंत्रता से मुक्ति पाना ही प्रधान लक्ष्य था। दूसरे, शोषण से मानव की मुक्ति। इसके लिए साम्यवाद के गुण गाए जाते थे, क्योंकि मानव-साम्य के आधार पर ही यह वाद स्थापित हुआ था। वैसे, इसका दृष्टिकोण आर्थिक था। इसकी चर्चा आर्थिक विचारधाराओं के अन्तर्गत हो चुकी है।

पर सामाजिक परिवर्तन हेतु उपदेशात्मक शैली में भले ही नहीं के बराबर कहा गया हो, लेकिन सामाजिक क्षेत्र में नये मूल्य स्थापित हुए। जातीयता का विरोध इस युग में भी हुआ। पर इसपर पहले ही उतना कहा जा चुका था कि और अधिक कहने की आवश्यकता नहीं थी। वैसे मानव-साम्य, विश्वबन्धुत्व, युद्ध जनित विभीषिका आदि के क्रम जातीयता का विरोध व्यापक पैमाने पर हुआ। पर यह कोई नवीन बात नहीं थी।

जाति-पांति

इस युग की सामाजिकता की चर्चा में एक विशेषता यह रही कि जातीय ऐक्य आदि की स्थापना पर भी बल, आर्थिक आधार पर दिया गया। शिवमंगल सिंह सुमन के अनुसार जातिधर्म का भेद, भूख की डोर से बंधा हुआ है --

जाति धर्म के भेद यहां सब
बंधे भूख की डोर
हिन्दू-मुस्लिम खींच रहे पर
अपनी-अपनी ओर।[1]

अज्ञेय भी उन लोगों को ललकारते हैं और घृणा करते हैं जो भाई को अछूत समझकर, वस्त्र बचाकर भागते हैं। बहनों को रोता छोड़कर, स्वयं आगे बढ़ते जाते हैं --

तुम जो भाई को अछूत कह वस्त्र बचाकर भागे,
तुम जो बहिनें छोड़ बिलखती बढ़े जा रहे आगे।
रुककर उत्तर दो, मेरा है अप्रतिहित आह्वान-
सुनो, तुम्हें ललकार रहा हूं, सुनो घृणा का गान[2]।

कहने की आवश्यकता नहीं कि उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने छुआछूत और नारी-जाति के प्रति अपने विद्रोही विचारों को व्यक्त किया है। उसे ऐसे लोगों से घृणा है जो भाई को अछूत समझते हैं और बहनों पर ध्यान नहीं देते। इसी प्रकार अन्य कवियों ने भी सामाजिक वैषम्यों को मिटाकर एकता के लिए क्रान्तिकारी विचार प्रकट किए हैं।

इससमय मानव-मंगल की भावना विशेष रूप से काव्य में अभिव्यक्त हुई। इसका तात्पर्य यह नहीं कि अन्य युगों में मानव-मंगल की भावना नहीं रही हो। वस्तुतः प्रत्येक क्रांति के मूल में मानव-मंगल की ही भावना रहती है। पर

१- प्रलय-सृजन-- शिवमंगल सिंह सुमन, पृ० ८२, १९५४ ई०

२- घृणा का गान-- अज्ञेय, इत्यलम् , पृ० ५२, १९४६ ई०

इस युग में मानव-मंगल की भावना को अनेक अंगों में न बांटकर, जैसे समाज उद्धार, अछूत-उद्धार, नारी आदि आदि, स्पष्टरूप से मानवता की ही बातें की गईं और इसी के माध्यम से क्रांति-परक विचारधाराओं का प्रस्तुतीकरण हुआ। वैसे ऐसा भी नहीं कि अलग-अलग नारी या अछूत, या कि अन्य वर्गों के सम्बन्ध में कुछ कहा ही न गया हो। पर, उनकी संख्या अत्यन्त नगण्य है।

उदयशंकर भट्ट की आकांक्षा है कि जीवन में विवेक, सुख आदि हों साथ ही वे यह भी चाहते हैं कि मानव दूसरे के स्वार्थ का प्रतिवाद नहीं करें। चतुर्दिक साम्य, विश्वबन्धुत्व, हर्ष और उत्कर्ष का राज्य हो। कहीं विषाद न हो --

जीवन में विवेक हो, सुख हो,
परहित का प्रतिवादक न हो।
साम्यवाद हो, विश्वबन्धुत्वता,
हर्षोत्कर्ष, विषाद न हो।[1]

इसी प्रकार और-और कवियों ने भी नयी चेतना से मानव को अनुप्राणित करना चाहा। पंत का नाम ऐसे कवियों में अग्रणी है। मानव-मंगल की भावना में उत्प्रेरित पंत के ये विचार 'ग्राम्या' में व्यापक पैमाने पर अभिव्यक्त हुए हैं।

नारी

नारी जाति की अवस्था से उत्पीड़ित होकर क्रांति की कामना पहले से ही होती आ रही थी। इस युग में भी नारी की दयनीय दशा का चित्रण और उसके मुक्ति की कामना होती रही। पंत ने छायावाद युग में ही तत्सम्बन्धी अपने विचारों को व्यापक पैमाने पर व्यक्त किया था। इस युग में भी वे नारी-जाति के उत्थान-हेतु क्रांतिकारी विचारों को अभिव्यक्त करते रहे। उनकी इच्छा है

१- युग-दीप-- उदयशंकर भट्ट, पृ० ७२, सं० २००१

कि नारी जागकर, ज्वालामुखी बनकर जार और शोषण के साधनों को ध्वंस कर दे --

> क्रान्ति का तूफान जब विश्व को हिलायेगा
> ये बाजार को असंस्कृता निर्लज्जा नारियां
> जो कि न 'योनि मात्र रहकर' बनेंगी प्रदीप्त
> उगलेंगी ज्वालामुखी । (किरण बेला, पृ०६०)

इसी प्रकार अन्य कवि भी नारी शोषण को समाप्त कर साम्य-स्थापन की आकांक्षा प्रकट करते रहे और नये सामाजिक मूल्यों को गतिशीलता प्रदान की ।

धर्म

प्रगतिवाद युग में पूंजी का विरोध तो हुआ ही । उसके विरुद्ध क्रान्ति-गान तो गाए ही गए । साथ ही परमेश्वर का भी विरोध हुआ । साम्यवाद से प्रभावित, प्रगतिवाद के समर्थक कवियों को ईश्वर की सत्ता में ही स सन्देह होने लगा । उन्हें लगा कि धर्म की आड़ में गरीबों का शोषण होता है । वे परमेश्वर को शोषण का माध्यम मानने लगे, जो शोषितों को बंधन में डालने की एक शृंखला है । उनके अनुसार ईश्वर वस्तुतः पूंजीवादी व्यवस्था के हृदय की कल्पना मात्र है । इसीलिए वह पीड़ितों के आह्वान पर ध्यान नहीं देता । यदि उसका अस्तित्व रहता तो वह उनकी पुकार अवश्य सुनता । इसीलिए शोषितों, पीड़ितों, बुभुक्षितों के प्रति संवेदनशील कवि ईश्वर का विरोध करने लगे । ईश्वर के प्रति उनके मन में असंतोष रहा । इसलिए उसके अस्तित्व के विरोध में ही वे क्रान्ति-गान गाने लगे । कवि अंचल को प्रतीत हुआ कि ईश्वर आत्म प्रवंचक है --

> ऊपर बहुत दूर है शायद आत्म प्रवंचक एक
> जिसके प्राणों में विस्मृत है उर में सुख श्री का अतिरेक[1] ।

१- मधूलिका -- अंचल, पृ०८

नरेन्द्र शर्मा को भी ईश्वर से बड़ी शिकायत है । उनकी दृष्टि में ईश्वर ही रोग,शोक,दुःख-दैन्य लाने वाला है । इसलिए वे ऐसे लोगों को फटकारते हैं , जो संकट के क्षणों में ईश्वर को पुकारते हैं --

जिसे तुम कहते हो भगवान .....
जो बरसाता है जीवन में
रोग शोक दुःख दैन्य अपार[1]....
उसे सुनाने चले पुकार ?

ईश्वर के सम्बन्ध में पंत ने भी ऐसे ही क्रान्तिकारी विचार प्रस्तुत किए हैं । ग्राम देवता में उनके ऐसे विचार प्रकट हुए हैं । ग्राम देवता रूढ़ियों की शिला पर प्रतिष्ठित है । अतः वह जन-स्वातन्त्र्य के युद्ध को कैसे सहन कर सकता है । अतः वह ग्रामदेवता से हृदय थाम लेने को कह रहा है --

हे ग्राम देव, लो हृदय थाम
अब जन स्वातन्त्र्य युद्ध की जग में धूमधाम[2] ।

और फिर व्यंग्य करते हुए उससे कहता है कि तुम रूढ़ि-रीति की अफीम खाकर चिर विराम करो --

तुम रूढ़ि रीति की खा अफीम लो चिर विराम[3] ।

अन्धविश्वासों के प्रति यह कटु व्यंग्य बड़ा मार्मिक है ।

भारतीय जन-जीवन के अन्धविश्वासों की आलोचना प्रभाकर माचवे ने भी व्यंग्यात्मक शैली में की है । कछुआ भारतीय संस्कृति का प्रतीक है । जिस प्रकार कछुआ बाह्य प्रभावों के स्पर्श से अपने को अलग कर,स्वयं में आत्मसात रहता है, उसी प्रकार अंधविश्वासों के आवरण में भारतीय संस्कृति अपने को छिपाए रहती है और नए ज्ञान को ग्रहण नहीं करती । इस प्रकार कछुवे के प्रतीक द्वारा अंधविश्वास पर वे करारा व्यंग्य करते हैं --

---

१- प्रभातफेरी -- नरेन्द्र शर्मा, पृ०८
२- ग्राम्या -- पंत, पृ०५७
३- वही

जो हो, मुझे दीखते हो तुम, कछुए
मानो भारत संस्कृति के प्रतीक,
जिसे जरा भी छुए ना छुए
नए ज्ञान की सूक्ष्म सी लहर ।

इसी प्रकार अन्य प्रगतिवादी कवियों ने भी ईश्वर के अस्तित्व में संदेह प्रकट किया । स्पष्ट है कि धार्मिक क्षेत्र में यह बहुत बड़ी क्रांतिपरक विचार-धारा थी । अभी तक चली आती ईश्वर की सर्वसम्पन्नता पर संदेह कर, मानव को सर्वोपरि बताना, एक व दृढ़ क्रांतिकारी प्रयास था ।

अध्याय -- पांच

-0-

आर्थिक विचारधाराएं

अध्याय -- पांच

-0-

आर्थिक विचारधाराएं

भारतेन्दु युग

वर्तमान चित्रण

भारतवर्ष में अंगरेजों का आगमन सर्वप्रथम व्यापारियों के रूप में हुआ था । अत: उनका मूल उद्देश्य भारत का आर्थिक शोषण था न कि किसी तरह से भारत की उन्नति में सहायक होना । अत: अपनी कुटिल आर्थिक नीति से उन्होंने भारत का अर्थ शोषण प्रारम्भ किया । शोषण के इस क्रम में उन्होंने इंगलैण्ड में भारतीय वस्तुओं की बिक्री बन्द करवा दी । भारत का कच्चा माल सस्ती कीमतों पर लेकर इंग्लैण्ड भेजने लगे और उससे निर्मित वस्तुओं को भारत में मंहगे दामों में बेचने लगे । अब भारतीय तैयार वस्तुओं के लिए इंग्लैण्ड पर निर्भर रहने लगे और भारतीय बाजार विदेशी सामानों से भर गया । भारत अभी मशीनी-प्रगति नहीं कर सका था । अत: ब्रिटिश मिलों की प्रतियोगिता में भारत का उद्योग नहीं ठहर सका कारण, मिल में बनी चीजें अपेक्षाकृत कम कीमतों की पड़ती थीं । फलस्वरूप भारत की सम्पत्ति विदेश पहुंचने लगी ।

क्रान्ति की वैचारिक चेतना के होते ही इस अर्थ-शोषण की ओर भी मनीषियों का ध्यान गया । वे क्रुद्ध हो उठे । प्राचीन और अर्वाचीन क्रांति

की जननी है । तत्कालीन युगद्रष्टा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भी विदेशियों द्वारा इस आर्थिक शोषण से बहुत असन्तुष्ट थे । अत: उन्होंने इन शब्दों में अपनी क्षोभ-जनित क्रान्ति प्रकट की --

अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी ।
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी ।।[१]

प्रतापनारायण मिश्र भी भारतीय सम्पदा को विदेश जाते देखकर क्षुब्ध हैं --

सर्बसु लिये जात अंगरेज
हम केवल 'ल्यक्चर' को तेज ।
श्रम बिन बातें का करती हैं ।
कहुं टेंटकन गाजें टरती हैं ।[२]

इन्हें दु:ख है कि हम केवल 'ल्यक्चर' में तेज हैं, श्रम नहीं करते । शोषण के विरुद्ध क्रान्ति की अभिव्यक्ति करने वालों कवियों में प्रतापनारायण मिश्र महत्वपूर्ण हैं । साम्राज्यवादी शक्ति परतंत्र राष्ट्र के शोषण पर ही बढ़ती है । इसका सहज अनुभव हो कवि को हो जाता है । 'तृप्यन्ताम' नामक कविता में मार्मिक ढंग से कवि ने इसका चित्रण किया है --

अलकापुरी त्यागि इत आये बड़ी दया कीन्हीं परनाम ।
कछु धनपति ने दियो होय तौ भोजन को कीजै इन्तजाम ।
तुम्हें समरपें कहा, हमारी पूंजी में नहिं एक छदाम ।
हां यह जल, यह जव, ये तंडुल लेहु यक्षगण तृप्यन्ताम ।[३]

यक्षगण अलकापुरी से आए हैं । पर उसकी पूंजी एक छदाम भी नहीं है । इसलिए वह स्वागत कैसे करे । उसके पास केवल जल और तंडुल है । उसी से वह उनका स्वागत करता है । आर्थिक शोषण का यह मार्मिक चित्रण अंग्रेजी शासन के प्रति गहरी क्रान्ति है ।

१- भारतेन्दु नाटकावली - हंशं्र० पृ० ५६८
२- लोकोक्ति शतक -- प्रतापनारायण मिश्र, पृ० ३
३- भारतेन्दु युग -- डा० रामविलास शर्मा, पृ० १४६, १९५२ ई०

व्यापार

अंग्रेजों द्वारा आर्थिक शोषण का पहला माध्यम व्यापार था। भारतेन्दु ने इसे समझा था और देश की जनता का ध्यान भी इस ओर आकृष्ट कर करवाया था --

कल के कल बल छलन सों छले इते के लोग।
नित नित धन सों घटत हैं बाढ़त है दुख लोग।
मारकीन मलमल बिना चलत नहीं कछु काम।
परदेसी जुलहान के मानहु भये गुलाम ।।[1]

इस स्थिति में यह आवश्यक था कि विदेश में जाते हुए धन को रोकने का उपाय ढूंढा जाय। भारतेन्दु का ध्यान इस ओर भी गया और उन्हें बोध हुआ कि यदि लोगों का काम मारकीन मलमल के बिना नहीं चल सकता तो उचित होगा कि यहां भी कलों की स्थापना हो, जिससे विदेशों में कच्चा माल नहीं जाए और भारत की पूंजी भारत में ही रहे --

करै वस्तु कल की इतै मिटै दीनता भेद।[2]

उपर्युक्त पंक्ति में भारतेन्दु ने आर्थिक शोषण से मुक्ति का उपाय बताया है कि परम्परा में परिवर्तन कर कल-कारखानों की स्थापना द्वारा आर्थिक क्रान्ति सम्भव है।

प्रेमघन और भी तीखी वाणी में इस आर्थिक शोषण के प्रति बेलाग बोलते हैं वे स्पष्ट कहते हैं कि विलायत भारत को लूट करके ला रहा है। तरह तरह के माल फैलाता है, उसकी वसूली भी हो जाती है। सारा घाटा भारत के सिर आता है --

लूटि विलायत भारत जाय। माल ताल बहु विधि फैलाय।
ताको याकुली झूटि जाय। जामें लागै लाभ दिखाय ।।[3]
देसी माल कहां बिकाय। घाटा भारत के सिर जाय ।।

१- भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग २, पृ० ७३५, सं० २०१०
२- वही, पृ० ७३६
३- [illegible] -- प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, पृ० १८५, सं० १९९६ वि०

ऐसा ही तीखा और व्यंग्यपूर्ण आर्थिक शोषण का वर्णन भारतेन्दु के 'नये ज़माने की मुकरी' में है --

भीतर भीतर सब रस चूसै ।
हंसि-हंसि के तन मन धन मूसै ।
जाहिर बातन में अति तेज ।
क्यों सखि सज्जन नहिं अंगरेज ।[१]

आर्थिक शोषण के विरुद्ध क्रान्ति का ऐसा तीखा स्वर अन्यत्र देखने को कम मिलेगा । अंग्रेजी राज्य में ही अंगरेजों के प्रति इस प्रकार की उक्ति को, चुभते हुए व्यंग्य को अत्यन्त क्रान्तिकारी माना जायगा ।

टैक्स

अंगरेज केवल व्यापार के माध्यम से भारत का आर्थिक शोषण नहीं कर रहे थे, बल्कि उनके द्वारा आर्थिक शोषण का एक सशक्त माध्यम था--टैक्स । अंग्रेजों ने भारतीय जनता पर तरह-तरह के टैक्स लगाकर उनका आर्थिक शोषण आरम्भ कर दिया था । युगद्रष्टा कवियों को शोषण को भीषणता का बोध हुआ । वे शोषण के इस रूप को भी नहीं सह सके । इसलिए उन्होंने इन अत्याचारी टैक्सों का विभिन्न प्रकार से चित्रण कर, उसके विरुद्ध क्षोभ प्रकट कर उसके उन्मूलन के लिए क्रान्ति की आवाज उठाई ।

'भारत दुर्दशा' में भारतेन्दु ने टैक्स द्वारा व्यथित जनता की वेदना का चित्रण किया है --

सब के ऊपर टिक्कस की आफत आई ।
हा हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई ।[२]

१- भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग २, पृ० ८११, सं० २०१०

२- वही, पृ० ७३६

हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान में भी भारतेन्दु आर्थिक दशा पर क्षोभ प्रकट करते हुए `राज कर' की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं --

कछु तो वेतन में गयो कछुक राज-कर मांहि ।
बाकी सब व्यौहार में गयो रह्यो कछु नाहिं ।।
निरधन दिन दिन होत है भारत भुव सब भांति ।
ताहि बचाइ न कोउ सकत निज भुज बुधि बल कांति[1] ।

प्रेमघन भी टैक्स के विरुद्ध क्रान्ति के स्वर को उठाते हैं । उनके काव्य में कई-कई जगह टैक्स के प्रति क्षोभ प्रकट है । वे इन्कमटैक्स की भीषणता के प्रति अश्रु अर्घ्य चढ़ाकर उसका विरोध करते हैं --

रोवो सब मुंह बाय बाय ।
हय हय टिक्कस हाय-हाय[2] ।

उन्हें लगता है कि एक तो भारतवासी यों ही अपने महत्व को भूल चुके, ऊपर से टैक्स एक नाग है, जो एक-एक को टो टोकर डंस रहा[3] है । --

टिकस नाग तापै डंस्यो, एक-एक टोय ।

`तृप्यन्ताम्' कविता में मंहगाई और टैक्स से पीड़ित, शोषित, दीन, श्रीहीन जनता की परतंत्रता का करुण चित्रण प्रतापनारायण मिश्र ने किया है --

मंहगी और टिक्स के मारे सबहिं क्षुधा पीड़ित तन छाम ।
साग पात लौं मिलै न जिय भरि लैवो वृथा दूध को नाम ।
तुमहिं कहा प्यावैं जब हमरो करत रहत जो वंश तमाम ।
केवल सुमुखि अलक उपमा लहि नाग देवता तृप्यन्ताम ।।[4]

१- भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग२, पृ० ७३६ सं० २०१०

२- प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, पृ० १८७, सं० १९९६ वि०

३- मिश्र प्रलाप, वही, पृ० १५६

४- भारतेन्दु युग--डा० रामविलास शर्मा, पृ० १४६, सं० १९५१ ई०

मंहगी और टैक्स से पीड़ित जनता को साग-पात भी नसीब नहीं है फिर दूध का तो नाम लेना भी व्यर्थ है । अत: दूध से नागदेवता को तृप्त कैसे करे । गायों की बलि रोज होती है । अत: उनकी संतुष्टि के लिए कवि उन्हें मात्र सुंदरी के अलकों की उपमा ही देता है ।

कवि परसन ने आर्थिक शोषण के विरुद्ध 'हिन्दी प्रताप' में यत्र तत्र क्रान्तिकारी विचार अपने काव्यों द्वारा प्रकट किया है । वे टैक्स के प्रति 'सियापा' करते हुए उसका विरोध इन शब्दों में करते हैं --

हवै हवै टिक्कस हाय हाय । कहां से देवैं हाय हाय ।
आमद कुछ नहिं हाय हाय । खरच बढ़ा है हाय हाय।

+ + +

कोई न छूटे हाय हाय । चुंगी लाइसेंस हाय हाय ।
तापर टिक्कस हाय हाय । गई अमीरी हाय हाय ।
आई फकीरी हाय हाय । गई मातबरी हाय हाय ।
यह टिक्कस है बुरी बलाय। इससे नहिं छुटकारा हाय।
हे ईश्वर तुम होहु सहाय । हवै हवै टिक्कस हाय हाय ।।[1]

कवि कभी इस पर चिन्तन करने बैठता है कि अंग्रेजों ने क्या-क्या लिया और क्या-क्या छोड़ दिया, तो देखता है कि 'भूसों से भी टैक्स लिया है--

गोरों लिये कुमीता किया । खर्चा भारत के सिर दिया । यहर
देन एक के दस २ किया । भूसों से भी टिक्कस लिया । यह २[2]

एक तो मंहगी है ही । उस पर से टैक्स । इतना ही नहीं भारत का सब गेहूं यूरोप को ढोया जा रहा है --

मंहगी कबकी भारत भीतर को यह बिपत महै अति घोर ।
पेट काट के टिक्कस लावो तिहि पर मंहगी जोर ।

+ + +

गोहूं ढोवो जात भारत को सब यूरप की ओर ।
भूखन मरत प्रजा भारत की लेत उसास कठोर ।।[3]

१-सियापा--परसन, हिन्दी प्रदीप, पृ० १६-१७,जुलाई सन् १८८६
२-क्या २ छोड़ा क्या २ लिया--परसन, वही, पृ० ५,फरवरी, सन् १८८६ई०
३-मंहगी--परसन, वही, पृ० ६,मई सन् १८८६ ई०

इस प्रकार भारतेन्दु युगीन कवि, साम्राज्यवादियों द्वारा भारत का आर्थिक शोषण टैक्स द्वारा किस प्रकार हो रहा था, उसका यथार्थ चित्रण करने में कहीं भी नहीं हिचकिचाए । इस चित्रण द्वारा उन्होंने जन-जीवन में आर्थिक शोषण के विरुद्ध क्रान्ति की वैचारिक चेतना उत्पन्न की ।

इतना ही नहीं, साम्राज्यवादी शक्ति के द्वारा शोषण के फलस्वरूप भारत आर्थिक दैन्य, मंहगी, अकाल आदि से भी ग्रस्त हो गया था । निर्धनता के कारण उदरपूर्ति का कोई उपाय नहीं था । भारत रोग व्याधियों का घर हो रहा था । अंगरेजों की शिक्षा-विषयक - नीति भी इतनी कुटिल थी कि बी०ए० पास करने पर भी बेकारी हो रहती थी । इन सारी विपत्तियों का भी हृदयस्पर्शी चित्रण कर इन कवियों ने आर्थिक-क्रान्ति की वैचारिक चेतना उत्पन्न की है ।

भारतेन्दु ने बेकारी का बड़ा ही सुन्दर दृश्य प्रस्तुत किया है --

तीन बुलाए तेरह आवैं ।
निज निज बिपदा रोय सुनावैं ।
आंखौ फूटै भरा न पेट ।
क्यों सखि सज्जन नहिं ग्रेजुएट ।[१]

बेकारी के परिणामस्वरूप भारत की दुर्दशा हुई और भारतीय जन-जीवन इतना निकृष्ट हो गया कि पेट भरने के लिए दर-दर कुत्ते की तरह भटकने लगा । जो ठोकर मारता था, वे उसी के पैर चाटते थे --

पेट भरन हित हाय फिरैं कूकर से दर दर ।
चाटहिं ताके पैर जम्पि लपकि मारहिं जे ठोकर ।।[२]

भारत की इस दयनीय स्थिति से क्षुब्ध होकर ईश्वर से पूछते हैं कि हे राम ! किस पाप के कारण भारत की यह दशा है कि हाड़ों की चक्की चलती है और हाड़ों का ही व्यापार होता है । अन्न और दूध का देश आज हाड़-चाम से पूरित हो गया है --

---

१- भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग २, पृ० ८१०, सं०२०१०

२- राम भरोसा -- बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली, प्रथम भाग, पृ०५८६, सं०२००७वि०

हरे राम ! केहि पापते भारत भूमि मभकार ।
हाड़न की चक्की चलै हाड़न कौ व्यापार ।।
अब या सुखमय भूमि मंह नाहीं सुख कौ लेस ।
हाड़ चाम पूरित भयो अन्न दूध कौ देस ।।[१]

प्रताप नारायण मिश्र ने साम्राज्यवादी शोषण के अत्याचार का पर्दाफाश करते हुए व्यंग्य किया है । भारत मृत्यु के करीब पहुंच चुका था, क्योंकि अत्याचार सीमा पर पहुंच चुका था । अकाल और मंहगी का विरोध करने वालों पर शासन की बन्दूक तनी रहती थी । इसलिए कवि को प्रतीत होता है कि अब तो सब प्रकार से मृत्यु देवता के तृप्ति की तैयारी हो चुकी है --

लैस न इनकम चुंगी चंदा पुलिस अदालत बर्षा धाम ।
सब के हाथ असन बसन जीवन संसयमय रहत मुदाम ।
जो इनहू ते प्रान बचे तो गोली बोलति हाय धड़ाम ।
मृत्यु देवता नमस्कार तुम सब प्रकार बस तृप्यन्ताप ।[२]

राधाकृष्णदास ने भी 'भारत बारहमासा' में भारतीय आर्थिक दुर्दशा का करुण चित्रण किया है । कुंवार का महीना आ गया है । शीत बढ़ गई है । लेकिन जब यूरोप भिक्षा देगा तभी काम चलेगा --

आयो कुआर तुषार लाग्यो पास कपड़ा हू नहीं ।
जब देहिं भिच्छा यूरपी तब काम कछु चलिहै सही ।।[३]

वस्त्रों के साथ ही अनाज की भी कमी है । पेट भर अनाज नहीं जुटता । कर पर कर लगता जाता है । सारा धन, अन्न विदेश चला जा रहा है, यहां एक हर तक नहीं बचा --

---

१- हे राम, वही, पृ० ५८७
२- भारतेन्दु युग--डा० रामविलास शर्मा, पृ० १४७, सं० १६५१ ई०
३- भारत बारहमासा--राधाकृष्ण ग्रन्थावली, पृ० १५, १६३०ई०

पेट भुरै नहिं अन्न लगत नित प्रति कर पर कर ।
अन धन खिचत बिदेस रहत उत नाहिन एक सर ।।[१]

इस प्रकार भारत की दयनीय आर्थिक दशा के चित्रण के माध्यम से तत्कालीन हिन्दी कवियों ने आर्थिक-शोषण के प्रति क्रान्ति की वैचारिक चेतना उत्पन्न की ।

स्वदेशी

आर्थिक शोषण के विरुद्ध क्रान्ति की वैचारिक चेतना उत्पन्न करने के साथ ही साथ तत्कालीन कवियों ने आर्थिक क्रान्ति के व्यावहारिक मार्गों का भी निर्देश किया । भारतेन्दु की दृष्टि में वे "स्वदेशी" के द्वारा ही आर्थिक क्रांति में सफल हो सकते थे । इसीलिए उन्होंने "स्वदेशी" का नारा लगाया । आर्थिक उद्धार के लिए चली आती परम्पराओं का त्याग कर औद्योगिक क्रान्ति द्वारा अर्थ स्तर ऊंचा उठाना एकमात्र उपाय था । यह औद्योगिक विकास तभी सम्भव था, जब स्वदेशी की नीति ग्रहण की जाय । अंग्रेजी राज्य की आलोचना के सन्दर्भ में ही भारतेन्दु ने आर्थिक शोषण को निर्मूल करने का मंत्र "स्वदेशी" भी बतलाया था । हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान में "करै वस्तु कल की इसे मिटै दीनता खेद" द्वारा भारतेन्दु ने बता दिया था कि "स्वदेशी" की नीति ही आर्थिक क्रांति उत्पन्न कर सकती है ।

"प्रेमघन" ने भी "स्वदेश बिन्दु" में आर्थिक क्रान्ति के लिए "चरखा" अपनाने को कहा है । चरखे के माध्यम से स्वदेशी वस्त्रों का निर्माण होगा और कवि को विश्वास है कि इससे "मैनचिस्टर" मात हो जाएगा —

चला चल चरखा तू दिन रात ।
चलता चरख चलाता निस दिन ज्यों ग्रीष्म बरसात ।

\+ \+ \+

१- रसिकन विलास, वही, पृ० ३१

२- चरखे की करतारी— प्रेमघन सर्वस्व- प्रथमभाग, पृ० ६३४, संवत्१९९६

कात कात कर सूत मैनचिस्टर को कर दे मात ।।[१]

इतना ही नहीं, कवि को अच्छी तरह विश्वास है कि चरखे के माध्यम से ही आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त होगी, जिससे दुखी निर्धन भरपेट दाल और भात खा सकेंगे । सस्ते, शुद्ध खद्दर से अपने शरीर को ढांक सकेंगे --

चल तू जिससे खाय दुखी भर पेट दाल और भात ।
सस्ता शुद्ध स्वदेशी खद्दर पहिन छिपावैं गात ।।[२]

स्पष्ट है कि भारतेन्दु-युगीन कवियों ने साम्राज्यवादी शोषण के विरोध में क्रान्ति के स्वर उठाए । उन्होंने न केवल राष्ट्रीय क्रान्ति की चेतना उत्पन्न की, बल्कि आर्थिक क्रान्ति पर भी उतना ही बल दिया । 'स्वदेशी' आन्दोलन को जन्म देकर उसके द्वारा राष्ट्र को अर्थ-शोषण से मुक्ति पाने का एक सशक्त अस्त्र दिया ।

द्विवेदी युग

वर्तमान चित्रण

इस युग में भी साम्राज्यवाद आर्थिक शोषण में पूर्व युग की भांति ही संलग्न था । हिन्दू और मुसलमान दोनों समानरूप से शोषित थे । जनता और निर्धन हो गई थी । कहा जा चुका है कि बीसवीं सदी के आरम्भ से राजनीतिक मांगों में उग्रता आने लगी थी । राजनीति के साथ ही आर्थिक क्षेत्र में भी उग्र कदम उठने लगे ।

१- चरखे की करामाती --प्रेमघन सर्वस्व,प्रथमभाग, पृ० ६३३, सं०१६६६

२- वही

दुर्भिक्ष का प्रकोप भारतेन्दु युग में भी था, इस युग में भी ज्यों का त्यों वर्तमान रहा । अन्न के लिए हाहाकार मचा हुआ था । मैथिलीशरण गुप्त को ऐसा लगा कि दुर्भिक्ष स्वयं सशरीर चारों ओर घूमने लगा है । अन्न के लिए चारों ओर पुकार मची है । इस दुर्भिक्ष का रूप इतना भयंकर है कि सम्पूर्ण विश्व में जितने व्यक्ति युद्ध में सौ वर्ष में मरें वहां इतने व्यक्ति दस वर्षों में ही भूख से मर चुके हैं --

दुर्भिक्ष मानो देह धर के घूमता सब ओर है,
हा ! अन्न ! हा ! हा ! अन्न का रव गूंजता घनघोर है ।
सब विश्व में सौ वर्ष में, रण में मरें जितने हरे ।
जन चौगुने उनसे यहां दस वर्ष में भूखों मरे ।।[1]

वस्त्र संकट भी उतना ही अधिक था । लज्जा निवारण तक के लिए नारियों को भी वस्त्र अपर्याप्त थे --

नारी जनों की दुर्दशा हमसे कही जाती नहीं,
लज्जा बचाने को अहो ! जो वस्त्र भी पाती नहीं ।।[2]

इस दुर्भिक्ष के फलस्वरूप लोग जाति, धर्म तक त्यागते जा रहे हैं । वे पेट भरने के लिए दूसरा धर्म अपनाने को मजबूर हैं । विधर्मी होना उनकी लाचारी है --

हमको क्षमा करि ये क्षुधावश हम तुम्हें हैं खा रहे ,
होकर विधर्मी हाय ! अब हम हैं विदेशी हो रहे ।।[3]

देश की यह दयनीय दशा देखकर प्रत्येक सहृदय के हृदय में वर्तमान शोषण के प्रति क्रान्ति का उन्मेष होना स्वाभाविक है ।

१- भारत-भारती--मैथिलीशरण गुप्त, पृ०८७, १९८३

२- वही, पृ० ८९

३- वही, पृ० ९०

पाण्डेय लोचन प्रसाद शर्मा ने भी भारत की होली का करुण चित्र उपस्थित किया है । विदेशी चीजों ने दगा दी है । सारा धन विदेश चला जा रहा है । फसल बहुत कठिनाई से पैदा हो रही है । अनाज की चारों ओर कमी है । इसलिए अब तो होली में देवगणों को भी भाजी का भोग लगाना होगा । --

दगा विदेशी चीजों ने दे, मारी हमको गोली है
धन सब जाय विदेश चला अब कहें कौन बल होली है ।।

+ + +

फसल दु:ख से उपजावें बहु, परै अन्य की झोली है ।
भोग लगाओ भाजी की अब, अहो देवगण ! होली है ![1]

'स्वदेशी कुण्डल' में राय देवी प्रसाद पूर्ण ने भी इस दशा का करुण चित्र उपस्थित किया है--

सुनौ रमापति ! हाय ! प्रजा धन-हीन रन-दिन ,
हैं अति व्याकुल वृन्द मुकुट के यथा चंद बिन ।

कवि ऐसे लोगों को धिक्कारता भी है जो बन्धुओं की आर्थिक स्थिति को देखकर भी उनकी ओर ध्यान नहीं देते --

लाखों देशी बन्धु यहां भूखों मरते हैं,
पर हम उनकी ओर नहीं दृग भी करते हैं ।[2]

किसानों की दयनीय दशा का भी चित्रण कर हिन्दी कवियों ने आर्थिक शोषण के प्रति क्रान्तिकारी विचारधाराएं जगाई हैं । मैथिलीशरण गुप्त ने भारतीय किसानों के दुख दैन्य का अत्यन्त मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत किया है --

बनता है दिन रात हमारा रुधिर पसीना,
जाता है सर्वस्व सूद में फिर भी छीना ।
हा हा खाना और सर्वदा आंसू पीना ,
नहीं चाहिए नाथ ! हमें अब ऐसा जीना ![3]

१- भारत की होली- पद्य पुष्पांजलि-पाण्डेय लोचन प्रसाद शर्मा, पृ०३७,१९७२वि०

२- दिन जीवन- रामचरित उपाध्याय, सरस्वती, दिसम्बर १९१७, पृ० ३६७

३- किसान- मैथिलीशरण गुप्त, पृ० ६, सं० १९७८

केशव प्रसाद मिश्र भी ऐसे किसान की दयनीय दशा का करुण चित्रण करते हैं । जो किसान धैर्य वश कभी दु:खों का अनुभव भी नहीं करता था, वही आज भूखों मर रहा है --

जो करता था पेट काट कर सरकारी कर-दान ,
रहता था प्रस्तुत करने को अभ्यागत का मान ।
नहीं हुआ था जिसे धैर्यवश कभी दु:ख का मान,
आज वही भूखों मरता है मातादीन किसान ।

इस प्रकार दीन दुखी भारतीय जनता की करुण दशा का बोध अनेक कवियों को हुआ । इस बोध से व्यथित होकर,असंतुष्ट होकर, उन्होंने तत्कालीन आर्थिक परिवेश का यथार्थ अंकन कर जन-जागरण में आर्थिक-क्रान्ति की वैचारिक चेतना जाग्रत की ।

स्वदेशी

भारतेन्दु युग की ही भांति इस युग के कवियों ने भी आर्थिक क्रांति का व्यवहारिक उपाय `स्वदेशी` को बताया । शोषण के विरुद्ध जहां विरोध जागरण की आवश्यकता है, वहीं यह भी उतना ही आवश्यक है कि कोई ऐसा मार्ग निर्धारित किया जाए,जिसके आधार पर क्रान्ति व्यवहारिक होकर सफल हो सके । इसीलिए `स्वदेशी` को अपनाने पर इस युग के कवियों ने भी अत्यन्त बल दिया । राष्ट्रीय कांग्रेस ने लगभग स्वदेशी का अस्त्र ग्रहण किया था । पर हिन्दी कवियों ने उसके पूर्व ही `स्वदेशी` का नारा लगाया था । वे वस्तुत: क्रांतिद्रष्टा थे । वे इस तथ्य को समझ चुके थे कि स्वदेशी के माध्यम से ही अंग्रेजों के चंगुल से मुक्त हुआ जा सकता है । १९०३ ई० में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने विदेशी वस्त्रों से हानि का उद्घाटन करते हुए स्वदेशी अपनाने का आग्रह किया --

विदेशी वस्त्र क्यों हम ले रहे हैं ?
वृथा धन देश का क्यों दे रहे हैं ?
न सूझै है अरे भारत भिखारी ।
गई है हाय तेरी बुद्धि मारी ।

* * *

स्वदेशी वस्त्र का स्वीकार कीजै,
विनय इतना हमारा मान लीजै ।
शपथ करके विदेशी वस्त्र त्यागो,
जावो पास, उससे दूर भागो ॥[1]

पं० गिरधर शर्मा भी इस तथ्य से परिचित हैं कि 'स्वदेशी' के माध्यम से ही कल्याण सम्भव है । भारत का उत्थान औद्योगिक व्यापारिक उन्नति से ही सम्भव है --

औद्योगिक व्यापारिक उन्नति कर भारत को उच्च करो ।
माल विदेशी यहां न खपने पावे, सन्तत ध्यान धरो[2] ॥

पं० शुकदेव तिवाड़ी दृढ़ता से कहते हैं कि वे अब 'स्वदेशी' ही बरतेंगे, भले ही विदेशी वस्तुएं बहुमूल्य हों या कि बे कीमत ही मिल जाएं :

हों विदेशी वस्तुएं, बहुमूल्य, बे कीमत मिलें ।
पर स्वदेशी ही सदा, बर्तूंगा अब तो मैं जरूर[3] ॥

देश की दरिद्रता को भगाने का एकमात्र उपाय स्वदेशी है । ऐसा दृढ़ विश्वास पाण्डेय लोचन प्रसाद शर्मा को है । देशोद्धार के उपायों को प्रश्नबद्ध रूप में उपस्थित करते हुए वे कहते हैं--

प्रश्न -- हैं कौन आपके अतिथि बोलिये प्यारे ?
उत्तर -- भारत के प्रेमी औ' कारीगर सारे ।
प्रश्न -- किस भांति देश की दरिद्रता यह भागे ?[4]
उत्तर -- जब करें स्वदेशी ग्रहण विदेशी त्यागें ।

१- स्वदेशी वस्त्र का स्वीकार- महावीर प्रसाद द्विवेदी, सरस्वती, जुलाई १६०३ ई०
२- कर्तव्य- पं० गिरधर शर्मा, स्वतन्त्रता की झनकार, प्रथम भाग, १६२२ ई०
३- असहयोगी के उद्गार- पं० शुकदेव तिवाड़ी, पृ०२१ वही, ~~पृ०४१, सं०१६७२~~
४- देशोद्धार सोपान-- पद्य पुष्पांजलि- पाण्डेय लोचन प्रसाद शर्मा पृ०४१, १६७२

कल-कारखानों की स्थापना भी स्वदेशी उत्थान के लिए आवश्यक है । कारण, तभी विदेशी अपने घर बैठ सकेंगे और आर्थिक क्रान्ति का लक्ष्य पूरा हो सकेगा । इसीलिए पं० गिरिधर शर्मा कहते हैं --

व्यापार वाणिज्य यहां बढ़ा दो,
अच्छे चला दो कल कारखाने,
विदेशियों की प्रतियोगिता में
प्यारी उन्हीं के घर में बिठा दो[1] ।

तत्कालीन कवियों ने इसका अनुभव भली भांति कर लिया था कि बिना औद्योगिक क्रान्ति के आर्थिक उन्नति सम्भव नहीं । शिल्प का प्रचार भी आर्थिक क्रान्ति के लिए आवश्यक है । इसीलिए भारतमाता कहती है --

विद्या भी मेरे पुत्रों को नहिं उचित सिखाई जाती है ।
यह वर्तमान सिच्छा वकील या नौकर उन्हें बनाती है ।।
है सब से बढ़कर आवश्यकता मुझे शिल्प की आज ।
बानिज्य बिना नहिं कभी सरैगा मेरा कुछ भी काज[2] ।।

स्पष्ट है कि भारतमाता के रूप में कवि अपने उद्गार प्रकट करता है कि --

सबसे बढ़कर उसे शिल्प की आवश्यकता है । इतना ही नहीं, वह देखता है कि केवल खेती की उन्नति से भी काम नहीं चल सकता, जब तक उसके पुत्र शिल्प-उपज के लिए विदेशों का मुंह ताकते रहेंगे --

फिर केवल खेती की उन्नति से भी न काम चल सकता है
जब तक सुतगन सब सिल्प अन्न उपज हित मुख बिदेस का तकता है[3] ।।

उस समय भारत उद्योगधंधा विहीन था । अतः परमुखापेक्षी था । 'भारत भारती' में मैथिलीशरण गुप्त ने इस परमुखापेक्षिता ग्रहण करने पर कई जगह क्षोभ प्रकट किया है । भारतीय वस्त्र आदि के लिए तो विदेशों के आश्रित थे ही ।

१- उद्बोधन--गंझिका गिरिधर शर्मा, पृ० ४२२, सरस्वती, मई १९०६ ई०

२- शिल्प व्यापार शिक्षा-भारत विनय--श्यामबिहारी मिश्र, शुकदेवबिहारी मिश्र, पृ० ८१, सन् १९१६ ई०

३- वही

यहां तक कि भारतीय ललनाओं का सौभाग्य-चिह्न चूड़ियां भी विदेशी पहना जाता था । कवि को लगता है कि इसीलिए भारत अपने सौभाग्य से वंचित हो गया है । अत: वह अपना क्षोभ प्रकट करता है --

कुल नारियां जिनको हमारी हैं करों में धारती-
सौभाग्य का शुभ चिह्न जिसको हैं सदैव विचारती,
वे चूड़ियां तक हैं विदेशी देख लो, बस हो चुका,
भारत स्वकीय सुहाग भी परकीय करके खो चुका ।[१]

इसलिए आर्थिक क्रान्ति की आकांक्षा से अभिप्रेरित होकर कवि वैश्यों से देश में कल-कारखानों की स्थापना करने को कहता है, जिससे सम्पूर्ण वस्तुएं देशी हों, यहां से कच्चा माल बाहर न जाए और आर्थिक, क्रान्ति में सफलता मिले --

अब तो उठो हे बन्धुओ ! निज देश की जय बोल दो,
बनने लगें सब वस्तुएं, कल-कारखाने खोल दो ।
जावे यहां से और कच्चा माल अब बाहर नहीं --
हो "मेड इन" के बाद बस अब "इण्डिया" ही सब कहीं ।[२]

पूंजीवाद

इस प्रकार तत्कालीन कवियों ने विदेशियों द्वारा देश के आर्थिक शोषण के विरोध में क्रांति की । जन-मानस में शोषण के प्रति उत्तेजना उत्पन्न की । साथ ही इस युग के हिन्दी-काव्य में यदि एक ओर विदेशियों द्वारा आर्थिक शोषण के विरोध में क्रान्ति विचार प्रकट हुए हैं तो दूसरी ओर पूंजीवाद के प्रति भी आक्रोश प्रकट हुआ है । आर्थिक वैषम्य का एक कारण पूंजीवादियों द्वारा शोषण भी रहा है ।

कवि त्रिशूल अर्थ वैषम्य का चित्रण करते हुए कहते हैं कि कुछ लोग इतना खा गए हैं कि अजीर्ण हो गया है और कुछ लोग भूख से मर रहे हैं --

---

१- भारत भारती-मैथिलीशरण गुप्त, पृ० १०३, सं०२००६वि०

२- वही, पृ० १६८

कुछ भूखों मर रहे महा तनु क्षीण हुआ है ।
कुछ इतना खा गये कि घोर अजीर्ण हुआ है ।
कैसा यह वैषम्य-भाव अवतीर्ण हुआ है,
जीर्ण हुआ मस्तिष्क, हृदय संकीर्ण हुआ है ।[1]

इतना ही नहीं, वे इससे भी क्षुब्ध हैं कि श्रम कौन करता है और मौज कौन करता है । खाता कौन है और उपजाता कौन है --

श्रम किसका है मगर मौजें हैं कौन उड़ाते ।
हैं खाने को कौन, कौन उपजा कर लाते ।।[2]

आगे कवि यह कामना करता है कि सांसारिक सम्पत्ति पर सबका समान हक हो --

सांसारिक सम्पत्ति पर सबका सम अधिकार हो ।
वह खेती या शिल्प हो विद्या या व्यापार हो ।।[3]

इस प्रकार कवि पूंजीवाद के प्रति क्रांति करते हुए साम्यवाद की स्थापना चाहता है ।

माधव शुक्ल भी 'सचेत श्रम जीवी' में पूंजीपतियों को चेतावनी देते हैं । वे स्पष्ट कहते हैं कि कभी जमींदार बन, कभी महाजन बन और कभी और और माध्यम से हमें दबाते रहे । पर सहने की भी सीमा है । ठोकर खाकर आज आग भड़क सुलग उठी है । अब यह दबाने से नहीं दबेगी । अत: जल्दी बुझा लो, अन्यथा तुम्हारी भी खैर नहीं है --

लगी है अब आग झोपड़ों में मुसाहिबो । अपने घर संभालो ।
तुम्हारी भी खैर अब नहीं है महल दुमहलों के रहने वालो ।।

\+ \+ \+

1- साम्यवाद-- राष्ट्रीय मन्त्र-- त्रिशूल, पृ० १३, सन १९११ ई०

2- वही, पृ० १५ सन १९२१ ई०

3- सचेत श्रम जीवी -- जागृत भारत -- माधव शुक्ल, पृ० ५०-५१, सन् १९२२ ई०

कभी ज़िमेदार बन सताया कभी हुकूमत में घर दबाया ।
महाजनी स कभी मिटाया ग़रज़ कि हर भांति से सताया।।
ढके हुए चीथड़ों से तन को सहा किये ज़ुल्म ये बराबर ।
मगर कहां तक सहेंगे आख़िर भड़क उठी आग खाके ठोकर ।।
दबायें मायो नहीं दबेगी जहां तलक जल्द हो बुझा लो ।
तुम्हारी ख़ैर अब नहीं है ।[1]

स्पष्टत: उपर्युक्त पंक्तियां आर्थिक शोषण के प्रति भीषण क्रांति का नारा लगाती हैं । पूंजीवाद आर्थिक शोषण की एक पद्धति ही है । इसलिए आर्थिक साम्य के लिए इस पूंजीवाद पद्धति में भी परिवर्तन आवश्यक है ।

इस प्रकार द्विवेदी युगीन कवियों ने वर्तमान आर्थिक-वैषम्य का चित्रण कर, उस वैषम्य के प्रति जन-जीवन में आक्रोश पैदा किया , असंतोष पैदा किया और कहने की आवश्यकता नहीं कि असंतोष ही क्रान्ति की जननी है । असंतोष वर्तमान व्यवस्था में परिवर्तन चाहता है और परिवर्तन क्रान्ति है ।

परिवर्तन या क्रान्ति के लिए कवियों ने `स्वदेशी` पर बल दिया, क्योंकि तत्कालीन विदेशी अर्थ-नीति में ही परिवर्तन की आवश्यकता थी । स्वदेशी के अन्तर्गत ही देश में उद्योगधंधों का विकास, कल-कारखानों की स्थापना भी अन्तर्निहित है । साथ ही उन्होंने पूंजीपतियों को भी चेतावनी दी कि आज शोषित जन क्रान्ति के लिए तत्पर हैं ।

छायावाद युग

पूर्व युगों की भांति छायावादी हिन्दी-काव्य में भी आर्थिक क्रान्ति की विचारधाराओं की अभिव्यक्ति होती रही । इस युग का आर्थिक परिवेश

१- सैयद अमजोवी-- जागृत भारत--माधव शुक्ल, पृ० ५०-५१ ,सन १६२२ ई०

पूंजीवाद से आक्रान्त था । सामन्ती अर्थ-व्यवस्था टूट गयी थी और पूंजीवादी अर्थतंत्र प्रधान हो गया था साथ ही उस दौर में विदेशी शोषण तो मौजूद था ही । अत: इस युग में व्यापक पैमाने पर आर्थिक पक्ष की अभिव्यक्ति काव्य में हुई । लोग आर्थिक-व्यवस्था में मूल परिवर्तन की आवश्यकता का अनुभव कर रहे थे । विदेशी अर्थ परतंत्रता से मुक्ति पाने की कामना के साथ ही पूंजीवाद का भी विरोध हुआ । छायावादी उत्तरार्द्ध -काव्य में शोषण के प्रति विरोध-भावना और साम्य की कामना व्यक्त हुई । परिणाम स्वरूप इस युग के काव्य में वर्ग-संघर्ष का चित्रण विशेष रूप से होने लगा ।

स्वदेशी

विदेशी अर्थ-परतंत्रता से मुक्ति पाने के लिए इस युग में भी `स्वदेशी` का आग्रह रहा । स्वदेशी आन्दोलन भारतेन्दु युग में ही प्रारम्भ हो चुका था । द्विवेदी-युग में यह अत्यधिक विस्तृत हुआ और छायावाद युग में इसका व्यवहारिक रूप भी दीखने लगा । स्वदेशी-आंदोलन के फलस्वरूप देश के उद्योग-धंधों का विकास हुआ और पूंजीपति वर्ग की स्थापना बढ़ती गई । इससे निर्धन जनता और पूंजीपतियों के बीच खाई बढ़ती गई । सहृदय कवियों को इस वैषम्य की मर्मान्तक पीड़ा हुई और उन्होंने पूंजीवाद का विरोध कर आर्थिक क्रान्ति की कामना की ।

कहा जा चुका है कि इस युग में स्वदेशी की कामना तीव्रतम हो उठी थी । इस काल में चर्खा और खादी प्रचार ने स्वदेशी का रूप ले लिया था । अत: अभिव्यक्ति हिन्दी काव्य में अत्यधिक हुई है । बल्कि यों कहें कि इस युग में स्वदेशी का पर्याय खादी ही मानी जाने लगी । इसीलिए लोचन प्रसाद पाण्डेय की आकांक्षा है कि प्रत्येक घर में खादी हो, ताकि पवित्रता रहे --

कृषक रहें ऋण मुक्त सब हों शिक्षित सच्चरित्र,
प्रतिगृह को पावन करे, `खादी` वस्त्र पवित्र ।[1]

1- तपस्वी के प्रति --लोचन प्रसाद पाण्डेय, माधुरी, फाल्गुन, 1980, पृ० 226

कवियों को खादी पवित्रता का चिह्न, दुख-दैन्य हरने वाली, साम्य की प्रतिष्ठाता, सर्वगुणों से भरपूर पट रानी लगती है --

कोमल अमल अति मंजुल मनोहर है,
शुद्ध साधुता को शुचिता को या निसानी है ।
दौलत प्रदानी देखि दारिद बिलानो जाहि
अधमता विवसता को दूर बिलगानो है ।
हीनता हेरानी दुख दानता डुरानी सबै,
समता-स्वतंत्रता को तान मृदु तानी है ।
सर्वगुन खानी कवि कैरव बखानो पट-
पाट पटरानी यह खादी महरानी है ।[1]

इन्होंने खादी महात्म्य का वर्णन अत्यन्त विस्तार से किया है । इनके अनुसार खादी स्वतंत्रता की दूतिका, स्वराज्य की सूतिका और राष्ट्र की शोभा है । वह दरिद्रता को नाश करने वाली, भारत की बर्बादी मिटाने वाली, परतंत्रता को मारने वाली साथ ही भारत के आजादी की परिचारिका है --

पूरन स्वतंत्रता की दूतिका बनी है कैधौं
सूतिका स्वराज्य कैधौं सोभा राष्ट्रवादी की ।
कैधौं दरिद्रताविनासिनी दवा है कैधौं
नासिनी है भारत की नीकी बरबादी की ।
पाप परतंत्रता की मारिका अचूक कैधौं,
प्यारी परिचारिका है भारत आजादी की ।[2]

खादी के साथ ही चर्खे को भी लोग आर्थिक क्रान्ति का एक सशक्त अस्त्र मानते रहे । कारण, खादी-उत्पादन का आधार-अस्त्र चर्खा है । इसलिए चर्खा-महात्म्य के गुणगान द्वारा भी कवि लोगों को आर्थिक क्रान्ति के लिए प्रेरित करते रहे । कवि दीनदत्त का विश्वास है कि आर्थिक स्वतंत्रता के लिए यह अनिवार्य है --

---

१- खादी लहरी --बुद्धिनाथ का कैरव, पृ०१, सन् १९२९
२- वही, पृ० ५

यदि चाहते सुख आप हैं तो शीघ्र चर्खा लीजिए ।
स्वाधीनता आर्थिक मिलेगी, दु:ख चर्खा कीजिए ।[1]

इतना ही नहीं, चर्खा वह सुदर्शन चक्र है, जिसका प्रयोग विश्वकर्मा गांधी ने जनता-जनार्दन के उद्धार के लिए किया --

यह चर्खा चक्र सुदर्शन है,
मनोहर जिसका दर्शन है ।
किया विश्वकर्मा गांधी ने इसका पुन: प्रचार,
दिया जनार्दन जनता के कर करने को उद्धार ।
यही सुख-स्वराज्य साधन है,[2]
यह चर्खा चक्र सुदर्शन है ।

विदेश से प्रति वर्ष वस्त्र खरीदने के कारण, देश की सम्पत्ति चली जाती है । यदि चर्खा चले तो विदेशी वस्त्र नहीं खरीदना पड़े । अत: दरिद्रता दूर करने के लिए चर्खा द्वारा 'स्वदेशी' का आरम्भ श्रेयस्कर है :

चली जात परदेस अमित सम्पत्ति प्रति बर्षा,[3]
दीन दीनता दूर करै चलि घर-घर चर्खा ।

कवि सुमित्रानन्दन पंत भी चर्खा के गीत गाते हैं उनके अनुसार चर्खा जीवन का सीधा सादा नुसखा है । साथ ही वह स्वदेश के धन का रक्षक है --

भ्रम भ्रम भ्रम--
घुन,घुन, भ्रम भ्रम रे चरखा
कहता : मैं धन का परम सखा,
जीवन का सीधा सा नुसखा--
श्रम, श्रम, श्रम ।

\+ \+ \+

१- चर्खा--दीनदयाल, पृ० ५, सन् १९२१ ई०

२- पराग-- रूपनारायण पाण्डेय, पृ० ३५, सन् १९२४ ई०

३- चर्खा -- दीनदयाल,पृ० ९ सन् १९२१

सेवक पालक शोषित जन का,
रक्षक मैं स्वदेश के धन का ,
कातो है । काटो तन मन का[1]
भ्रम, भ्रम, भ्रम ।

रामचरित उपाध्याय भी व्यंग्य के माध्यम से कहते हैं कि विदेशी वस्त्रों के उपयोग से देश का धन विदेश चला जायगा और तभी भारत दु:ख दूर होगा --

वस्तु विदेशी का व्यवहार,
करते रहिये बारम्बार ।
कभी स्वदेशी वस्तु न छूना ,
हा बढ़ जायेगा दुख दूना ।
सम्पत्ति जावै चली विदेश
तब भारत को मिले न क्लेश --[2]

इस प्रकार इस युग में चर्खा 'खादी' का अस्त्र रहा और स्वदेशी प्रचार का माध्यम चर्खा बना । स्वदेशी ग्रामोद्योग का पर्याय चर्खे को माना गया । अर्थ-परतंत्रता से मुक्ति पाने का साधन स्वदेशी वस्त्र था और इसके लिए खादी अपनाना आवश्यक था । इसीलिए इस युग के कवियों ने चरखा, खादी और स्वदेशी के गुणगान द्वारा आर्थिक क्रान्ति का आह्वान किया ।

वर्तमान चित्रण

आर्थिक परतंत्रता के कारण भारतीय जनता का शोषण भिन्न-भिन्न रीतियों से हुआ था । इस दयनीय स्थिति से जनता तड़प उठी और उसकी

१- चरखा गीत-- ग्राम्या-- सुमित्रानन्दन पंत, पृ०५०-५१, सं०२००८ वि०
२- बेड़ा पार -- रामचरित उपाध्याय, सरस्वती, दिसम्बर १९२१, पृ०६५६

इस तड़पन की, आह की अभिव्यक्ति कवियों ने वर्ग-चेतना के रूप में किया । कहा जा चुका है कि तत्कालीन युग में यदि एक ओर विदेशी-शोषण के प्रति आर्थिक क्रान्ति हो रही थी तो दूसरी ओर देश में औद्योगीकरण की चेतना के फलस्वरूप जिस पूंजीवाद का आविर्भाव हो रहा था, उसके प्रति भी विरोध-भावना आरम्भ हो चुका थी । हिन्दी-काव्य में भी पूंजीवाद के प्रति विभिन्न रूपों में क्रांति की विचारधाराएं अभिव्यक्त हुई हैं ।

नाथूराम शंकर शर्मा पूंजीवाद के अत्याचारों का चित्रण करते हुए पुंजीपतियों पर व्यंग्य करते हैं --

न कंकाल का पिण्ड छोड़ा करो
लहू चीथड़ों का निचोड़ा करो ।
कहो दाल यों छातियों पर दलो
न विज्ञान फूला न विद्या फलो ।

तत्कालीन समाज में निर्धन जनता-शोषण के कारण अस्थि-पंजर मात्र रह गयी थी । पीड़ित होकर वह दर-ब-दर घूम रही थी । नरेन्द्र के शर्मा ऐसी शोषित जनता का यथार्थ चित्र प्रस्तुत कर पूंजीवाद के प्रति क्रान्ति की भावना फैलाते हैं --

कृश कंकाल
नसों के नील जाल
अस्थि-पंजर निष्प्राण,
शून्य श्वासों के भार,
यही हैं वे नादान
भटकते भूखे बाल,
दीन कंकाल
नग्न कंकाल ।[१]

'भैंसागाड़ी' शीर्षक कविता में भगवतीचरण वर्मा ने शोषण के से उत्पन्न दयनीय दशा का मार्मिक चित्रण किया है । मानव मानव नहीं रहकर पशु

१- प्रभात फेरी -- नरेन्द्र, पृ० १००, सन् १६३८

बन गया है और माताएं गुलाम पैदा करती हैं । वे पैदा होते हैं और मरते हैं- यही एकमात्र कारण है --

पशु बनकर नर पिस रहे जहाँ
नारियां जन रही हैं गुलाम ,
पैदा होना, फिर मर जाना,[१]
बस यह लोगों का एक काम ।

निराला ने भी वर्ग-वैषम्य का चित्रण यत्र-तत्र किया है । उनकी 'भिक्षुक' शीर्षक कविता शोषित मानवता का करुण और जीता-जागता चित्र उपस्थित करती है --

वह आता --
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता ।
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को - भूख मिटाने को
मुंह फटी पुरानी झोली का फैलाता--
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता ।[२]

इसी प्रकार 'दान' शीर्षक कविता में उन्होंने पूंजीपतियों का एक और अत्याचारी रूप प्रस्तुत किया है । वे बन्दरों को तो पुए खिलाते हैं पर भिक्षुक की ओर उलट कर ताकते तक नहीं । इस प्रकार कवि ने उनको 'दान' भावना पर तीखा व्यंग्य किया है --

झोली से पुए निकाल लिए
बढ़ते कपियों के हाथ दिए,
देखा भी नहीं उधर फिर कर
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर ,

१- मानव- भगवतीचरण वर्मा, पृ० ७५, सन् १९४८ ई०
२- भिक्षुक -- निराला, परिमल, सं० २००७ वि०, पृ० १४३

दीनों की असीम सहन शक्ति की चर्चा भी वे करते हैं --

सह जाते हो
उत्पीड़न की क्रीड़ा सदा निरंकुश नग्न,
हृदय तुम्हारा दुर्बल होता भग्न ।[1]

दिनकर की रचनाओं में वर्ग-वैषम्य और तीखे रूप में चित्रित हुआ है । कवि इसे सहन नहीं कर सकता कि एक ओर कुत्तों को दूध मिले, वस्त्र मिले और बालक भूख से आकुल हो रहें , वस्त्रहीन होकर जाड़े की रातों में मां की हड्डी से चिपक कर ठिठुरते रहें । ब्याज चुकाने के लिए युवतियों की लाज बेच दी जाती है और दूसरी ओर मालिक तेल और फुलेलों पर पानी के समान द्रव्य बहाते हैं । वर्ग-वैषम्य की यह स्थिति कवि से सहन नहीं हो पाती और तब वह क्रान्ति के लिए तत्पर हो उठता है --

श्वानों को मिलता दूध-वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं,
मां की हड्डी से चिपक, ठिठुर जाड़े की रात बिताते हैं,
युवती के लज्जा-वसन बेच जब ब्याज चुकाये जाते हैं,
मालिक जब तेल फुलेलों पर पानी-सा द्रव्य बहाते हैं,[2]
पापी महलों का अहंकार देता तब मुझको आमंत्रण ।

'हाहाकार' शीर्षक कविता में शोषण के और भी अत्याचारी रूप का वर्णन कवि ने किया है और यह स्थिति उसे इतनी असह्य हो उठती है कि वह इस वैषम्य को समाप्त करने के लिए तत्पर होकर क्रान्ति का शंखनाद कर उठता है --

हटो व्योम के मेघ, पंथ से,
स्वर्ग लूटने हम आते हैं ,
"दूध, दूध..." औ वत्स ![3] तुम्हारा
दूध खोजने हम जाते हैं ।

१- दीन--सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' , परिमल, पृ०१५४, सं०२००७वि०
२- हुंकार -- रामधारी सिंह दिनकर , पृ० ७१, १९५२ ई०
३- वही, पृ० २१

इस प्रकार लोक-मंगल से अनुप्राणित कवि दैन्य मिटाकर साम्य की स्थापना चाहता है।

सुमित्रानन्दन पंत ने भी मानव-महत्व पर अधिक बल दिया और इसलिए वर्ग-वैषम्य के समाप्त होने की आकांक्षा व्यक्त की। धनपतियों को उन्होंने स्पष्ट नृशंस और जोंक कहा --

> वे नृशंस हैं वे जन के श्रमबल से पोषित,
> दुहरे धनी, जोंक जग के, भू जिनसे शोषित[1]।

इस प्रकार आलोच्यकालीन कवियों ने आर्थिक-क्रान्ति के लिए एक ओर 'स्वदेशी' का नारा लगाया तो दूसरी ओर पुंजीपतियों के विरुद्ध भी आवाज उठाई ताकि वर्ग-वैषम्य दूर होकर, समान अर्थ तंत्र की स्थापना हो सके।

प्रगतिवाद युग

इस युग तक धनी और निर्धन जनता के बीच आर्थिक खाई और गहरी हो चुकी थी। साम्राज्यवादी शोषण का विरोध तो भारतेन्दु युग से ही हो रहा था, पर साम्राज्यवाद के पुंजीवादी रूप का विरोध लगभग १९३० ई० से प्रारम्भ हुआ। छायावाद के पूर्वार्द्ध तक में साम्राज्यवादी शोषण के प्रति ही क्रान्ति भावना का आधिक्य था। पर उत्तरार्द्ध में प्रगतिवादी तत्व विकसित होने लगे और पुंजीवादी शोषण का विरोध प्रारम्भ हो गया। यों रूसी क्रान्ति १९२०ई० में ही सफल हो चुकी थी और तभी से साम्यवाद का स्वर जन-जीवन में फैलने लगा था। पर लगभग एक दशक तक साम्यवाद की प्रशंसा ही होती रही थी, पुंजीवाद का विरोध उतना नहीं। १९३० के आस पास ई० से पुंजीवाद का स्पष्ट विरोध आरम्भ हुआ। पर साहित्य में उसका स्पष्ट दर्शन प्रगतिवाद-युग से होता है। प्रगतिवाद से पूर्व का साहित्य, जिसमें साम्यवाद की चर्चा है, वह इस युग की पृष्ठभूमि-सी है। इस प्रकार प्रगतिवाद-युग से ही साहित्य में स्पष्ट साम्यवाद का स्वर गूंजने लगा और पुंजीवादी-शोषण के प्रति विरोध स्वर फूटा।

१- ग्राम्या- ग्राम्य-सुमित्रानन्दन पंत, पृ०३१, सं०२००६ वि०

वर्तमान चित्रण

आलोच्य-काल में पूंजीवाद के विरुद्ध क्रांति का शंखनाद हुआ । वह पूंजीवादी चाहे विदेशी हो चाहे भारतीय । शोषण के प्रति भीषण आक्रोश और शोषित के प्रति सहानुभूति लेकर इन कवियों ने क्रांति-गान किया । शोषण का अत्याचारी रूप इन कवियों ने अत्यन्त सफलता के साथ काव्य में चित्रित किया है । शोषकों की दृष्टि में शोषितों की रोटी की मांग विद्रोह है और अपने अभावों को पूरा करने का उनका प्रयास 'डाका' समझा जाता है --

रोटी की भी मांग किसी से, करना है विद्रोह कहाता ।
प्रिये अभावों को भी पूरा करना, 'डाका' समझा जाता ।[1]

सुमित्रानन्दन पंत ने वृद्ध भिखारी के मार्मिक चित्रण के द्वारा पूंजीवाद की विभीषिका के प्रति क्षोभ प्रकट किया है । वृद्ध भिखारी जब किसी के समक्ष खड़ा होकर याचना करता है, तो प्रतीत होता है कोई जानवर पिछले पैरों के बल चला आ रहा है --

भूखा है कुछ पैसे पा, गुनगुना
खड़ा हो जाता वह नर
पिछले पैरों के बल उठ
जैसे कोई चल रहा जानवर ।[2]

दुखित मानव की हालत आज इतनी बदतर हो गई है कि वह गोबर से दाना बीनकर और कुत्ते के मुंह से रोटी छीनने को लाचार है । शिवमंगल सिंह 'सुमन' द्वारा चित्रित यह चित्र आर्थिक वैषम्य का ऐसा हृदयद्रावक दृश्य उपस्थित करता है, जो सहज ही सहृदयों में आर्थिक-क्रान्ति के लिए उन्मेष करती है --

हंस भूख मानव बैठा
गोबर से दाने बीन रहा
और झपट कुत्ते के मुंह से
जूठी रोटी छीन रहा ।
सांस न बाहर भीतर जाती और कलेजा मुंह को आता ।[3]

१-महाक्रान्ति का घूंघट खोलो-हरिकृष्ण प्रेमी, विशाल भारत, फरवरी १९३९, पृ०२११
२-ग्राम्या --सुमित्रानन्दन पंत, पृ०२९-३०
३- जीवन के गान--शिवमंगल सिंह, 'सुमन', पृ०७६, १९४५ ई०

इतना ही नहीं, उन्हें लगता है कि हर तरफ शोषण की विकराल ज्वाला फैली है। और इस ज्वाला में हर दिन कंकालों की आहुति पड़ती है। इस होम में रक्त घी की तरह और हड्डी ईंधन की तरह जलता है --

आज रक्त घृत बन जलता है
हड्डी का ईंधन जलता है
कंकालों की आहुति पड़ती यह ऐसी भीषण विकराल।

इस युग में द्वितीय महायुद्ध हुआ था। इस युद्ध के कारण मंहगाई बहुत बढ़ गई थी। वस्तुओं के मूल्य दुगने-तिगुने हो गये थे। साधारण जनता की क्रय-शक्ति क्षीण हो गयी थी। इस मंहगाई से उत्पन्न स्थिति का चित्रण भी कवियों ने यत्र-तत्र किया। त्रिलोचन शास्त्री ने भोरई केवट की मंहगी से उत्पन्न इस करुण दशा का चित्रण किया है --

बाबू, इस मंहगी के मारे किसी तरह अब तो
और नहीं जिया जाता
और कब तक चलेगी लड़ाई यह ?[1]

पर बेचारी भोली जनता इस विपन्नता को अपने पूर्वजन्मों का कर्म समझकर रह जाती थी। वह पूंजीपतियों की चालों को क्या समझती। भोरई भी ऐसा ही था --

उस अकारण पीड़ा का भोरई उपचार कौन सा करता
वह तो इसे पूर्व जन्म का प्रसाद कहता था
राष्ट्रों के स्वार्थ और कूटनीति
पूंजीपतियों की चालें
वह समझे तो कैसे।[2]

इस प्रकार तत्कालीन कवियों ने पीड़ित, शोषित, दुःखित जनता के अनेक मार्मिक चित्र प्रस्तुत किए। स्पष्ट ही ये चित्र सहज ही मनुष्य के हृदय में क्षोभ और आक्रोश उत्पन्न करने वाले हैं। इस क्षोभ और तज्जनित आक्रोश के

१- धरती-- त्रिलोचन शास्त्री, पृ० ८२, १९४५ ई०

२- वही

कारण ही मनुष्य वर्तमान नीति में परिवर्तन चाहता है। और कहने की आवश्यकता नहीं कि परिवर्तन ही क्रान्ति है।

मजदूर और किसान

पर इन कवियों ने दयनीय दशा के चित्रण मात्र से ही संतोष नहीं कर लिया, बल्कि क्रान्ति का शंखनाद भी बजाया। इस शोषण के आधार हैं पूंजीपति। अत: कवियों ने उनके विनाश की कामना की है किसानों और मजदूरों का आह्वान किया है। मार्क्सवाद का गुणगान किया है।

सोहनलाल द्विवेदी ने 'हलधरों' का आह्वान करते हुए कहा कि तुम जब जागोगे, तभी हिन्दुस्तान जगेगा --

जब तक तुम न जागोगे, तब तक
नहीं जगेगा हिन्दुस्तान,
हिन्दुस्तान बसा है तुममें
क्या तुम हो इससे अनजान ?[1]

इतना ही नहीं, वे आगे उसकी शक्तियों से उसे और भी परिचित करते हुए कहते हैं कि तुम्हारे ही बल पर शासन चलते हैं। तुम्हें मालूम नहीं क्या कि तुम्हारे ही धन पर सिंहासन भी निर्भर है --

तुम्हें नहीं क्या ज्ञात? तुम्हारे
बल पर चलते हैं शासन,
तुम्हें नहीं क्या ज्ञात ? तुम्हारे[2]
धन पर निर्भर सिंहासन।

मजदूरों को जगाते हुए भी वे उसे शिव बताते हैं, जो अपने सिर पर आकाश उठाकर घूमा करता है। आगे वे उसे प्रलयंकर महेश कहते हुए तांडव करने को कहते हैं ताकि अत्याचारों का ध्वंस होकर फिर मंगलमय का सृजन हो सके --

---

१-- हलधर से-- सोहनलाल द्विवेदी, कुणाधार, पृ०३३, सं० २००१ वि०

२-- वही, पृ० ३४

मजदूर ! भुजायें वे तेरी
मज़दूर शक्ति तेरी महान
छूना करता तू महादेव !
सिर पर लेकर के आसमान ।

+ +

तू ब्रह्मा विष्णु रहा सदैव
तू है महेश प्रलयंकर फिर
हो तेरा ताण्डव शंभु ! आज
हो ध्वंस , सृजन मंगलकर फिर[1] ।

शिवमंगल सिंह सुमन भी मजदूरों और किसानों को निमंत्रित करते हैं कि तुम्हारी गरजन से आज प्रलय हो जायगी । शोषकों का नाश हो जायगा । अत्याचारियों की छाती पर चढ़कर तुम आगे बढ़े चलो --

तुम गरजो आज प्रलय होगी
शोषक वर्गों की क्षय होगी
दुनिया के कोने-कोने से
मजलूमों की जय जय होगी
अत्याचारी की छाती पर तुम चढ़े चलो तुम बढ़े चलो ।
मजदूर किसानों बढ़े चलो[2] ।

रामदयाल पाण्डेय भी हलधर किसानों को सम्पूर्ण भूगोल को हिलाने के लिए निमन्त्रण देते हैं, ताकि पाप का पोल खुल जाए --

चलो दल के दल, हल के साथ, हिलाने को समूल भूगोल
लो हँसिया खुरपी का जोर खोलने को पापों की पोल[3] ।

सुमित्रानन्दन पंत ने भी श्रमजीवियों की स्तुति की है । इन्हें विश्वास है कि श्रमजीवी ही लोक क्रान्ति का अग्रदूत है --

---

१- मजदूर --सोहनलाल द्विवेदी,युगाधार, पृ०३८-३६, सं० २००१ वि०
२- जीवन के गान --शिवमंगल सिंह सुमन, पृ०७४, १६४५ई०
३- गण देवता--रामदयाल पाण्डेय, पृ०१७, सं०२०००वि०

वह पवित्र है : वह जग के कर्दम से पोषित
वह निर्माता : श्रेणि, वर्गधन, बल से शोषित
+ + . +
लोक क्रांति का अग्रदूत, वर वीर, जनादृत
नव्य सभ्यता का उन्नायक, शासक, शासित
चिर पवित्र वह : भय, अन्याय, घृणा से पालित,
जीवन का शिल्पी, पावन श्रम से प्रक्षालित ।[1]

बालकृष्ण शर्मा नवीन भी क्रांति के प्रमुख गायकों में रहे हैं । वे भी नंगे-भूखों को जागने के लिए कहते हैं --

जागो, मेरे मानव, जिनके
हाथ-पांव हैं सूखे-सूखे,
जागो नरकंकाल करोड़ों
जागो मेरे नंगे-भूखे ।[2]

साम्यवाद

शोषित वर्ग के प्रति यह भावना साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित होने के कारण प्रकट हो रही थी । साम्यवाद का उदय मार्क्स के द्वारा हुआ था । मार्क्सवादी पूंजीवाद का विरोधी है । उसके अनुसार मनुष्य-मनुष्य में आर्थिक समानता होनी चाहिए । प्रगतिवाद-युग में हिन्दी कवियों ने बहुतायत से मार्क्सवादी विचारधारा को अपनाया । कारण, आर्थिक-क्रान्ति के क्षेत्र में मार्क्सवाद एक बहुत बड़ी देन थी । इसीलिए हिन्दी-कवियों ने भी मार्क्स और मार्क्सवाद का गुणगान किया । साथ ही साम्यवाद से प्रभावित प्रगतिवादी कवियों ने स्पष्ट स्वरों में इस पूंजीवाद को नष्ट करने की बात कही ।

१- श्रमजीवी-- सुमित्रानन्दन पंत, युगवाणी, तृतीय संस्करण
२- आज क्रान्ति का शंख बज रहा -- बालकृष्ण शर्मा नवीन, हम विषपायी जनम के, पृ० ४७८, १९६४ ई०

सुमित्रानन्दन पंत ने 'मार्क्स' की प्रशस्ति में कहा --

वर्गहीन सामाजिकता देगी सबको सम साधन ,
पूरित होंगे जन के भव जीवन के निखिल प्रयोजन ।
दिशु दिगंत में व्याप्त, निखिल युग युग का चिर गौरव हर
जन संस्कृति का नव विराट् प्रासाद उठेगा भू पर ।
धन्य मार्क्स ! चिर तमच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर,
तुम त्रिनेत्र के ज्ञान-चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर ।[1]

दिनकर ने भी दिल्ली और मास्को में साम्यवाद की संस्तुति की है । वह साम्यवाद को अमरक्रान्ति की विधायिका मानते हैं और वह नव युग की भवानी है, जो दलित, दुःखित, पीड़ित मानवता का उद्धार करेगी--

जय विधायिके अमर क्रान्ति की ! अरुण देश की रानी !
रक्त-कुसुम-धारिणि! जगतारिणि! जय नव शिवे ! भवानी !
अरुण विश्व की काली, जय हो,
लाल सितारोंवाली, जय हो,
दलित, बुभुक्षु, विषण्ण मनुज की,[2]
शिखा रुद्र मतवाली, जय हो ।

निराला भी साम्यवाद के आकांक्षी हैं । उन्हें विश्वास है कि सामाजिक वैषम्य एक दिन समाप्त हो जाएगा । अमीरों की हवेली किसानों की पाठशाला बन जाएगी । धोबी, पासी, चमार, तेली, सभी अंधकार दूर कर एक पाठ पढ़ेंगे --

आज अमीरों की हवेली
किसानों की होगी पाठशाला,
धोबी, पासी, चमार, तेली
खोलेंगे अंधेरे का ताला,
एक पाठ पढ़ेंगे, टाट बिछाओ ।[3]

१- मार्क्स के प्रति--सुमित्रानन्दन पंत, युगपथ, पृ०२६ , सं०२००६ वि०
२- दिल्ली और मास्को --दिनकर, सामधेनी, पृ०५६, १९४६ ई०
३- बेला--सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' पृ०७८, १९४२ ई०

बालकृष्ण शर्मा नवीन 'निर्धन' की लाचारी देखकर जगपति का टेंटुआ घोंटने की आकांक्षा व्यक्त करते हैं। मनुष्य को झूठे पत्ते चाटते देखकर वे क्षुब्ध हो उठते हैं। वे सोचते हैं, क्यों नहीं ऐसी दुनिया को आग लगा दिया जाय --

और चाटते झूठे पत्ते जिस दिन मैंने देखा नर को
उस दिन सोचा : क्यों न लगा दूं आग आज इस दुनिया भर को ?
यह भी सोचा : क्यों न टेंटुआ घोंटा जाय स्वयं जगपति का ?
जिसने अपने ही स्वरूप को रूप दिया इस घृणित विकृति का।[१]

इन्हें इतने से ही संतोष नहीं है। वे शोषितों को विद्रोह के लिए ललकारते हैं। इन्हें विश्वास है कि इन पीड़ित जनों में शक्ति का अखण्ड भाण्डार है। इसलिए वे उनका आह्वान करते हैं कि अपने हुंकारों से जल-थल भर दे, अनाचार में आग लगा दे --

ओ भिखमंगे, अरे पराजित, ओ मजलूम, अरे चिरदोहित,
तू अखण्ड भाण्डार शक्ति का, जाग, अरे निद्रा-सम्मोहित,
प्राणों को तड़पाने वाली हुंकारों से जल-थल भर दे,
अनाचार के अम्बारों में अपना ज्वलित फलीता धर दे।[२]

पूंजीवाद का विरोध होता रहा, क्योंकि पूंजीवाद का विनाश ही साम्यवाद लाएगा। देश की आर्थिक दुर्दशा का कारण पूंजीवाद की मुनाफाखोरी है। शमशेर बहादुर सिंह काले बाजार का चित्रण करते हुए कहते हैं --

भूख ....
अनाज ....
मुनाफाखोर
अनाजचोर का
छिपा-सा निर्जन में
अंधेरा बाजार ....[३]।

१- झूठे पत्ते--बालकृष्ण शर्मा 'नवीन, हम विषपायी जनम के, पृ० ४६७

शिवमंगल सिंह 'सुमन' मेहनतकशों की जीत के पक्षपाती है । उन्होंने आर्थिक क्रांति का अत्यन्त तीखा स्वरूप उपस्थित किया है --

मेहनत कश की मेहनत होगी जग का एक सहारा ।
मुट्ठी बांध कहेंगे हम सब सारा विश्व हमारा ।
इस जागृति के स्वर में जन-जन-कण-कण आज शरीक है[1] ।

उदयशंकर भट्ट को लगता है कि विश्वशान्ति क्रान्ति द्वारा ही मिलेगी । कारण, भूख और अशान्ति की समस्या क्रान्ति ही सुलझा सकेगी और तब संसार में शान्ति की स्थापना हो सकेगी --

भूख है, अशान्ति है, युद्ध और क्रान्ति है,
क्रान्ति विश्वशान्ति है -- हो न तू निकट ?[2]

सुमन इसी क्रान्ति को परिवर्तन कहते हैं । इस परिवर्तन से ही उत्कर्ष होगा । इसलिए नंगे-भिखमंगों की टोली नवीन उत्साह से भर कर शोषकों के प्रति विरोधी आवाज उठाती है --

नयनों में नव उत्साह लिए
नंगों भिखमंगों की टोली
शोषक जग के प्रति बोल रही
कुछ-कुछ परिवर्तित, सी बोली
मानव जीवन ही परिवर्तन परिवर्तन ही उत्कर्ष[3] लिये ।
आया है नूतन वर्ष लिये ।

अज्ञेय पूंजीपतियों के विरुद्ध घृणा के गान गाते हैं व वे उन सत्ताधारियों को ललकारते हैं, जो महलों में बैठकर आदेश देते हैं । शिशु के मरने की परवाह नहीं रखते और बालों को खींचकर पकड़ मंगवाते हैं । ऐसे सत्ताधारी निर्धन के घर की मुट्ठी धान तक नहीं देख सकते --

---

१- बर्लिन अब नजदीक है -- सुमन , हंस, पृ०६६, १९४३
२- युगदीप--उदयशंकर भट्ट, पृ० ६, सं०२००१ वि०
३- घृणा का गान-- अज्ञेय, इत्यलम् , पृ०१२, सन् १९४६ई०

सुन--

तुम जो महलों में बैठे दे सकते हो आदेश,

मरने दो बच्चे, ले आओ खींच पकड़ कर केश ।

नहीं देख सकते निर्धन के घर दो मुट्ठी धान

सुनो, तुम्हें ललकार रहा हूं, सुनो घृणा का गान[1] ।

नरेन्द्र शर्मा हथौड़ा और दरांतीधारी मजदूरों का आह्वान करते हैं और उनके अधिकारों को बताते हैं । उनके अनुसार वे ही दुनिया के मालिक हैं , जो परिश्रम करते हैं --

आओ सब मेहनतकश साथी

लिए हथौड़ा और दरांती ।

जो मेहनत से पैदा करते

मालिक हैं वे दुनिया भर के

तत्कालीन कवियों को दृढ़ विश्वास है कि एक दिन ज़माना बदल जाएगा । वह भूखों और नंगों से कहता है कि जग का यह अनाचारी विधान अवश्य पलट जाएगा --

बदलेगा--

बदलेगा ज़माना बदलेगा

बदलेगा ।

कह दो भूखों और नंगों से

पलटेगा --

पलटेगा इस जग का विधान

पलटेगा --

बदलेगा, ज़माना बदलेगा[2] ।

और भी कवि को विश्वास है कि अब पूंजीपति निर्धन की रोटी और कपड़ा नहीं लूट सकेगा, उसका आसन डोल जाएगा । पर इसके लिए मजदूरों को उसकी

१- घृणा का गान -- अज्ञेय, इत्यलम्, पृ०५२ , १९४६ ई०

२- बदलेगा ज़माना -- रामेश्वर उपाध्याय -- हंस, पृ० ९९६,सितम्बर१९४८ ई०

कीमत चुकानी होगी । रक्त की नदी बहानी होगी । और तब इस सड़े-गले शासन-विधान को ठोकर लगेगी । पर इसके लिए साम्यवाद का स्थापन आवश्यक है, क्योंकि वही अरुण ज्योति है और उसके साथ ही आशा सूर्य का उदय होगा--

नहीं लूट सकेगा पूंजीपति
निर्धन की रोटी औ इज्ज़त
डोलेगा पूंजी का आसन
डोलेगा--
बदलेगा ज़माना, बदलेगा ।
किन्तु,
शोणित की नदी बहानी है
कीमत मजदूर चुकानी है
इस सड़े गले शासन-विधान
को ठोकर एक लगानी है
निकलेगा--
उस अरुण ज्योति के साथ शीघ्र[१]
आशा का सूरज निकलेगा ।

१९४७ में भारत स्वतंत्र हो गया था । विदेशी शासन से उसे मुक्ति मिल गयी थी । अतः विदेशी अर्थ-परतंत्रता भी नहीं रह गयी थी । पर पूंजीवाद की समस्या ज्यों-की-त्यों बनी हुई थी । इसीलिए ये कवि पूंजीवादी व्यवस्था के नाश की कामना अपनी रचनाओं में करते रहे । जैसा कि उपर्युक्त उद्धृत उदाहरण से स्पष्ट है ।

इस प्रकार इन कवियों ने पूंजीवाद के नाश के लिए क्रान्ति का आह्वान किया और साम्यवाद की स्थापना चाही, क्योंकि तभी आर्थिक क्रान्ति की सफलता का लक्ष्य पूरा होगा । इसीलिए इस युग के हिन्दी काव्य में आर्थिक क्रान्ति का स्वर अत्यन्त तीव्र रूप में उभरा । कवि पूंजीवादी शोषण के विरोध में मजदूरों, किसानों, शोषितों का गुणगान करते रहे और साथ ही उन्हें क्रान्ति के लिए भी आहूत करते रहे ।

-0-

१- बदलेगा ज़माना -- रामेश्वर उपाध्याय, हंस, सितम्बर, १९४८, पृ० ६१६

उपसंहार

उपसंहार

सम्पूर्ण विवेचन के बाद प्रस्तुत प्रबन्ध के उपसंहार की अपेक्षा है। उपसंहार के रूप में प्रस्तुत तथ्य स्पष्ट हो जाते हैं।

'क्रान्ति' शब्द का विस्तार विभिन्न विचारकों के अनुसार विभिन्न रूपों में है। पर इस शब्द के विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि क्रान्ति प्राचीन के स्थान पर नवीन परिवर्तन को द्योतित करती है। दूसरे शब्दों में परिवर्तन क्रांति का पर्याय है। जीवन में परिवर्तन की आकांक्षा स्वाभाविक है। मनुष्य नवीनता का सदा से प्रेमी रहा है। इस नवीन को प्राप्त करने की आकांक्षा ही उसे क्रांति की प्रेरणा देती है।

क्रान्ति की मूल प्रेरणा असंतोष है। इस असंतोष का कारण असमानता, उत्पीड़न, अत्याचार, कुंठा आदि होते हैं। ये स्थितियां राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक सभी क्षेत्रों में या किसी भी एक क्षेत्र में हो सकती हैं।

क्रान्ति राष्ट्रीय पृष्ठभूमि पर होती है। एक राष्ट्र या जाति की समस्या ही क्रांति की प्रेरक होती है। क्रांति की मूलभावना मानवतावादी दृष्टि कही जा सकती है। कारण, मानवता जब अनेक प्रकार के शोषण से पीड़ित होती है, तब उसके उद्धार के लिए क्रांति का सहारा लिया जाता है। इसीलिए क्रांति की परिणति जन-कल्याण के कार्यों में होती है।

क्रांति मात्र हिंसा के माध्यम से ही नहीं होती, बल्कि अहिंसक आन्दोलन द्वारा भी होती है। अहिंसक क्रान्ति सशस्त्र क्रांति से कम तेज और प्रभावशाली नहीं है। भारत में अहिंसक क्रांति का ताजा उदाहरण सामने है। अहिंसक क्रांतिवादी वैचारिक परिवर्तन, आग्रह, आन्दोलन, सहिष्णुता, त्याग आदि का सहारा लेकर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते हैं। अहिंसक क्रांति द्वारा बाह्य परिवर्तन

के साथ ही आन्तरिक परिवर्तन भी सम्भव है । संक्षेप में अहिंसक क्रांति अधिक, विस्तृत, प्रभावशाली और टिकाऊ है ।

कुछ लोग सुधार को भी क्रांति के अन्तर्गत लेते हैं । पर यह उचित नहीं । सुधार द्वारा शोषण के विरुद्ध एक सीमा तक आंशिक परिवर्तन सम्भव है, पर क्रांति ऐसा परिवर्तन नहीं । वह तो दोषमयी व्यवस्था को पूर्णत: नष्ट कर नवीन को स्थापना चाहती है ।

इस प्रकार क्रांति एक मानसिक चेतना है, जो अहिंसात्मक या अहिंसात्मक विरोधों द्वारा वर्तमान व्यवस्था के विरुद्ध प्रकट होती है । और वर्तमान परिवर्तन कर नवीन की स्थापना करती है ।

प्रस्तुत प्रबन्ध के विवेच्य विषय की सीमा सन् १८५० से १९५० तक में आबद्ध है । अत: इस अवधि के परिस्थितियों को भी विवेचना अपेक्षित रही । कारण, परिस्थितियां हो क्रांति के उदय और विकास का कारण होती हैं । आधुनिक साहित्य युग-बोध से उद्भूत है । अत: युगीन परिस्थितियों का क्रांति - भावना पर क्या प्रभाव पड़ा, इसका सांगोपांग विवेचन किया गया है ।

राजनीतिक दृष्टि से विवेच्य-काल राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए संघर्ष का काल रहा है । देश पर अंग्रेजों का शासन था । उनके शोषण की मात्रा असह्य होने लगी थी । इसलिए जन-मानस में उसके विरुद्ध क्रांति की चेतना फैली । हिन्दी-काव्य में भारतेन्दु युग से प्रगतिवाद युग तक पीड़ा परक राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण हुआ है ।

सामाजिक क्रांति की उद्भावना में सामाजिक परिस्थितियां प्रेरक रहीं । १९ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में कई-कई धार्मिक और सांस्कृतिक आन्दोलन हुए, जिनके फलस्वरूप भारतीय समाज में भी परिवर्तन हुआ । १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में १८७५ ई० में आर्यसमाज की स्थापना भी महत्वपूर्ण घटना रही । इस समय समाज में वर्ण-व्यवस्था, जाति, उपजाति, छुआछूत, परदा-प्रथा, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, बहु-विवाह आदि कई प्रकार की रूढ़ियां और कुरीतियां व्याप्त थीं । इनके विरुद्ध क्रान्ति आरम्भ हुई । पाश्चात्य शिक्षा और सम्पर्क भी भारतीय समाज के परिवर्तन में सहायक रहे । महात्मागांधी के आगमन से इन प्रथाओं के विरुद्ध क्रांति को और भी बल मिला ।

अठारहवीं शताब्दी का धर्म पूर्णत: रूढ़िग्रस्त हो चुका था । उसमें सजीवता और सप्राणता नहीं रह गयी थी । धर्म का रूप विकृत होने लगा था । उन्नीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध से पाश्चात्य शिक्षा तथा नवीन संस्थाओं के प्रभाव से धार्मिक विकृतियों की ओर भी प्रबुद्ध व्यक्तियों का ध्यान गया । आर्य समाज ने धर्म की युगानुकूल वैज्ञानिक व्याख्या का प्रयत्न किया । थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना से भी धार्मिक परिस्थितियां प्रभावित हुईं । द्विवेदी-युग में धार्मिक परिस्थितियां साम्प्रदायिकता से ओत-प्रोत रहीं । अंग्रेजों ने भी अपनी कुटिल नीति द्वारा साम्प्रदायिकता को बल दिया । छायावाद युग में भी साम्प्रदायिकता की भावना रही । आर्य समाज भी हिन्दुत्व की भाव-भूमि पर आधारित था । द्विवेदी-युग और छायावाद-युग दोनों में धार्मिक परिस्थितियां आर्य समाज से अत्यन्त प्रभावित रहीं । महात्मा गांधी द्वारा भी धार्मिक क्षेत्र में अद्भुत क्रान्ति हुई । उन्होंने अहिंसा का प्रयोग व्यावहारिक क्षेत्रों में किया । प्रगतिवाद-युग जो साम्यवाद से प्रभावित था, धर्म का रूप पूर्णत: भौतिक धरातल पर स्थापित होने लगा । इससे ईश्वर का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया ।

आलोच्य-काल की आर्थिक परिस्थितियां विषम रहीं । अंग्रेज भारत के आर्थिक शोषण में संलग्न रहे । अपनी कुटिल नीति द्वारा भारतीय उद्योग-धंधों को नष्ट करने लगे । अकाल के कारण भी जनता की आर्थिक स्थिति बड़ी खराब हो रही थी । इसके साथ ही तरह-तरह के टैक्सों द्वारा भी अंग्रेज भारतीय जनता का शोषण कर रहे थे । द्विवेदी-युग में भी भारतीय उद्योग-धंधों को नष्ट करने का क्रम जारी रहा । भारत के कच्चे माल से विदेशी उत्पादन बढ़ता रहा । फिर ये विदेशी वस्तुएं भारत में ही मंहगे दामों में बिकती थीं । संक्षेप में, अंग्रेजों का प्रधान लक्ष्य भारत का आर्थिक शोषण था । राजनीतिक चेतना के साथ ही आर्थिक दशा की ओर भी मनस्वियों का ध्यान गया था । लोगों ने देखा कि विदेशी-वस्तुओं के कारण ही भारतीय उद्योगधंधे नष्ट हो गए हैं । अत: उन्होंने स्वदेशी का नारा लगाया । परिणामस्वरूप विदेशी वस्त्रों की होली जली । गांधी जी की प्रेरणा से किसानों में भी जागृति फैली । छायावाद युग में पूंजीवाद का आगमन हुआ । पूंजीवाद के आगमन के साथ ही भारत में औद्योगिक-विकास प्रारम्भ हुआ । इसमें भी अंग्रेजों की कूटनीति थी । पर उन्होंने भारतीय पूंजीवाद को भी एक सीमा तक ही बढ़ने दिया । इससे पूंजीवादी भी असंतुष्ट होकर सरकार के विरुद्ध हो गए । कम्युनिस्ट पार्टी ने १६२८ के आस पास मजदूर और किसानों में चेतना भरी ।

मजदूरों ने कई हड़तालें की । इस काल में ही करबन्दी आन्दोलन शुरू हुआ और नमक कानून भंग किया गया । प्रगतिवाद-युग में आर्थिक स्थिति और दयनीय रही । महायुद्ध के आर्थिक बोझ से भी देश को भारी क्षति पहुंची । मंहगी भी बढ़ गई थी । मजदूर-वर्ग का विकास हुआ । उनमें वर्ग-चेतना और प्रखर हो गई थी । वे संगठन द्वारा आर्थिक शोषण का विरोध करने लगे । १९४७ में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद, भारत के विभाजन से अनेक आर्थिक अव्यवस्थाएं उत्पन्न हुईं । मुद्रास्फीति के अनेक दुष्परिणाम हुए । विभाजन के कारण चावल,गेहूं,कपास और पटसन जैसे कच्चे मालों की कमी हो गई । पाकिस्तान से लाखों विस्थापित आए । इनके पुनर्वास और सहायता देने का विषम दायित्व भारत सरकार पर पड़ा । इन सब कारणों से आर्थिक स्थिति और दयनीय हो उठी । इस प्रकार विवेच्य-काल में भारत आर्थिक विपन्नता का भी शिकार रहा ।

उपर्युक्त परिस्थितियां भारत में क्रांति-भावना के उद्भव और विकास का कारण रही हैं । कुछ आलोचकों ने अंग्रेजों के सम्पर्क को और अंग्रेजी शिक्षा को भारत में राष्ट्रीय - चेतना के उदय का कारण माना है । पर किसी जातिमात्र के सम्पर्क से क्रांति-भावना का उदय सम्भव नहीं । क्रान्ति असंतोष की घुटन से पैदा होती है । और अत्याचार, उत्पीड़न की वृद्धि से तीव्रतर होती जाती है । अत: क्रांति-भावना अंग्रेजों के सम्पर्क से उत्पन्न नहीं हुई, हां उद्दीप्त अवश्य हुई है । आर्यसमाज,रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसाइटी आदि ने पुनर्जागरण की प्रेरणा देकर क्रांति को अधिक सक्रिय बनाया । धार्मिक और सामाजिक क्रांति के साथ ही इन संस्थाओं द्वारा राजनीतिक क्रांति भी अधिक प्रबल हुई ।

प्रारम्भ में भारत की क्रांति का रूप सुधारमूलक रहा । राजनीतिक क्षेत्र में कांग्रेस और अन्य संस्थाओं ने सुधार के लिए निवेदन और प्रार्थना किए । धार्मिक-सामाजिक क्षेत्र में भी यही स्थिति रही । पर सुधार की इस मांग में क्रांति-मूलक भावना भी निहित रही । सुधारों की इस मांग को हम क्रांति की पृष्ठभूमि कह सकते हैं । क्रांति और राष्ट्रीयता के प्रारम्भिक काल में इसी तरह की भावना पैदा होती है । सरकार मांगों और सुधारों की राह में जितनी ही अधिक बाधा उपस्थित करती है, क्रांति उतनी ही अधिक तीव्र होती जाती है । अत: यह सोचना

सही नहीं कि भारतेन्दु युगीन राष्ट्रीय चेतना में क्रान्ति के तत्व और क्रान्तिमूलक भावना नहीं है । हां, भारतेन्दु-युग में क्रान्ति का उग्र रूप प्रकट नहीं हुआ । कारण, परिस्थितियां उस योग्य नहीं थीं । ५७ की क्रान्ति में बेरहमीपूर्वक क्रान्तिकारियों का दमन हुआ था । क्रान्ति के उपकरणों का अभाव थां । मानसिक दृष्टि से राष्ट्र तीव्र और उग्र विरोध के लिए प्रस्तुत नहीं था ।

दिन-प्रतिदिन भारतीय जनता अपनी वर्तमान परिस्थितियों से अधिकाधिक असंतुष्ट होती गई । और असंतोष के साथ ही साथ राष्ट्रीय-चेतना भी तीव्र होती गई । इसलिए द्विवेदी-युग में क्रान्ति स्पष्ट और उग्र रूप में अभिव्यक्त होने लगी । शासकों द्वारा इसका विरोध दमन द्वारा हुआ । पर दमन होने से क्रांति उग्रतर होती गई । ब्रिटिश शासन की दमनात्मक और कांग्रेस की उदारवादी नीति की प्रतिक्रिया से भारतीय नवयुवकों में क्रान्तिवाद और आतंकवाद का उदय हुआ । इनके आतंकवादी कार्यों से भी राष्ट्रीय क्रांति अधिक तीव्र और शक्तिशाली बनी ।

महात्मा गांधी के राजनीतिक क्षेत्र में अवतीर्ण होते ही,भावना और व्यापक तथा उग्र हुई । यह समय हिन्दी साहित्य का छायावाद-युग था । उन्होंने क्रांति के लिए सत्याग्रह और अहिंसा को अस्त्र बनाया । अंग्रेजी तोपों का सामना उन्होंने इन्हीं अस्त्रों से किया । इससे सामान्य जनता में क्रांति की अपूर्व लहर फैल गई । छायावाद-युग के उत्तरार्द्ध में राजनीतिक चेतना में समाजवादी तत्व उभरने लगे । समाजवादी विचारधारा के प्रभाव से राजनीतिक और आर्थिक समानता की चेतना अधिक तीव्र हुई । पूंजीवाद का घोर विरोध हुआ । सामाजिक क्रांति भी अधिक सचेत हुई ।

प्रगतिवाद-युग में राष्ट्रीय क्रांति प्रखर होती गई । राजनीतिक,आर्थिक, सामाजिक सभी दिशाओं में क्रांति अबाध रूप से मिलती है । यह क्रांति जन-संघर्ष के रूप में प्रकट हुई । मजदूर वर्ग की संघर्ष नीति से क्रांति को नई प्रेरणा मिली । संघर्ष अधिक होने से विरोध में तीव्रता आयी । इस तीव्रता से ब्रिटेन भारत को स्वतंत्र करने को बाध्य हुआ ।

स्वातंत्र्योत्तर काल में सामाजिक,आर्थिक दिशाओं में प्रगति के कार्य प्रारम्भ हुए । कई पुराने मूल्य टूटे । अनेक विधानों से प्राचीन सामाजिक,मान्यताओं में परिवर्तन किया गया । इस प्रकार स्वतंत्र भारत में वैचारिक, आर्थिक,धार्मिक और

सामाजिक क्रांतियों के स्वरूप प्रकट हुए ।

उपर्युक्त परिस्थितियों से उद्भूत जो क्रान्ति-भावना सम्पूर्ण राष्ट्र में फैली, उसका प्रभाव हिन्दी-काव्य पर भी पड़ा । प्रबुद्ध कवि क्रांति-भावना से प्रभावित होकर उसकी काव्यगत अभिव्यक्ति करते रहे । राजनीतिक क्रांति को उद्बुद्ध करने के लिए कवियों ने तत्सम्बन्धी राजनीतिक क्रांति की विचारधाराओं को अपने काव्य में स्वर दिया । गौरव और अधिकार की भावना से अभिभूत राष्ट्रीय-क्रांति की विचारधाराएं इस काल में दो रूपों में व्यक्त हुईं । हीनता से भरे जन-जीवन में प्राचीन गरिमा की स्मृति जागी । अत: प्राचीन आदर्शों का गौरवपूर्ण अतीत का चित्रण कर इन कवियों ने वर्तमान के प्रति और क्षोभ, असंतोष उत्पन्न किया । असंतोष से क्रान्ति की भावना पैदा होती है । गौरवपूर्ण अतीत के चित्रण के साथ ही आदर्श चरित्रों की स्तुति भी हुई । इन आदर्श-चरित्रों ने राष्ट्रीय-चेतना को और अधिक बल दिया ।

राष्ट्रीय-क्रान्ति को और भी उद्दीप्त करने के लिए कवियों ने मातृभूमि का दैवीकरण भी किया । माता के प्रति मनुष्य की असीम श्रद्धा होती है । उसकी पीड़ा दैन्य और बन्धन देखकर मनुष्य सहन नहीं कर पाता । अत: राष्ट्र को माता का रूप देने से उसके प्रति अत्यधिक श्रद्धा भावना उत्पन्न होती है और मातृत्व के उदात्तीकरण से ही देवी-रूप की स्थापना होती है । अत: मातृभूमि के दैवीकरण द्वारा भी कवियों ने राष्ट्रीय-क्रांति को उभारा ।

क्रांति-भावना के प्रसार के लिए उसे तीव्र करने के लिए कवियों ने वर्तमान परिस्थितियों का चित्रण भी किया । उन्होंने शासक और शोषित के विभेद को दिखाया । शोषितों के हृदय में गौरव और अधिकार की चेतना जगाई । इस चेतना के कारण शोषित वर्ग शोषण, असमानता, अत्याचार आदि का विरोधी हो गया । उनमें क्रांति-भावना प्रबल हुई । परिस्थितियों के अनुरूप क्रांति-भावना भी विभिन्न रूपों में चित्रित होती रही । भारतेन्दु-युग की राजनीतिक क्रांति के विचारों में उग्रता नहीं है । वह करुणापूर्ण अधिक है । उस युग की राष्ट्रीयता समझौतावादी वह सरकार से सुधारों के लिए समझौता चाहते थे । डा० केसरीनारायण शुक्ल के अनुसार भी "भारतेन्दु-युग के साहित्यकारों को सामंजस्यवादी कह सकते हैं[1]।" पर

१- आधुनिक कवि काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत--डा०केसरीनारायण शुक्ल, पृ०६६, सं०२००४वि०

मांगों की पूर्ति न होने और अत्याचार,शोषण की बढ़ती से यह क्रांति-भावना क्रमश: उग्रतर होती गई और द्विवेदी-युगीन के काव्य छायावाद-युग के काव्य में यह उग्रतर रूप में प्रकट हुई । प्रगतिवाद युग में यह चरम सीमा पर पहुंच चुकी थी और १९४७ में स्वतंत्रता के पश्चात् क्रांति की राजनीतिक विचारधाराएं विराम पर आ गयीं ।

राजनीतिक विचारधाराओं के साथ ही सामाजिक और धार्मिक क्रांति की विचारधाराएं भी आधुनिक हिन्दी काव्य में अभिव्यक्त हुईं । सामाजिक रूढ़ियों के उन्मूलन के लिए कवियों ने समाज में वर्तमान दोषों का यथार्थ चित्रण किया । कहीं व्यंग्य के माध्यम से कहीं करुणापूर्ण चित्रण द्वारा तो कहीं विरोध द्वारा उन्होंने वर्तमान सामाजिक और धार्मिक रूढ़ियों, कुरीतियों का चित्रण कर, उनके विरुद्ध क्रांति-भावना पुष्ट की ।

तत्कालीन समाज में नारी-जाति जो समाज का आधा अंग है, अत्यन्त हीनावस्था में थी । अत: उनके उद्धार के लिए क्रांति-भावना विशेषरूप में प्रकट होती रही । बाल-विवाह,बहु-विवाह,विधवा-विवाह,दहेज,पर्दा-प्रथा,अशिक्षा आदि सभी के विरुद्ध क्रांति के विचार व्यक्त हुए । भारतेन्दु-युग से प्रगतिवाद -युग तक क्रमश: नारी जाति की स्थिति में विकास होता रहा । इस विकास के क्रमानुसार ही नारी-जाति के लिए व्यक्त क्रांति-भावना भी परिवर्तित होती रही ।

जाति-पांति और छुआछूत के बन्धन से भी समाज पतित हो रहा था । इससे उत्पन्न करुणाजनक परिस्थितियों के चित्रण द्वारा कवियों ने इन बन्धनों का भी उन्मूलन किया । इसी प्रकार धार्मिक परिवर्तन के लिए भी इन्होंने आवाज उठाई । मन्दिरों,पुजारियों में फैले अनाचार का विरोध करने के लिए उनका यथार्थ चित्रण किया । विज्ञान से प्रभावित प्रगतिवाद युग धर्म को मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित करने के लिए पूर्व आदर्शों के प्रति क्रांतिपरक विचार अभिव्यक्त होते रहे ।

ब्रिटिश-कालीन भारत आर्थिक शोषण से भी उत्पीड़ित था । इस शोषण के विरुद्ध क्रान्तिपरक विचारों की काव्यगत अभिव्यक्ति हुई । आर्थिक

उन्नयन के लिए क्रान्ति की आवश्यकता थी। इसके लिए कवियों ने आर्थिक शोषण के विरुद्ध आक्रोश उत्पन्न किया । भारतेन्दु-युग के काव्य में आर्थिक शोषण, आर्थिक विषमता और उसके निवारण के उपाय विशेषरूप से प्रकट हुए । मध्यमवर्ग की जीविका का साधन व्यापार था । अंग्रेजों की कुटिल नीति द्वारा भारतीय व्यापार को बहुत नुकसान पहुंचा था । अतः इस व्यापारिक नीति का भी चित्रण हुआ । आर्थिक शोषण के लिए अंग्रेजों द्वारा प्रयुक्त दूसरा अस्त्र टैक्स था। इस टैक्स के विरुद्ध भी कवियों ने नारे लगाए । साथ ही आर्थिक शोषण से मुक्ति पाने के लिए कवियों ने 'स्वदेशी' का नारा लगाया ।

द्विवेदी -युग तक पूंजीवाद का उदय भी होने लगा था । अतः इस युग के कवियों ने पूंजीवाद का विरोध भी किया । अन्य प्रवृत्तियां पूर्वयुग की तरह ही रहीं । छायावाद-युग में 'स्वदेशी' की मांग अत्यन्त तीव्र हो गई थी । अतः काव्य में भी तत्परक क्रांति - भावना का व्यापक चित्रण मिलता है । प्रगतिवाद-युग में आर्थिक व्यवस्था साम्यवाद से प्रभावित थी । मजदूरों और किसानों में अभूतपूर्व चेतना थी। अतः साम्यवाद का सम्पोषण काव्य में भी हुआ । साम्यवाद को आधार बना कर आर्थिक शोषण के विरुद्ध क्रांति की भावना प्रस्तुत की गई । भारतेन्दु-युग से प्रगतिवाद-युग तक हिन्दी-काव्य में आर्थिक क्रांति परक विचारों की अभिव्यक्ति होती रही ।

इस प्रकार आधुनिक हिन्दी काव्य में राजनीतिक,सामाजिक,धार्मिक और आर्थिक क्रांति की विचारधाराएं विभिन्न रूपों में प्रस्तुत हुई । इनका रूप युगीन परिस्थितियों के अनुसार ही कहीं निवेदन,प्रार्थना,कहीं त्याग-बलिदान तो कहीं उग्र विरोध का रहा । रूप चाहे जो भी रहा हो, पर भारतेन्दु-युग से प्रगतिवाद - युग तक क्रांति की सतत अविच्छिन्न धारा हिन्दी-काव्य में प्रवहमान रही ।

-o-

प्रमुख सहायक ग्रन्थ-सूची

प्रमुख सहायक ग्रन्थ-सूची

हिन्दी

अपरा (२००६) --सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

आधुनिक कवि (२०१०) --सुमित्रानन्दन पंत

आधुनिक हिन्दी काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत (२००४ वि०) --केशरी नारायण शुक्ल

आधुनिक हिन्दी साहित्य (१९४८) -- लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका(१९५२) -- लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

इत्यलम् (१९४६) -- हीरानन्द सच्चिदानंद वात्स्यायन अज्ञेय

कांग्रेस का इतिहास (१९३७) -- पट्टाभि सीतारमैया

क्रांति और संयुक्त मोर्चा (१९४३) -- स्वामी सहजानन्द सरस्वती

क्रांति का अगला कदम (१९५५) -- दादा धर्माधिकारी

क्रांति की पुकार (१९५४) -- ठाकुरदास बंग

क्रांति की राह पर (१९५६) -- निर्मला देशपाण्डे

क्रांतिवाद (१९५७) -- विश्वनाथ राय

किसान (१९७८) -- मैथिलीशरण गुप्त

खादी लहरी (१९२९) -- बुद्धिनाथ झा कैरव

गण देवता (२०००) -- रामदयाल पाण्डेय

ग्राम्या (२००८) -- सुमित्रानन्दन पंत

गीतिका (१९९३) -- सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

चर्खा (१९२१) -- दीनदत्त

चन्द्रगुप्त (२००६) -- जयशंकर प्रसाद

छायावाद युग (१९५२) -- शंभुनाथ सिंह

जागृत भारत (१९२२) -- माधव शुक्ल

जीवन के गान (१९४५) -- शिवमंगल सिंह 'सुमन'

त्रिशूल तरंग (१९२१) -- त्रिशूल

धरती (१९४५) -- त्रिलोचन शास्त्री

नवयुग के गान (१९६६) -- जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द

नवीन (२००२) -- गोपाल सिंह नेपाली

पद्य पुष्पांजलि (१९७२) -- पांडेय लोचनप्रसाद शर्मा

पद्य प्रदीप (१९७८) -- गोकुलचन्द्र शर्मा

पराग (१९२४) -- रूपनारायण पाण्डेय

परिमल (२००७) -- सूर्यकांत त्रिपाठी `निराला`

प्रभात फेरी (१९३९) -- नरेन्द्र शर्मा

प्रभाती (१९४६) -- सोहनलाल द्विवेदी

प्रलय सृजन (१९४४) -- शिवमंगल सिंह सुमन

प्रेमघन सर्वस्व (१९९६) -- बदरीनारायण चौधरी

बलिपथ के गीत (१९५०) -- जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द

बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली (२००७) संपादक -- झाबरमल शर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी

बापू और मानवता (१९४५) -- कमला पति शास्त्री

बेला (१९६२) -- सूर्यकांत त्रिपाठी `निराला`

भारत भारती (२००९) -- मैथिलीशरण गुप्त

भारत गीत (प्रथम संस्करण) -- श्रीधर पाठक

भारत गीतांजलि (१९४७) -- माधव शुक्ल

भारत विनय (१९१६) -- श्यामबिहारी मिश्र, शुकदेवबिहारी मिश्र

भारत: वर्तमान और भावी (१९५६) -- रजनी पामदत्त

भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास (१९५२) -- गुरुमुख निहाल सिंह

भारतीय स्वातंत्र्य समर (प्रथम संस्करण) -- विनायक दामोदर सावरकर

भारतेन्दु ग्रन्थावली (२०१०) -- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु नाटकावली -- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (१९५३) -- रामविलास शर्मा

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (१९५४) -- लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

भारतेन्दु युग (१९५१) -- रामविलास शर्मा

मरण त्योहार (१९६३) -- माखनलाल चतुर्वेदी

मधूलिका — रामेश्वर शुक्ल अंचल

मनोविनोद (१९१७) — श्रीधर पाठक

मानव (१९४८) — भगवती चरण वर्मा

मुकुल (१९४७) — सुभद्रा कुमारी चौहान

युगपथ (२००६) — सुमित्रानन्दन पंत

युगवाणी (तृतीय संस्करण) — ,, ,,

युग-दीप (२००१) — उदयशंकर भट्ट

युगाधार (२००१) — सोहनलाल द्विवेदी

राधाकृष्ण ग्रन्थावली (१९३०) — सं०- श्यामसुन्दरदास

राष्ट्रीय मंत्र (१९२१) — त्रिशूल

रेणुका (१९३९) — रामधारी सिंह दिनकर

रीति काव्य की भूमिका (१९५३) — नगेन्द्र

लोकोक्ति शतक — प्रताप नारायण मिश्र

विश्व इतिहास की झलक (प्रथम सं०) — जवाहरलाल नेहरू

शंकर सर्वस्व (२००८) — नाथूराम शंकर शर्मा

शांति के नूतन क्षितिज (१९५८) — चेस्टर बोल्स

संस्कृति के चार अध्याय (१९५६) — रामधारी सिंह दिनकर

स्कन्द गुप्त (२०११) — जयशंकर प्रसाद

स्वतंत्र दिल्ली (१९५७) — डा० सैयद अतहर अब्बास रिज़वी

स्वतन्त्रता की झनकार (१९२२) — सं० जीतमल लूणिया

स्वर्णधूलि (२००४) — सुमित्रानन्दन पंत

सामधेनी (१९४७) — रामधारी सिंह दिनकर

हम विषपायी जनम के (१९६४) — बालकृष्ण शर्मा "नवीन"

हिन्दू (१९८४) — मैथिलीशरण गुप्त

हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव (२०११) — डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा

हिन्दी कविता में युगान्तर (१९५७) — सुधीन्द्र

हिन्दी साहित्य का इतिहास (२००२ वि०) -- रामचन्द्र शुक्ल
हिन्दुस्तान में पूंजी कारबार की उन्नति(१६३४) -- डी०एच० बकनन
हिम किरीटिनी (१६२२) -- माखनलाल चतुर्वेदी
हुंकार (१६५२) -- रामधारी सिंह दिनकर

अंग्रेजी

इंडियाज साइलेण्ट रिवोल्यूशन (१६२०) -- एफ०बी० फिशर
इंडियन अनरेस्ट (१६१०) -- वैलेन्टाइन शिरोल
इंडियन नेशनल मूवमेंट एण्ड थाट(१६५१) -- बी०पी०एस० रघुवंशी
इंडिया- ए नेशन -- एनी बीसेंट
इंडिया इन ट्रांजिसन (१६२२) -- एम०एन० राय
इंडियन नेशनलिज्म (१६१३) -- एडविन बेविन
इंट्रोडक्सन टू द हिस्ट्री आफ गवर्नमेंट इन इंडिया -- सी०एल० आनन्द
एकानामिक हिस्ट्री आफ इंडिया इन द विक्टोरियन-- आर०दत्त
ए डिकेड आफ रिवोल्यूशन (१६३४) -- क्रेन ब्रिंटन
एन साइक्लोपीडिया आफ सोशल साइन्सेज (संस्करण अलिखित)
डिस्कवरी आफ इंडिया (१६४६) -- जवाहरलाल नेहरू
द एवेकेनिंग आफ इंडिया -- जे०आर० मैक्डोनाल्ड
द इण्डियन स्ट्रगल -- सुभाषचन्द्र बोस
पोलिटिकल फिलासफी आफ अरविन्दो(१६६०) -- वी०पी० वर्मा
यंग इंडिया -- लाजपतराय
राइज एण्ड ग्रोथ आफ इंडियन मिलिटेंट नेशनलिज्म (१६४०) -- एम०एन० बच
रिफ्लेक्शन आन द रिवोल्यूशन आफ आवर टाइम (१६४६) -- हेराल्ड जे० लास्की
रिवोल्यूशन इन इंडिया (१६४६) -- फ्रांसिस गुंथर

रीसेण्ट ट्रेण्ड्स इन इंडियन नेशनलिज्म (१९६०) -- ए०आर० देसाई

रैनैसेण्ट इंडिया (१९३३) -- एच०सी०ई०जकरिया

लीडरशिप एण्ड पौलिटिकल इंस्टीट्यूशन्स आफ इंडिया -- पार्क और टिंकर (१९६०)

माण्टेग्यू चैम्सफोर्ड रिपोर्ट (सं०१९१८)

पत्र-पत्रिकाएं

आजकल

चांद

ब्राह्मण

मतवाला

माधुरी

योगी

विशाल भारत

सरस्वती

साप्ताहिक हिन्दुस्तान

सुधा

हंस

हिन्दी प्रदीप